मनोरंजन पुस्तकमाला—५२

मानस सरोवर और कैलास

श्री सुशीलचंद्र भट्टाचार्य कृत "मानस सरोवर ओ कैलास"

नामक बँगला पुस्तक का अनुवाद

अनुवादक

रामचंद्र वर्म्मा

प्रकाशक

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

सं० १९९६]   द्वितीय संस्करण   [मूल्य ॥)

ने सागर-चुंबित मलय-प्रदेश का वर्णन लिखा, न उत्तराखंड के गगन-चुंबी शिखरों का।

सच पूछिए तो जिस प्रकार सच्ची ऐतिहासिक जिज्ञासा जनता में बराबर दबी सी रही है, उसी प्रकार भौगोलिक जिज्ञासा भी। पर है यह जिज्ञासा स्वाभाविक। इधर-उधर उपयुक्त सामग्री पाकर अब यह जग उठी है। अब यात्रा-संबंधी कुछ पुस्तकें दिखाई पड़ने लगी हैं। इस प्रकार की अच्छी पुस्तकें तभी प्रस्तुत हो सकती हैं जब हम लोगों में साहसी यात्री उत्पन्न हों जो दूरस्थ दुर्गम प्रदेशों में भ्रमण करें। पर यात्रा का साहस ही पर्याप्त नहीं है। यात्री में जिज्ञासा का प्राचुर्य्य और निरीक्षण की पूरी शक्ति होनी चाहिए। इनके बिना सहस्रों कोस का पर्य्यटन करके भी वह किसी प्रदेश के वैचित्र्य का सम्यक् उद्घाटन न कर सकेगा—उन बातों को सामने न रख सकेगा जिनमें मन स्वभावतः रमता है।

भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक स्थान स्थान पर हिंदुओं के तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। कुछ तो भारत की सीमा के बाहर भी हैं—जैसे, हिंगुलाज और कैलास-मानस सरोवर! चारों धामों की यात्रा न जाने कितने दिनों से होती आ रही है। सब से विकट और दुर्गम उत्तराखंड के बदरी-केदार की यात्रा मानी जाती है। उत्तराखंड या हिमालय-प्रदेश एक न्यारा लोक ही जान पड़ता है। गगन-चुंबी तुषार-

मंडित शिखरों के बीच बढ़ते हुए यात्री को देवलोक के मार्ग का अनुभव होता है। जिस समय वह लौटकर घर आता है, उसके साहस पर कितना साधुवाद मिलता है, उसकी बातें कितनी उत्कंठा से सुनी जाती हैं! पर हमारे धर्मवीरों या यात्रावीरों के साहस की सीमा बदरी-केदार के आगे नहीं बढ़ती।

उसके आगे तो वह स्वर्ग समझा जाता है जो शायद बिना मरे नहीं दिखाई पड़ सकता। कैलास-मानस सरोवर पर पैरों से चलकर पहुँचने की बात सामान्य जनता कभी ध्यान में नहीं लाती।

जो यह जानते हैं कि कैलास और मानस सरोवर इसी भूलोक में हैं, उनके हृदय में अवश्य उक्त दिव्य स्थानों के संबंध में अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उठती हैं। पर बहुत कम लोगों को उन्हें तृप्त करने का कुछ साधन प्राप्त होता है। उक्त दोनों स्थान तिब्बत में पड़ते हैं जहाँ कुछ दिनों पहले यात्रियों का पहुँचना एक प्रकार से असंभव सा था। कुछ रमते साधु या सैर-सपाटेवाले योरोपियन ही उधर जा पड़ते थे। १७-१८ वर्ष की अवस्था में उक्त प्रदेश का कुछ वर्णन अंगरेजी की एक पुस्तक में पाकर मैंने बड़े प्रेम से पढ़ा था। पर जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, उससे मेरी तृप्ति नहीं हुई थी। उसके बहुत दिनों पीछे सत्यदेवजी की कैलास-यात्रा हिंदी में निकली, पर उस छोटी सी पुस्तक में

मुझे मार्ग की दुर्गमता के रूखे वर्णन के अतिरिक्त और कुछ न मिला। कैलास-मानस सरोवर के संबंध में जो दिव्य, पुनीत और भव्य भावना परंपरा से बँधी चली आ रही है, उसी के अनुरूप हमारी जिज्ञासा भी हुआ करती है। ऐसी जिज्ञासा की तुष्टि वही यात्री कर सकता है जिसका अंतःकरण जिज्ञासा-पूर्ण हो तथा जिसकी दृष्टि आस-पास के स्वरूपों को स्पष्टता के साथ ग्रहण करनेवाली हो। इनके अतिरिक्त वर्णन द्वारा नाना दृश्यों के प्रत्यक्षीकरण की सामर्थ्य भी उसमें पूरी पूरी होनी चाहिए !

मुझे कितना आनंद हुआ जब एक दिन अकस्मात् मेरे पुराने मित्र श्री सुशीलचंद्र भट्टाचार्य्य इसी प्रकार के एक यात्री के रूप में मेरे सामने प्रकट हुए। मैंने बड़ी उत्कंठा के साथ उनकी कैलास-मानस सरोवर की यात्रा के संबंध में सैकड़ों प्रश्न पूछे। उन्होंने अपने वर्णन द्वारा मेरा बहुत कुछ कुतूहल शांत किया और दूसरे दिन कैलास-मानस सरोवर की यात्रा से संबंध रखनेवाले अनेक फोटोग्राफ भी दिखाए।

अपनी यात्रा का विवरण उन्होंने वंग भाषा की प्रतिष्ठित पत्रिका वसुमती में खंडशः छपाया था जो पीछे पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। वही पुस्तक हिंदी में सामने पाकर मेरा आनंद दूना हो गया। पाठक देखेंगे कि भाव पक्ष और व्यवहार-पक्ष दोनों का उचित ध्यान रखकर इस पुस्तक का प्रणयन हुआ है। जिस प्रकार इसमें उन सब दृश्यों का

सजीव और स्पष्ट चित्रण हुआ है जो सुषमा, भव्यता—विशालता, विचित्रता, पवित्रता इत्यादि की रहस्यमयी भावनाएँ जगाकर हमारे हृदय को अनुभूति की अत्यन्त रमणीय भूमि में पहुँचा देते हैं, उसी प्रकार उस विकट और दीर्घ यात्रा को निर्विघ्न और सुव्यवस्था-पूर्वक समाप्त करने के लिए जितनी बातों का जानना आवश्यक है, उतनी सब—और कहीं कहीं उससे बहुत अधिक भी—इसमें दी हुई मिलेगी। यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यह पुस्तक केवल प्राकृतिक दृश्य वैचित्र्य के अन्वेषक व्यक्तियों के निमित्त ही नहीं, धर्मपरायण तीर्थयात्रियों के उपयोग के लिये भी लिखी गई है। अतः इसमें कैलास मानस सरोवर आदि की ठीक ठीक स्थितिका निर्देश करनेवाले प्रमाण भी रामायण, महाभारत पुराणादि से दिए गए हैं तथा प्रत्येक दर्शनीय स्थान का पूरा विवरण भी सन्निविष्ट है। इसके अतिरिक्त उन प्रदेशों में निवासियों के शील और आचार-व्यवहारका भी परिचय दिया गया है जिससे यात्री बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। यात्री को क्या क्या वस्तुएँ अपने पास रखनी चाहिएँ, मार्ग में कितने टिकान पड़ते हैं और कहाँ किस प्रकार की सवारी आदि का सुभीता हो सकता है, ये सब बातें मौजूद हैं। खर्च का भी ठीक ठीक ब्यौरा दे दिया गया है।

अपने मित्र सुशील बाबू के धैर्य और साहस पर मैं जितना चकित और मुग्ध हूं, उतना ही इस प्रकार की पुस्तक

प्रस्तुत करने के लिये कृतज्ञ भी हूँ । कैलास-मानस सरोवर के संबंध में ऐसी और कोई पुस्तक मेरे देखने में अभी तक नहीं आई ।

दुर्गाकुंड
काशी

रामचंद्र शुक्ल

भूमिका

पुण्य भारत-भूमि की असाधारण महिमा के अनंत कारण विद्यमान हैं। भारत के पूज्यपाद ऋषि-मुनि-गण, भारत के अध्यात्म-विद् बड़े बड़े दार्शनिक गण, भारत के सती-कुल की ललामभूता सीता, सावित्री, अरुन्धती प्रभृति प्रातः-स्मरणीय महिलाएँ, भारत के वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास, ज्योतिष और कला प्रभृति शास्त्र-समूह और भारत के त्रिलोक-विख्यात आदर्श-चरित वीर पुरुष—और भी कहाँ तक बतलावें, इस जातीय मानव महिमा के ज्वलंत उदाहरण-स्वरूप असंख्य कारण-समूहों ने मिलकर भारतवर्ष को पृथ्वी पर अनादि काल से जिस प्रकार अतुलनीय गौरव से अलंकृत कर रखा है, उसी प्रकार दूसरी ओर अगणित महाप्रभावशाली तीर्थों ने भी संसार में भारत की अतुलनीय महिमा प्रसिद्ध कर रखी है। यदि हम एक वाक्य में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि पृथ्वी के सभी सभ्य प्रदेशों की अपेक्षा भारत का तीर्थ-जन्य गौरव अत्यंत अधिक है। हिमाद्रि से लेकर कुमारिका तक और आसाम से लेकर सिंधु तक भारत के सभी प्रदेशों में असंख्य तीर्थों का गौरव सुप्रकाशित है। पृथ्वी के और किसी महादेश में इतने अधिक तीर्थ नहीं दिखाई पड़ते। यह भी भारत की एक ऐसी विशेषता है जो और किसी देश

में देखने में नहीं आती। हम सभी लोग जानते हैं कि पृथ्वी के अन्यान्य सभ्य देशों में कौतुक-प्रिय प्राकृतिक शोभा देखने के लोलुप धनी और मध्य वृत्ति के लोग भूमंडल के भिन्न भिन्न स्थानों के आश्चर्यजनक प्राकृतिक दृश्य देखने के लिये बहुत अधिक धन व्यय करते हैं और अनेक प्रकार के कष्ट सहते हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि उन लोगों का उद्योग और अध्यवसाय सब प्रकार से प्रशंसनीय है। भारत में भी पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार के साथ साथ आजकल की नवीन शिक्षा पाए हुए लोगों में प्राकृतिक दृश्यों के दर्शन करके अपना कूतूहल चरितार्थ करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है और यह बात भी प्रशंसनीय ही है। परंतु भारत के सनातन धर्मावलंबी और प्राचीन गौरव के प्रति आस्था रखनेवाले पुरुष और स्त्रियाँ भी सदा तीर्थ-दर्शन के लिये व्याकुल रहती हैं; और इसके लिए एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक पर्यटन करती हैं। ऐसे लोगों के साथ इन सब प्राकृतिक दृश्यों के दर्शन-लोलुप पर्यटक लोगों का जिस प्रकार सादृश्य देखने में आता है, उसी प्रकार, बल्कि उससे भी कुछ और बढ़कर, इन दोनों वर्गों में विलक्षणता भी वर्त्तमान है; और यही विलक्षणता हिंदू भारत के पक्ष में विशेष रूप से प्रशंसनीय और श्रद्धेय हो जाती है। पैदल चलकर, दारुण शीत, ग्रीष्म और आतप सहन करके, मार्ग में निवास-स्थानों और प्राण-धारण के लिये आवश्यक-

आहार आदि का असह्य अभाव चुपचाप सहन करके, भारत के विश्वासी हिंदू पुरुष और स्त्रियाँ आजकल भी जिस धर्म-प्राणता, त्यागशीलता, और वीरता का परिचय देती हैं, वह उन लोगों को नहीं समझाई जा सकती जिन्होंने स्वयं अपनी आँखों से उन्हें देखा नहीं है। प्रति वर्ष अगणित पुरुष और स्त्रियाँ इस प्रकार तीर्थ-यात्रा करने में जो क्लेश उठाती हैं, उसका इतिहास अभी तक किसी भाषा में नहीं लिखा गया है। यदि किसी दिन इस प्रकार का कोई इतिहास लिखा जायगा तो हम दृढ़ विश्वास के साथ कह सकते हैं कि वह भाषा में वर्णित होनेवाले सभी विषयों में सबसे अधिक विस्मय-कारक और सभी तरह के लोगों के लिये चित्ताकर्षक होगा। इस बात में कुछ भी संदेह नहीं है कि आजकल इस प्रकार के जातीय साहित्य के प्रचार की नितांत आवश्यकता है। यह बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि इस प्रकार का एक ग्रंथ इस समय हम लोगों को प्राप्त हुआ है। आशीर्वाद-भाजन श्रीमान् सुशीलचंद्र भट्टाचार्य असीम क्लेश सहकर और बहुत कुछ धन व्यय करके भारत के तीर्थों में सबसे अधिक दुर्गम और सबसे अधिक गांभीर्य-मय अनंत प्राकृतिक शोभा से संपन्न महातीर्थ कैलास और मानस सरोवर के दर्शनों के लिये स्वयं गए थे; और उन्होंने वहाँ जाने के मार्ग और उस मार्ग से संबद्ध प्राकृतिक दृश्यों को स्वयं प्रत्यक्ष देखकर बंगाली पाठकों और पाठिकाओं

की ज्ञान वृद्धि और संतोष के लिये इस प्रकार का एक सुंदर ग्रंथ प्रस्तुत किया है। पहले "वसुमती" नामक सुविख्यात (बँगला) मासिक पत्रिका में उनका मानस सरोवर और कैलास-यात्रा का एक विवरण धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। और अब वह समस्त भ्रमण-वृत्तांत एकत्र करके और उसमें आवश्यक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन करके उन्होंने यह "मानस सरोवर और कैलास" नामक सचित्र ग्रंथ मुद्रित और प्रकाशित कराया है। यह ग्रंथ पढ़ने पर मैं समझता हूँ कि इतने दिनों बाद अब जाकर हमारी भाषा में इस प्रकार के आवश्यक और उपयोगी साहित्य की सृष्टि का वास्तविक सूत्रपात हुआ है। और मुझे आशा है कि इस सूत्र के द्वारा आगे चलकर यदि तीर्थ-साहित्यिक गण अग्रसर होंगे तो बंगीय साहित्य की बहुत अधिक उन्नति हो सकेगी। इस ग्रंथ में ग्रंथकार महाशय केवल प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करके ही चुप नहीं हो गये हैं, और इसका कारण यही है कि हिंदू तीर्थ-यात्रियों के लिये तीर्थों की प्राकृतिक शोभा देखना तीर्थ-यात्रा का प्रधानतम उद्देश्य नहीं होता। प्राकृतिक दृश्यों को देखना तो उनके लिये अवांतर या गौण विषय है। परंतु इस विषय को अवांतर या गौण मानकर ही उन्होंने उसकी उपेक्षा भी नहीं की है। उन्होंने इस ग्रंथ में ललित सरल भाषा में प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के साथ ही साथ पुराणों और इतिहासों में वर्णित इन तीर्थों के संबंध की

प्राय: सभी आवश्यक और ज्ञातव्य बातों का भी प्रमाण सहित उल्लेख किया है; और यात्रियों के उपकार के लिये बहुत स्पष्ट और विस्तृत रूप से यह भी बतलाया है कि सबसे अधिक दुर्गम कैलास तीर्थ की यात्रा के लिए यात्रियों को किस प्रकार अग्रसर होना उचित है। रास्ते में चलते समय कहाँ कौन कौन सी चीजें तीर्थ-यात्रियों को आवश्यक रूप से अपने साथ ले रखनी पड़ती है, रास्ते के दोनों तरफ पड़नेवाले गाँवों और जनपदों के निवासियों का स्वभाव और विचार आदि कैसे हैं, किस प्रकार का व्यवहार वे लोग पसंद करते हैं, किस प्रकार के व्यवहार से वे लोग अप्रसन्न या असंतुष्ट होते हैं, तीर्थयात्री लोग उनसे किस प्रकार और कैसी सहायता पा सकते हैं, कहाँ कौन सी चीज किन दामों में मिलती है, कहाँ से दुभाषिया साथ में ले लेना आवश्यक होता है, एक चट्टी से दूसरी चट्टी कितनी दूर पड़ती है, मार्ग में कैसे कैसे दुर्गम स्थान पड़ते हैं, किस समय यात्रा करनी होती है, इत्यादि सभी जानने योग्य और आवश्यक बातों का इस ग्रंथ में बहुत ही सुंदर रूप से वर्णन किया गया है। तीर्थों से संबध रखनेवाले मनोहर दृश्य-समूहों के ऐसे सुंदर चित्रों से भी यह ग्रंथ आदि से अंत तक अलंकृत है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुए थे। प्रत्येक तीर्थ के ऐतिहासिक और पौराणिक तत्त्वों के अनुशीलन में भी ग्रंथकार ने अपूर्व कृतित्व का परिचय दिया है। हिमवत् प्रदेशों की

तीर्थ-यात्रा के संबंध में मैंने अब तक जो कई ग्रंथ देखे हैं, उनमें यह ग्रंथ मुझे सर्वोत्कृष्ट जान पड़ता है। युग के प्रभाव से शास्त्रों और ब्राह्मणों की महिमा दिन पर दिन घटती जा रही है और उसके साथ ही साथ भारत के तीर्थों के प्रति नव-शिक्षित हिंदुओं की उदासीनता भी बढ़ती जा रही। और सभी समझदार यह बात अच्छी तरह समझ रहे हैं कि नव-शिक्षित हिंदुओं की यह उदासीनता देश और जाति के लिए विशेष अनिष्टकर है। हम निस्संदेह रूप से यह भारत के सबसे अधिक दुर्गम और सबसे अधिक सुंदर महातीर्थ कैलास और मानस सरोवर का ऐसे सुंदर वर्णन से युक्त और प्रयोजनीय ग्रंथ प्रकाशित करके कल्याण-भाजन ग्रंथकार बंगाली आस्तिक हिंदू मात्र के विशेष रूप से कृतज्ञता भाजन हुए हैं और ग्रंथकार ने उन लोगों का यथेष्ट उपकार किया है। हम आशा करते हैं कि यह ग्रंथ प्रत्येक बंगाली के घर की शोभा बढ़ावेगा।

श्री काशीधाम;
२ श्रावण, १३३८

श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण

——❀——

उपक्रमणिका

कदाचित् यह बात किसी को समझाकर बतलाने की आवश्यकता न होगी कि ब्रह्मा का मानस-सृष्टि मानस सरोवर और मृत्युंजय सदाशिव का निर्विकल्प समाधि-क्षेत्र श्री कैलाश ये दोनों ही तीर्थ हिंदुओं के लिये कहाँ तक श्रेष्ठ और पवित्र हैं। इन तीर्थों की यात्रा का मार्ग भारत के सभी तीर्थ स्थानों के यात्रा मार्गों की अपेक्षा अधिकतम दुर्गम है। अब तक यह मानस तीर्थ प्रायः सब लोगों के मानस में कल्पना के चित्र की तरह ही हृदय के अंतरतम प्रदेश में अवस्थान करता था। पहले केवल साधु-संन्यासिगण ही इन तीर्थों की यात्रा किया करते थे। और जब वे साधु-संन्यासी वहाँ से लौटकर आते थे, तब यदि जन-साधारण में से किसी व्यक्ति को सौभाग्य से उनके दर्शन हो जाते थे, तब उन सब साधु-महात्माओं के मुख से निकले हुए मानस और कैलास-संबंधी अनेक नित्य-नवीन रहनेवाले और बहुत अधिक आश्चर्य-जनक वर्णन उप-कथाओं के समान हम लोगों के कानों में मधु-वर्षण करते थे। अनेक स्थलों पर साधारणतः उनका वर्णन कुछ इस प्रकार का हुआ करता था—"मानस के नील जल में सदा नील कमल खिले रहते हैं। उस स्वच्छ सुमहान् पवित्र ह्रद में देवतागण स्नान, मार्जन आदि नित्य

क्रियाएँ समाप्त करके श्री कैलास-समाधि-वेदी के नीचे बैठकर निरंतर देवादिदेव महादेव का स्तव, स्तुति और ध्यान करते हैं। और उस जल में परमहंस रूपी हंस अबाध रूप से विचरण करते हैं। वे हंस आकार में राजहंसों से भी बड़े होते हैं और उनके दर्शन मात्र से ही क्रूर-प्रकृति मनुष्यों का चित्त भी निर्मल हो जाता है।" इसी प्रकार की अनेक अपूर्व और भक्ति-भाव-समन्वित कहानियाँ सुन सुनकर मैं भी बहुत दिनों से इस दुर्गम तीर्थ के दर्शनों का विचार कर रहा था और उसका सुयोग ढूँढ़ रहा था।

भूत-भावन कैलासपति के अनुग्रह से आज मेरी वह आकांक्षा बिना किसी प्रकार की बाधा के पूर्ण हो गई है। और उन्हीं की कृपा से उत्साहपूर्वक मैं आज इस तीर्थ-यात्रा का आदि से अंत तक समस्त विवरण जन-साधारण के सामने प्रकाशित करने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

इस दुर्गम तीर्थ-यात्रा का विवरण आरंभ करने से पहले मैं यह उचित समझता हूँ कि यहाँ पाठकवर्ग की जानकारी के लिये यात्रा के संबंध में कुछ आवश्यक बातें बतला दूँ। कारण यह कि यदि मेरी तरह किसी और सज्जन के मन में भी इस तीर्थ दर्शन की उत्कट अभिलाषा हो तो मेरा इस प्रकार की आशा करना कुछ अस्वाभाविक न होगा कि वे यह विवरण पढ़कर अवश्य ही कुछ न कुछ लाभ उठावेंगे।

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
पहला पर्व—अलमोड़े के रास्ते में	...	...	१
दूसरा पर्व—अलमोड़े से धारचूला	...	...	१२
तीसरा पर्व—तपोवन	...	...	४४
चौथा पर्व—धारचूला से गार्बियांग	...	...	६८
पाँचवाँ पर्व—गार्बियांग से तकला कोट		...	१२४
छठा पर्व—तकला कोट से मानस सरोवर		...	१६०
सातवाँ पर्व—श्री कैलास	...	...	१८८
आठवाँ पर्व—प्रत्यावर्त्तन	...	...	२२६
अलमोड़े से कैलास तक जाने और आने के खर्च का ब्योरेवार हिसाब	...	...	२८२

———

मानस सरोवर और कैलास

पहला पर्व

अलमोड़े के रास्ते में

अनेक विघ्नों से भरे हुए और दुर्गम पहाड़ी रास्तों से कैलास तीर्थ की यात्रा करने का निमंत्रण आया था, हमारी बड़ी बहन के समान "दीदी" के यहाँ से। वीरभूमि के जमींदार और साहित्यिक श्रीयुक्त निर्मलशिव वंद्योपाध्याय की सहधर्मिणी को घनिष्ठ आत्मीयता के कारण मैं दीदी (बड़ी बहन) ही कहा करता था। वे कलकत्ते के काशीपुर के निवासी मेरे बड़े भाई के समान मित्रवर श्रीयुक्त मन्मथनाथ मुखोपाध्याय की (जिनका श्री श्री कृपामयी नामक कालीमंदिर काशीपुर में बहुत दिनों से प्रसिद्ध है) बड़ी बहन हैं। तीर्थयात्रा के प्रति उनका बहुत दिनों से विशेष अनुराग है। तो भी कैलास के समान दुर्गम तीर्थ की यात्रा के लिये एक बंगाली महिला का आग्रह देखकर मुझे विस्मय भी हुआ और आनंद भी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका यह निमंत्रण ग्रहण करके मैं धन्य हुआ। बहुत दिनों से मैं अपने मन ही मन में जिस आशा का पोषण करता चला आ रहा था,

शुभ क्षण में आज वही सुदिन सामने देखकर इस दुर्गम तीर्थ में जाने के लिये उपयोगी और आवश्यक सभी वस्तुएँ एक एक करके इकट्ठी कर लीं। चार-पाँच दिन में ही यात्रा का दिन स्थिर हो गया।

उस दिन छठा आषाढ़ था। अँगरेजी तारीख २० जून और बृहस्पतिवार था। सवेरे बनारस कैंटूनमेंट स्टेशन से ९ बजकर ५८ मिनट पर देहरादून एक्सप्रेस पर सवार होकर हम सब लोग काठगोदाम के लिये रवाना हुए।

हम लोग सब मिलाकर पाँच आदमी थे। दीदी, उनके सबसे बड़े पुत्र स्नेहास्पद श्रीमान् नित्यनारायण, हाथ में बंदूक रखनेवाला उनका एक दरवान जिसका नाम भूपसिंह था और एक दूसरी स्त्री जो सहयात्री की भाँति हमलोगों के साथ थी। रात को ग्यारह बजे के लगभग बरेली स्टेशन पर हम लोगों ने एक्सप्रेस गाड़ी छोड़ दी और रात को एक बजे छोटी लाइन की दूसरी गाड़ी पर हम लोग फिर सवार हुए। दूसरे दिन सवेरे हम लोगों की गाड़ी लाल कूआँ नामक जंक्शन पर जा पहुँची। वहाँ सबसे पहले दूर से हम लोगों को पहाड़ का दृश्य दिखलाई दिया, जिससे सभी लोगों के मन में उत्साह और स्फूर्त्ति उत्पन्न हुई। इसके बाद जब दूसरे स्टेशन हलद्वानी पर गाड़ी पहुँची, तब वहाँ बहुत से मोटर-वाले गाड़ी पर आ आकर "कहाँ जाइएगा?" "मोटर किराये कीजिएगा?" आदि प्रश्न करके हम लोगों को दिक करने

लगे। हम लोग पाँच आदमी थे और साथ में बहुत सा असबाब था। काठगोदाम तक के लिये रेलवे कंपनी को पाँच टिकटों के लिये फी टिकट छः रुपये के हिसाब से तीस रुपये अदा करने पर भी हम लोगों को उसके सिवा माल-असबाब के लिये आठ रुपया दो आना भाड़ा अलग देना पड़ा था। हमारे साथ उतना अधिक असबाब देखकर कुछ मोटरवालों ने अलमोड़े तक के लिये हम लोगों से आदमी पीछे तीन रुपया और माल-असबाब के लिये फी मन डेढ़ रुपया भाड़ा माँगा। अन्त में एक मोटरवाले ने माल-असबाब समेत फी आदमी तीन रुपए के हिसाब से भाड़ा तै करके हम लोगों का छुटकारा किया। जब उसने सुन लिया कि हम काठगोदाम स्टेशन पर उतरेंगे, तब उसने कई बार लिखारकर हम लोगों से कहा कि हम वहीं स्टेशन पर मोटर लेकर आपके आसरे रहेंगे। इसके बाद वह हम लोगों की गाड़ी चलने के पहले ही वहाँ से चल दिया। प्रायः सात बजे हम लोगों की गाड़ी काठगोदाम स्टेशन के प्लेटफार्म पर पहुँच कर बिलकुल रुक गई। वहाँ स्टेशन पर जितने अधिक यात्रियों को मैंने उतरते हुए देखा, उससे मुझे जान पड़ा कि उन सबका बोझ ढोने के लिये वहाँ कुली बहुत ही कम हैं। इसलिये वहाँ असबाब उठाने में कुछ विलंब हुआ। कुछ देर बाद कुलियों से माल उठवाकर उसी मोटर बस पर रखवाया जो पहले ठीक की थी। वहाँ पता लगा कि जब

और भी यात्री आकर इसमें भर जायँगे, तब यह मोटर यहाँ से चलेगी। इसलिये हम लोग पास की एक पहाड़ी नदी पर जा पहुँचे और वहीं स्नान आदि से निवृत्त होकर फिर उसी मोटर पर आ बैठे। प्रायः साढ़े आठ बजे मोटर वहाँ से चली।

काठगोदाम से अलमोड़ा इक्यासी मील दूर है। यह लंबा रास्ता पहाड़ों में से होता हुआ ऊपर गया है। हम लोगों की मोटर इसी प्रकार पहाड़ के तल-देश से क्रमशः एक के बाद दूसरा पहाड़ लाँघती हुई चलने लगी। आँखों के सामने प्रति क्षण यही जान पड़ता था कि हम लोग एक अद्भुत नए राज्य में प्रवेश कर रहे हैं। सत्रह सौ फुट की ऊँचाई से लेकर दो हजार फुट की ऊँचाई तक पहाड़ों को लाँघते समय आस-पास के दृश्य कितने मधुर और मनोरम जान पड़ते थे, यह बतलाना बहुत ही कठिन है। दारजिलिंग जाते समय जब छोटी छोटी गाड़ियाँ धीरे धीरे पहाड़ के ऊपर चढ़ती हैं, तब आस-पास के दृश्य देखने में जैसे सुंदर जान पड़ते हैं, उनकी तुलना में ये दृश्य आँखों को और भी अधिक सुख देनेवाले जान पड़ते थे। विशेषतः कहीं किसी पहाड़ पर वर्षा की सूचना देनेवाले मेघों की छाया पड़ती थी, कहीं झरना झर झर बहता था। और कहीं वृक्षों की बहुत अधिक घनी श्रेणियाँ चुपचाप और निस्पंद भाव से देखती हुई हम लोगों की गति का निरीक्षण कर रही थीं। केवल एक ही विषय में मन में कुछ कुछ अशांति हो रही थी। प्रत्येक मिनट जब पहाड़ के प्रत्येक मोड़ पर

मोटर घूमने लगती थी, तब मन में यही चिंता लगी रहती थी कि यदि दूसरी ओर से कोई मोटर आकर सामनेसे टकरा जाय तो हम लोगों की क्या दशा हो! हो सकता है कि हम लोग मोटर समेत एकाएक दस मरातिब के बराबर नीचे गिर-कर चूर चूर हो जायँ। मन में इस प्रकार की चिंता होने का कारण यह था कि पहाड़ के मोड़ पर पहुँचने पर भी मोटरवाला अपना भोंपा नहीं बजाना चाहता था। ऐसा जान पड़ता था कि शायद वह अपने आपको बहुत अधिक चालाक समझता है। मोटर को बराबर पहाड़ के चक्करों में घूमते हुए देखकर किसी किसी यात्री के लिये कै आने तक की नौबत पहुँच गई थी। जो हो, प्रायः साढ़े दस बजे हम लोगों की मोटर भुवाली पार करके आगे बढ़ी। दोपहर को ठीक साढ़े बारह बजे हम लोग रानीखेत जा पहुँचे। वहाँ से बाई ओर का नैनीताल जानेवाला रास्ता छोड़कर हमारी मोटर जल्दी जल्दी चलती हुई संध्या को पांच बजे के लगभग अलमोड़े जा पहुंची। रास्तेमें महात्मा गांधी के दर्शन हो गये थे, इसलिये सभी के मन में यह धारणा हो गई कि यात्रा के आरंभ में ही ऐसे महापुरुष के दर्शन होना शुभ लक्षण है। महात्माजीके साथ उनकी स्त्री भी थीं और मोटर चलानेवाले के पास एक और सज्जन बैठे हुए थे। बाद में हम लोगों ने सुना कि वे सज्जन और कोई नहीं, स्वयं महात्माजी के पुत्र थे। जो हो, अलमोड़े में प्रवेश करते समय मोटर के

प्रत्येक यात्री को आठ आने के हिसाब से 'टोल' या मार्ग कर देना पड़ा। हम लोग एंपायर इंडियन होटल के ठीक सामने पहुँचकर मोटर पर से उतर पड़े। वहाँ होटलवाले से बात-चीत करके उसी होटल के दूसरे खंड में सजे हुए दो बड़े बड़े कमरे और भोजन बनाने के लिये एक रसोई-घर दो रुपये चार आने रोज के हिसाब से ठीक करके ले लिया और उसी समय वहाँ जाकर डेरा डाल दिया।

कुछ देर तक जल-पान और विश्राम आदि करने के उपरांत हम लोगों ने यह आवश्यक समझा कि एक बार रामकृष्ण कुटीर की ओर चलकर इस बात का पता लगाना चाहिए कि वहाँ कोई कैलास जानेवाले यात्री आते हैं या नहीं। उक्त स्थान प्रायः मील भर दूर था। जब पता लगाते हुए वहाँ पहुँचे, तब मालूम हुआ कि उत्तरपाड़ा से तीन सज्जन श्रीयुक्त सुरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, श्रीयुक्त भूतनाथ मुखोपाध्याय और श्रीयुक्त गंगाधर घोष और पबना से श्रीयुक्त अविनाशचंद्र राय नामक एक सज्जन कैलास जानेके लिये कई दिनों से अलमोड़े में आये हुए हैं और कुछ साथियों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इनके सिवा आश्रम से पांच साधु या स्वामी जी भी कैलास-यात्रा के इच्छुक थे जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) श्रीयुक्त स्वामी अनुभवानंद पुरी, धारचूला तपोवन के मंत्री, (२) श्री शंकरनाथ स्वामी, (३) श्री विश्वनाथ स्वामी, (४) श्रीअर्पणानंद स्वामी और (५) श्री कालिकानंद

गिरि। एक स्वामीजी से यह भी समाचार मिला कि परसों यहाँ से यात्रा करने का दिन स्थिर हो चुका है। संध्या को लौटकर जब मैं अपने स्थान पर आया, तब वहाँ मैंने देखा कि कैलास जानेवाले प्रायः सभी यात्री हमारा होटल गुलजार किए हुए हैं और सबकी खूब गप लड़ रही है।

कदाचित् पाठकों को यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि इतने दूर देश में आने पर एक ही यात्रा के यात्रियों के रूप में इतने स्वजातियों का दल पाकर हम लोगों के मन में कितने अधिक साहस और बल का संचार हुआ था। हम लोगों ने चलने से पहले ही रामकृष्ण कुटीर के श्रीमत् मेघेश्वरानंदजी स्वामी को और धारचूला तपोवन के डाक्टर श्रीयुक्त मन्मथनाथ पालधि महाशय को अपने अलमोड़ा पहुंचने की तारीख की सूचना दे दी थी। उसी के अनुसार तपोवन के मंत्री स्वामीजी महाराज उन सब यात्रियों को लेकर हमारे यहाँ पहुँचे थे और हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे। सब लोगों के साथ परिचय और कुशल-प्रश्न आदि हो चुकने पर यात्रा की बात-चीत होने लगी और हम लोगों ने यह समझ लिया कि अपने साथ ले चलने के लिये और कौन कौन सी चीजें खरीद लेना आवश्यक है और दूसरे दिन क्या क्या काम कर लेने चाहिए। यह भी प्रश्न उठा कि हम लोग किस प्रकार चलेंगे। श्रीमत् स्वामी अनुभवानंदजीने बतलाया कि दीदी और उनके

साथ की स्त्री के लिये दो डाँडियाँ और उन्हें उठानेवाले बारह कुलियों (प्रत्येक डाँडी के लिये छः कुलियों के हिसाब से) की आवश्यकता होगी। बाकी तीन आदमियों में से एक भूपसिंह दरबान को छोड़कर हम दोनों आदमियों के लिये उन्होंने यह परामर्श दिया कि हम लोग पैदल न जाकर घोड़े पर जायँ। इसीलिये उन्होंने कहा कि सवारी के दो घोड़ों को भी व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

दूसरे दिन अर्थात् ८ आषाढ़ २२ जून शनिवार को सवेरे एल० आर० शाह कंपनी की दूकान से बारह रुपए फी डाँडी के हिसाब से चौबीस रुपए में दो डाँडियाँ खरीदी गईं। यदि डाँडी भाड़े पर ली जाय तो भी प्रायः इतना ही खर्च पड़ता है; इसलिये स्वामीजी के परामर्श के अनुसार डाँडियाँ खरीद लेना ही उचित जान पड़ा। उन डाँडियों को उठाकर ले चलनेवाले कुली ठीक करने के लिये स्वामीजी महाराज मुझे और श्रीमान् नित्यनारायणजी को साथ लेकर स्थानीय तहसीलदार के घर पर पहुंचे। तहसीलदार साहब बहुत ही सज्जन जान पड़े। यथोचित शिष्टाचार के उपरांत उन्होंने हम लोगों से कहा कि दस बजे आप लोग तहसील-दारी कचहरी में आकर कुलियों के लिये पेशगी रुपए जमा कर दें। ठीक समय पर हम लोग वहाँ जा पहुंचे। उन्होंने सरकारी नियम के अनुसार अलमोड़ा से धारचूला तपोवन तक नब्बे मील के रास्ते के लिये डाँडी उठानेवाले छः कुलियों

के लिये चौवन रुपए एक आने के हिसाब से दो डाँडियों के लिये कुल एक सौ आठ रुपए दो आने जमा करा लिए। रास्ते में जगह जगह जो पटवारी रहते थे, उन सबके नाम उन्होंने हम लोगों को मोहर लगा हुआ एक परवाना भी दे दिया था जिसमें लिखा था कि जहाँ तक हो सके, वे हम लोगों के आराम का खयाल रखें। मैंने वह पत्र और रुपए जमा करने की रसीद अपने पास रख ली। सरकारी नियम के अनुसार धारचूला तक सवारी के घोड़े का भाड़ा प्रायः पैंतालिस रुपए पड़ता है। यह रकम हम लोगों को बहुत अधिक जान पड़ी; इसलिये विष्णुसिंह नामक एक प्राइवेट घोड़ेवाले से हम लोगों ने दो घोड़ों के लिये छब्बिस रुपए फी घोड़े के हिसाब से भाड़ा तै कर लिया और उसे बयाने के दो रुपए भी दे दिए।

बीसवीं शताब्दी कोई नया काम करने का युग है। ऐसे समय में तो पैदल सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने का साहस रखता था; और इसी लिये अपनी सवारी के घोड़े के वास्ते इतने रुपए खर्च करने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। लेकिन फिर भी स्वामीजी महाराज के परामर्श के अनुसार इस विषय में मुझे मुक्तहस्त होना ही पड़ा। तीसरे पहर दूकान से रास्ते के खर्च के लिये नोटों के बदले में कुल नगद रुपयों का ही बोझ बाँध लिया। पहाड़ पर चढ़ने के लिये तीन रुपए में तीन लाठियाँ और साथ ले जाने के लिये दस सेर आलू

खरीदकर रात को ही सब सामान बाँध लिया गया। हम लोगों के साथ प्रायः छः मन असबाब था, इसलिये स्वामीजी महाराज ने बोझ ढोनेवाले तीन घोड़ों की भी व्यवस्था कर दी थी। हर एक घोड़ा दो मन तक बोझ ले चल सकता था। फी मन सात रुपएके हिसाब से भाड़ा तै हुआ। कदाचित् यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि बोझ ढोने के लिये सभी यात्रियों को इसी प्रकार घोड़ों की व्यवस्था करनी पड़ी थी।

यदि यहाँ अलमोड़े के संबंध में एक दो बातें कह दी जायँ तो कुछ अप्रासंगिक न होगा। यह एक छोटा-मोटा शहर है जो पाँच हजार फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। यहाँ हमने कोई मकान समतल पर न देखा। मकानों की छतों पर टीन या पत्थर होते हैं। काठ का शिल्प तो कुछ कुछ है, पर और कोई स्थापत्य शिल्प नहीं है। दो-तीन होटल हैं। यहाँ के अलमोड़ा बाजार और म्यूनिसिपैलिटी की अवस्था बुरी नहीं है। बाजार में जो मिठाई आदि खाने की चीजें मिलीं, वह सब अच्छे घी में ही तैयार की हुई जान पड़ीं। भुट्टे के आकार की एक प्रकार की दूध की बनी चीज खाने में बहुत अच्छी लगी। म्यूनिसिपैलिटी ने ऐसी व्यवस्था कर रखी है जिससे प्रायः सभी घरों में पाइप के द्वारा झरने का जल पहुँचता है। स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा है। दो-तीन अच्छे सैनिटोरियम भी हैं। इसके-

सिवा एक ओर क्षय और कास आदि के रोगियों के रहने के लिये कई स्वास्थ्यागार भी हैं। यहाँ की स्त्रियाँ स्वभावतः सुंदरी और लज्जाशीला होती हैं और सदा बहुत सफाई के साथ रहती हैं। उनको देखते ही सम्मान करने की इच्छा होती है। दूर से देखने पर यह शहर पहाड़ पर बने हुए एक रंगीन चित्र के समान जान पड़ता है।

वह रात भी होटल में ही बिताई गई। रात के समय यहाँ मच्छरों का बहुत उपद्रव रहता है, इसलिये सभी के सोने में विलक्षण बाधा हुई थी।

———❀———
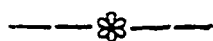
दूसरा पर्व

अलमोड़े से धारचूला

दूसरे दिन अर्थात् ९ आषाढ़ २३ जून रविवार को बहुत सवेरे ही होटलवाले का किराया चुका दिया। सात बजे डाँडी के कुली आ पहुँचे। कुछ कुली तो रात को ही हमारे पास आ पहुँचे थे और होटलके बरामदे में ही सोए थे। हम लोगों के लिये सवारी के दो घोड़े और बोझ ढोनेवाले तीन लद्दू घोड़े भी एक एक करके आ पहुँचे। कैलासपति को प्रणाम करके हम लोग भी एक एक करके यात्रा के मार्ग पर अग्रसर हुए। चलने के पहले जिस समय माल असबाब तौला गया था, उस समय मैंने स्वयं अपने आपको भी एक बार तौल लिया और अपना वजन नोट बुक में लिख लिया था।

दीदी और उनकी साथवाली स्त्री को डांडी में बैठाकर कुली उन्हें लेकर चलते हुए। स्वामीजी आदि अन्यान्य यात्री भी अपने अपने स्थान से सवेरे ही चल पड़े थे। तै हो चुका था कि सब लोग इसी प्रकार अलग अलग अपने अपने स्थान से चलेंगे और धारचूला पहुँचकर मिलेंगे; तब फिर वहाँ से सब लोग एक साथ चलेंगे। हमारे सहयात्री श्रीमान् नित्यनारायण को घोड़े की सवारी का यथेष्ट अभ्यास

था, इसलिये वे अच्छे घुड़-सवार की तरह उस पहाड़ी रास्ते पर धीरे धीरे आगे बढ़ रहे थे और इसमें उन्हें कुछ भी कष्ट नहीं होता था। पर मैं इस विषय में बिलकुल ही अनभ्यस्त था। तिस पर पहाड़ी रास्ता था जो बिलकुल ऊँचा-नीचा था। इसलिये पहले मैं बहुत ही डरा और घबराया था और मन ही मन यह सोचकर अपने समाज और समय को भला-बुरा कहता था कि हमारे देशमें भी साहब लोगों की तरह बाल्यावस्था से ही घुड़-सवारी की शिक्षा क्यों नहीं दी जाती। तो भी घोड़े का मालिक घोड़े को पकड़े हुए बहुत सावधानी के साथ धीरे-धीरे मुझे ले जा रहा था।

इस प्रकार अलमोड़े से निकलकर पहाड़ के पास से होकर हम लोग धीरे-धीरे अपने मार्ग पर अग्रसर हो रहे थे। तीन-चार मील चल चुकने पर जब हम लोग चिताई नामक गाँव में पहुँचे, तब वहाँ मूसलाधार वृष्टि होने लगी। लाचार होकर हम लोग घोड़ों पर से उतर पड़े और दोनों आदमियों ने पास की एक दूकान में आश्रय लिया। दूकान में गरम दूध था। दोनों आदमियों ने आध-आध सेर वह दूध पी लिया। थोड़ी देर बाद वृष्टि की प्रबल धारा कुछ कम हुई। रास्ते में कीचड़ और फिसलन हो गई थी। उसी समय मुझे यह भी मालूम हुआ कि यहाँ से प्रायः डेढ़ मील उतराई का रास्ता है जिससे घोड़े को बहुत तेज चलना पड़ेगा। इसलिये घोड़ेवाले के कहने के अनुसार हम लोग पैदल ही

उतना रास्ता उतर आए। अलमोड़े से चलकर कहीं तो घोड़े पर और कहीं पैदल हम लोगों ने आठ मील का रास्ता तै किया और दोपहर को प्रायः साढ़े ग्यारह बजे बारिछिना नामक एक गाँव में पहुँचे और वहीं स्नान तथा कुछ जल-पान किया। बीच में अचानक एक नई विपत्ति आ पड़ी थी। चिताई की उतराई उतरते समय दीदी को डांडी रास्ते में अचानक आप से आप टूट गई। खैरियत यही हुई कि उन्हें अधिक चोट नहीं आई। इसलिये लाचार होकर वह वहाँ से भूपसिंह के साथ बराबर पैदल ही आई थीं और यहाँ आकर हम लोगों को यह हाल सुनाया था। भाग्य से बारिछिना में किराए की एक नई डाँडो मिल गई। तपोवन के मंत्री स्वामीजी महाराज भी अन्य यात्रियों के साथ उस समय तक वहाँ पहुंच चुके थे। उन्हीं ने इस डाँडी का किराया आठ आने रोज के हिसाब से तै किया था। इस प्रकार उन्होंने दीदी को यह व्यवस्था करके हम लोगों को निश्चित किया। वह टूटी हुई डाँडी हम लोग वहीं डाँडीवाले के पास छोड़कर बारिछिना से रवाना हुए। इस पहाड़ पर हम लोग प्रायः सभी जगह चीड़ के पेड़ों की श्रेणियाँ देखते आए थे। चीड़ के इन वृक्षों से केवल तख्ते ही नहीं तैयार होते। इनसे अलकतरा और ताड़पीन का तेल भी तैयार होता है; इसलिये सरकार को हर साल बहुत-सा रुपया मिल जाता है। बीच-बीच में रास्ते के इधर-उधर झरने की कोई न कोई धारा भी बहती हुई मिलती है जो यात्रियों की

थकावट से उत्पन्न प्यास दूर करती है। इस प्रकार कुछ दूर तक चलने के उपरांत प्रायः साढ़े बारह बजे एक ऊँचे पहाड़ की चढ़ाई आरंभ हुई। हम लोगों के घोड़े भी हम लोगों को धीरे धीरे ऊपर ले चलने लगे। यहाँ यह बतलाने की जरूरत न होगी कि मैं घुड़सवारी में अनभ्यस्त होने के कारण घोड़े की पीठपर बहुत होशियारी के साथ बैठा हुआ था और उसकी लगाम पकड़े हुए घोड़ेवाले के कहने के अनुसार चल रहा था। इस पहाड़के चारों ओर केवल चीड़ के ही वृक्ष नहीं, बल्कि और भी बहुत बड़े बड़े पहाड़ी वृक्ष यथेष्ट संख्या में लगे हुए थे जिससे दिन-दोपहर भी रास्ता अंधेरा हो रहा था। प्रायः दो घंटे तक इस प्रकार गिरते-पड़ते चलने के बाद थका हुआ घोड़ा चढ़ाई समाप्त करके ढाई बजे के लगभग धलचिना नामक स्थान में पहुँचा। डाँडीवालों ने दीदी और उनके साथ की स्त्री को पहले ही वहाँ पहुँचा दिया था।

यहाँ धलचिना में केवल एक ही दूकान थी। दूकान में आटा, घी, मसूर की दाल, तथा चावल, दो-एक तरह के मसाले और प्याज मिलता था। यात्रियों के ठहरने के लिए एक धर्मशाला भी थी। परंतु उसे देखकर हम लोगों को यह विश्वास नहीं होता था कि उसमें मनुष्य भी रह सकते हैं। उसे तो घुड़साल कहना ही ठीक होगा। हाँ, यह भी सुना कि यहाँ एक डाक बँगला है। पर हमारे दुर्भाग्य से उस समय आसकोट के राजा साहब आकर उसमें ठहरे

हुए थे। यह स्थान सात हजार फुट की ऊँचाई पर है। यहां पहाड़ के पत्थरों पर बादल की तरह की एक चीज दिखाई पड़ी। भोजन आदि करने में चार बज गये। उसी समय वहाँ अहमदाबाद से कैलास की यात्रा करनेवाले एक और सज्जन आ उपस्थित हुए। उनक नाम था श्रीयुक्त डाक्टर वी० कौशिक पंडित। उनकी जबानी मैंने सुना कि हम लोगों का दरबान भूपसिंह थक जानेके कारण चढ़ाई के आधे रास्ते पर बैठा हुआ है। वह स्वयं आ नहीं सकता था, इसी लिये उसने डाक्टर साहब से कहलाया था। स्वामीजी इससे पहले ही आ पहुंचे थे। पंडितजी की जबानी यह बात सुनकर उनमें का एक आदमी चला गया और प्रायः डेढ़ घंटे के बाद भूपसिंह को अपने साथ लेकर लौट आया। रात को सोने के लिए कोई छायादार स्थान नहीं मिला था, इसलिए लाचार होकर तंबू खड़ा करना पड़ा था। यहाँ जोंकों का बहुत अधिक उपद्रव दिखाई दिया। रात को सरदी भी खूब लगी थी।

सवेरे जिस समय नींद खुली, उस समय बाहर आकर देखा कि हम लोगों का तंबू खूब अच्छी तरह भींग गया है। रात के समय पानी बरसा था, पर हम लोग दिन भर के बहुत थके होने के कारण सो गए थे कि हम लोगों को पानी बरसने की कुछ खबर ही न हुई। खैर; हम सब लोगों ने जल्दी हाथ मुँह धोकर पहले दिन की तरह

बिछौना और सामान आदि बाँधा और घोड़ेवालों को असबाब सौंपकर अपने अपने घोड़े पर सवार हुए। डाँडी के कुली दीदी को लेकर आगे ही चले गए थे। हम लोगों को असबाब वगैरह बाँधने में कुछ देर हो गई थी, इसलिये स्वामीजी भी दूसरे यात्रियों के साथ वहाँ से चल पड़े थे। केवल हमीं दो आदमी सबसे पीछे चले थे। धलचिना से हम लोग अब उतराई के रास्ते पर ही थे और नीचे उतर रहे थे। कुछ ही दूर आगे चलने पर आकाशभेदी हिमालय पर्वत की, बरफ से ढकी हुई, सभी चोटियों पर प्रभात-सूर्य की जो तरुण किरणें पड़ रही थीं, उनकी ओर हमारी दृष्टि खिच गई। वह कैसा स्निग्ध, उज्ज्वल और मधुर दृश्य था! हम दोनों आदमी तन्मय होकर वह विचित्र रूप-सौंदर्य पान करने लगे। खयाल हुआ कि इसी प्रकार की किरणों से युक्त बरफ से ढके हुए पहाड़ों के बीच में वह कैलासपुरी छिपी हुई है और भूतभावन कैलासपति इस युग में इस मर्त्यलोक के पापांधकार में निमग्न मनुष्यों की दृष्टि से बचकर वहीं जाकर निश्चिंत भाव से विराज रहे हैं। उस दिन के उस नयन-मनोहर दृश्य की स्मृति जीवन में सदा के लिये एक स्मरणीय बात हो गई। अनेक प्रकार के वर्णों से रंजित तुषार का किरीट धारण करनेवाले शृंगों के एक के बाद एक पड़नेवाले स्तर बराबर समुद्र की लहरों के समान दिखाई पड़ रहे थे। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा,

इस प्रकार पास और दूर बहुत से शृंग आपस में क्रमशः मिले हुए थे। अस्तु, एक एक करके कितने ही पहाड़ों और झरनों को पार करते हुए ग्यारह बजे के करीब हम लोगों के घोड़े सरयू-तट पर जा पहुँचे। इस स्थान का एक और नाम शेरा घाट है। थलचिना से यह ग्यारह मील दूर है। वर्षा का आरंभ था, इसलिये इस नदी में मटमैली धारा बह रही थी। इसके ऊपर लोहे का एक सुंदर झूलना पुल था जिसे पार करके हम लोग घोड़ों पर से नीचे उतरे। किनारे पर अनेक रंगों के छोटे छोटे टुकड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। सामने ही एक दूकान थी। उस दूकान में नया चावल, मसूर की दाल, चीनी और दो-एक तरह के मसालों को छोड़कर और कोई चीज नहीं मिलती थी। बस्ती में मुसलमानों के दो-तीन घर हैं। नदी के उस पार पहाड़ पर कलमी आमों का एक बगीचा था जिसमें फजली की तरह बड़े-बड़े आम लगे हुए देखकर मैं उन्हें खरीदने का लोभ संवरण न कर सका। एक रुपए के बत्तीस आम मिले, पर सभी कच्चे थे। दुर्भाग्य से उन आमों को पकाकर खाने की नौबत नहीं आई। भात में मिलाकर नमक के साथ ही खाना पड़ा था। इस स्थान पर तीन ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं, इसलिये वायु के आने का द्वार एक प्रकार से बन्द ही है। असह्य गरमी जान पड़ती थी, इसलिये वहाँ हम सब लोगों ने नदी में अवगाहन करके

स्नान किया। इसके उपरांत भोजन आदि से निवृत्त होकर ढाई बजे के लगभग यहाँ से रवाना हुए। यहाँ से चलने के कुछ ही पहले सियाराम नामक एक पंजाबी साधु, उनके साथ एक पंजाबी स्त्री और सात-आठ दूसरे पंजाबी आ पहुंचे। सियाराम और वह स्त्री दोनों घोड़े पर सवार थे और बाकी पंजाबियों को मैंने पैदल आते देखा था। मैंने सुना कि ये लोग भी कैलास की ओर ही जाना चाहते हैं। तपोवन के मंत्री स्वामीजी महाराज ने अलमोड़े में ही इन लोगों को भी यह बतला दिया था कि धारचूला तक तो इस रास्ते में कैलास के यात्रियों का कोई दल आगे और कोई पीछे जाता है, पर धारचूला से सब लोग एक साथ मिलकर जाते हैं। ये लोग अलमोड़े से एक दिन बाद चले थे।

सरयू-तटसे फिर क्रमशः चढ़ाई आरंभ हुई। इस नदी के दोनों ही ओर केवल ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं। उन पहाड़ों पर भी केवल चीड़ के असंख्य वृक्ष खड़े हैं। यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो चीड़ के इन वृक्षों के आस-पास खजूर के वृक्षों के समान भी बहुत से वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। नदी के किनारे से चलकर प्रायः तीन मील चढ़ाई का रास्ता तै करने पर नउआघोड़ नामक स्थान में चढ़ाई खतम हुई। यहाँ मैंने मुसलमान की एक बड़ी दूकान देखी। उसमें खाने-पीने की सामग्री और बिसातखाने की चीजों के साथ साथ कपड़ों के थान और सिले हुए तैयार कपड़े भी बिक्री

के लिये सजे हुए थे। दूकान का मालिक बहुत ही विनयी और सज्जन जान पड़ा। जब उसने सुना कि हम लोग कैलास की यात्रा करने के लिये जा रहे हैं, तब उसने हम लोगों का यथेष्ट आदर-सत्कार किया और दूकान पर कुछ देर तक विश्राम करने के लिये भी अनुरोध किया। इधर-उधर की बात-चीत होने के उपरांत तब उसने सुना कि हम लोग गोनाई नामक स्थान में रात बिताना चाहते हैं, तब उसने स्वयं ही अपने भाई के नाम हम लोगों को एक पत्र लिखकर दे दिया। इस विषय में उसका बहुत ही आग्रह दिखाई पड़ा कि गोनाई में हम लोग रात को उसी मकान में ठहरें। अब नहुआ-घोड़ से आगे उतराई पड़ी। इस उतराई में एक जगह पर एक छोटा सा झरना मिला, जिसका पुल टूटी-फूटी अवस्था में देखकर हम लोगों के घोड़े पानी के ऊपर से छलांग मारकर ही पार हो गए। वहाँ घुटने भर से ज्यादा पानी नहीं था। इस प्रकार और भी दो मील का रास्ता चलने में गोनाई पहुँचते पहुँचते सन्ध्या हो गई। रात के समय उसी मुसलमान के मकान के बाहरी हिस्से में रहना पड़ा था। वहाँ दो दूकानें थीं। उनमें आटा, घी, प्याज और दो-एक प्रकार के मसाले मिलते थे। पर वहाँ जल का बहुत कष्ट था। वहाँ से प्रायः चार फर्लांग की दूरी पर एक झरने की क्षीण धारा थी और उसी से गाँव के लोगों को जान बचती थी। आज दूसरे दिन सोलह मील की यात्रा हुई थी।

दूसरे दिन अर्थात् ११ आषाढ़, २५ जून, मंगलवार को प्रभात होते न होते असबाब वगैरह बाँध लिया और पाँच बजने से पहले ही रवाना हो गए। इस रास्ते में बहुत से छोटे छोटे झरने नदी के आकार में बह रहे थे। दो-तीन झरनों के किनारे आटा पीसने की पनचक्कियाँ भी देखीं। जल का अनर्गल स्रोत चक्की की कल पर इस प्रकार पड़ता है कि उस दबाव से ही कल घूमने लगती है। गेहूँ पीसने का ऐसा सहज उपाय देखकर इन पहाड़ी अशिक्षित लोगों की प्रशंसा किए बिना न रह सका। रास्ते में एक झरने पर लोहे के पुल की अवस्था बहुत ही शोचनीय जान पड़ी। प्रायः साढ़े ग्यारह बजे चढ़ाई के मुहाने पर झरने की धारा में स्नान और जल-पान आदि कर लिया। इस प्रकार प्रायः आठ मील रास्ता चलकर गादीगढ़ नामक स्थान में पहुँचे। रास्ते में आते समय जगह जगह भाँग के जंगल, कहीं कहीं केवल बिच्छू नामक क्षुप के जंगल और कहीं कहीं बीच बीच में पहाड़ों पर या नदी के किनारे धान के खेत देखे और केले के वृक्षों की खेती भी होती हुई देखी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि झरने के पानी से ही इन सबकी खेती का काम होता है। गादीगढ़ में केवल एक दूकान है और उस दूकानदार के रहने की कुछ कोठरियों के सिवा और कुछ भी नहीं था। यदि यात्री चाहें तो वे यहाँ विश्राम करने के लिये एक बड़ी कोठरी पा सकते हैं। यहाँ से हम लोग

जिस रास्ते पर जा रहे थे, उसके दोनों ओर बराबर ऊँचे ऊँचे पहाड़ थे। उस रास्ते के पास ही पहाड़ पर एक नदी बराबर झर झर शब्द करती हुई दोनों पहाड़ों को कँपाती हुई और प्रतिध्वनित करती हुई बह रही थी। चीड़ के पेड़ों से भरे हुए दोनों पहाड़ों के बीच में इस एकांत रास्ते में चलते समय यात्रियों के हृदय में नदी का झर झर शब्द प्रायः आतंक उत्पन्न करता था।

गादीगढ़ से दो मील चलने पर फिर सामने दो मील की चढ़ाई पड़ी। दस मील रास्ता चलने के बाद अंत में यह दो मील की चढ़ाई चढ़ने के समय हम लोगों के दोनों घोड़े बहुत ही थक गए थे। साढ़े बारह बजे के लगभग हम लोग बेरीनाग नामक स्थान में जा पहुँचे।

बेरीनाग एक संपन्न गाँव है। इस गाँव में संपन्न गृहस्थों के घर कम नहीं हैं। गाँव में चार-पाँच दूकानें हैं। किसी में बिसातखाने की चीजें सजाई हुई थीं और किसी में हलवाई की दूकान की तरह जलेबी, पेड़ा आदि मिठाइयाँ रखी हुई थीं। इसके सिवा आरी नाम का एक प्रकार का फल (खाने में अम्ल, मधुर) और नासपाती भी दूकान में बिक्री के लिये सजाकर रखी हुई थी। वहाँ मैंने चाय की खेती भी होती हुई देखी। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि इतनी दूरी पर भी चाय तैयार की जाती है। दोपहर के समय हम लोगों को वहाँ के स्कूलवाले मकान में आश्रय

लेना पड़ा। सुना कि इस स्कूल में प्रायः डेढ़ सौ विद्यार्थी पढ़ते हैं। आस-पास के गाँवों से भी वहाँ बहुत से छात्र आते हैं। उन छात्रों को हिंदी की शिक्षा दी जाती है। इस काम के लिये तीन शिक्षक नियुक्त हैं। यहाँ स्कूल के हेड मास्टर साहब ने हम लोगों के आराम का बहुत कुछ इंतजाम कर दिया था। उन्होंने रात को भी उसी स्कूल में ठहरने की अनुमति दे दी। पहले हम लोगों ने वहाँ पहुँच-कर स्कूल के बाहर एक पेड़ के नीचे चौतरे के पास रसोई आदि बनाने की व्यवस्था की। दूकान पर अच्छा चावल नहीं मिला था, इसलिये विजयलाल नामक एक व्यक्ति ने बहुत सुगंधित बासमती चावल हम लोगों की रसोई के लिये भेज दिया था। इसमें संदेह नहीं कि इस पहाड़ी प्रदेश में यात्रियों के प्रति इन लोगों की ऐसी सहानुभूति बहुत ही आनंदजनक होती है। यहाँ केवल एक ही झरने की धारा है; इसलिए सरकार ने उस झरने के साथ पाइप का संयोग करके जल लाने के लिये लोहे की एक टंकी तैयार करा दी है। उसी टंकी में झरने का जल बराबर जमा रहता है। गाँव के लोग साधारणतः वही जल काम में लाते हैं। अल-मोड़े से चलकर आज तक तीन दिन में हम लोगों ने बयालिस मील रास्ता तै किया था।

बेरीनाग में डाकखाना था, इसलिये उस दिन हम लोगों ने अपने अपने घर एक एक पत्र भी लिख दिया था। दूसरे

दिन सवेरे हम लोग फिर आगे बढ़ने लगे। इस वार का रास्ता उतराई का था। दो मील पार करके प्रायः सात मील तक नीचे उतरना पड़ा। प्रसन्नता की बात यह थी कि यह उतराई उतरते समय घोड़े को उतना कष्ट नहीं हुआ था। उतराई में पहाड़ पर जगह जगह धान के खेत दिखाई पड़े। कहीं कहीं दो-एक पहाड़ी खेतिहर खड़े खड़े यह सोचते थे कि पास के झरने से किस प्रकार पानी धान के खेत में लाया जा सकता है। एक जगह अमरूद का एक बहुत बड़ा बाग दिखाई पड़ा। इस प्रकार उतराई समाप्त होने पर और भी तीन मील रास्ता चलना पड़ा। इसके बाद प्रायः साढ़े दस बजे हम लोगों के घोड़े थल नामक स्थान में आ पहुँचे।

यहाँ आठ-दस घरों की बस्ती और तीन दूकानें थीं। दूकानों में नया चावल, मसूर की दाल, प्याज, चीनी, घी, आटा और कुछ मसाले मिलते थे। फलों में यहाँ नासपाती बहुत अधिक थी। खुदरा खरीदने में पैसे की चार नासपातियाँ मिलती थीं। एक बहुत ही पुराना और टूटा-फूटा मंदिर प्राचीन धर्म-युग की साक्षी दे रहा था। पूछने पर पता लगा कि यही बालेश्वर का पुराना मंदिर है। इस प्रांत में और भी चार प्राचीन तीर्थस्थान हैं जिनके नाम हैं— पुंगेश्वर, कोटेश्वर, बागेश्वर और भुवनेश्वर। नीचे रामगंगा नदी कल कल नाद करती हुई बहती है। इसकी गति

बहुत ही वेगपूर्ण है। इस नदी के ऊपर लोहे का जो झूला पुल था, उसे पार करके जब हम लोगों के घोड़े डाकघर के पास स्कूल के सामनेवाले मैदान में पहुँचे, तब देखा कि डाँडीवाले दीदी के साथ हम लोगों को प्रतीक्षा कर रहे हैं। जहाँ तक शीघ्र हो सका भोजन आदि से निवृत्त होकर हम लोग फिर आगे बढ़ना चाहते थे। कारण यह था कि यहाँ से दस मील रास्ता चलनेके बाद तब कहीं जाकर रहने के लिये अच्छा स्थान मिल सकता था। इसलिये मैं और श्रीमान् नित्यनारायणजी पासके एक झरने की धारा में स्नान करने चले गए। वहाँ पास ही एक पनचक्की चल रही थी। उसी के नीचे धार में हम लोगोंने अवगाहन करके अच्छी तरह स्नान किया। फिर जो कुछ भोजन बना था, उसी के दो-चार ग्रास जल्दी जल्दी मुँह में डालकर बारह बजे हम लोग फिर यात्रा के लिये तैयार हो गए। डाँडीवाले निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाने के लिये सदा ही बहुत उतावले रहते थे, क्योंकि वे जितनी जल्दी धारचूला पहुँच जाते, उतनी ही जल्दी वे अलमोड़े लौट सकते थे, और वे अपनी मजदूरी तो अलमोड़े की तहसीलदारी से पेशगी ही लेकर चले थे। इसलिये भोजन के उपरांत तुरंत ही वे लोग बिना विश्राम किए दीदी को लेकर आगे बढ़े। हाथ में बंदूक लिए भूपसिंह भी उनके पीछे पीछे चलने को बाध्य हुआ। परंतु हम लोगों के घोड़ेवाले इस समय किसी तरह चलनेके लिये

तैयार नहीं होते थे। वे लोग यही कह रहे थे कि दस मील चलकर आए हुए थके-माँदे घोड़ोंको ठीक इस दोपहर के समय फिर साढ़े तीन मील खड़ी चढ़ाई पर ले चलना उनके लिये बहुत अधिक कष्टकर होगा। ऐसी अवस्था में हम लोगों के बहुत कुछ कहने-सुनने पर उन्होंने जरा भी इच्छा न होनेपर भी किसी तरह घोड़ों को यात्रा के लिये तैयार किया। बोझ ढोनेवाले घोड़ों को भी इस समय यहाँ विश्राम करने का अवसर नहीं मिला; क्योंकि उन्हें भी बोझ लेकर संध्या से पहले ही निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचना था। इस प्रकार हम लोग भी अपने अपने घोड़ेपर सवार होकर चलने के लिये लाचार हुए।

इधर कई दिनों से बराबर घोड़े की सवारी करने के कारण हम दोनों ही आदमियों के शरीर में बहुत पीड़ा होने लगी थी। पर यदि हम लोग शरीर की उस पीड़ा की ओर ध्यान देते तो पहाड़ की चढ़ाई नहीं चढ़ सकते थे। इस समय सभी लोगों के मन में केवल एक बात थी; और वह यह कि आगे चलो, भाई आगे चलो। सभी के मन में क्षण क्षण पर केवल कैलास पहुंचने की दुराकांक्षा ही उत्पन्न होती थी। चढ़ाई पर घोड़े हांफते हुए चल रहे थे। हम दोनों ही आदमी घोड़े की पीठ पर पसीने से तर चुपचाप लगाम पकड़े हुए बैठे थे। किसी तरह तीन साढ़े तीन मील की खड़ी चढ़ाई खतम हुई। जिस समय हम लोग चढ़ाई के ऊपर पहुँचे,

उस समय दोनों ओर से घने जंगलों ने हम लोगों का मार्ग पूर्ण रूप से आच्छन्न कर लिया। क्रमशः सारा मार्ग घोर अंधकारमय हो गया। पहले तो हम लोगों का अवसन्न शरीर इस जंगल को छाया में कुछ शीतल हुआ था, परंतु जब इस प्रकार सारा अपराह्ण इस जन-मानव-शून्य जंगल में बीतने लगा, तब हम दोनों आदमी, बल्कि यहाँ तक कि घोड़ेवाले भी. भयभीत और दुःखी होकर जल्दी जल्दी यही सोचते हुए घोड़े बढ़ाते चले जा रहे थे कि किसी तरह हम लोग निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचें। कोई उलटकर इधर-उधर नहीं देखता था, केवल आगे बढ़ने की ही धुन थी। यदि कभी कहीं किसी मनुष्य या पशु-पक्षी की आहट मिलती तो मन में थोड़ा-बहुत साहस होता था। दिन के समय भी इस जंगली रास्ते से होकर चलने में हम लोगों पर एक प्रकार का आतंक सा छा रहा था। यदि ऊपर से किसी पेड़ पर से एक पत्ता भी हम लोगों के सिर पर गिरता था तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई हिंसक जंतु हम लोगों के पीछे पीछे चला आ रहा है।

इस प्रकार कुछ समय में प्रायः चार मील जंगल पार करके और तब प्रायः ढाई मील उतराई उतरकर अंत में हम लोग हरी घास से शोभित एक मैदानमें आ पहुँचे। उस रास्ते से कुछ दूर चलकर हम लोगों के घोड़े डाँडी-हाट नामक स्थान में जा पहुँचे। उस समय संध्या हो रही थी। वहाँ

से बहुत दूरी पर उत्तर-पूर्व के कोने में बरफ से ढके हुए पर्वत-प्रासाद के शिखरों पर तीसरे पहर के सूर्य की किरणें अपने मायाजाल का विस्तार करती हुई क्रीड़ा कर रही थीं। उज्ज्वल तुषार-राशि पर उनकी लाल आभा दूर से बहुत ही सुंदर जान पड़ती थी। हम लोगों ने देखा कि हमारे पूर्व-परिचित यात्रियों के साथ स्वामीजी भी यहाँ आ पहुंचे हैं। उन लोगों की दृष्टि उन्हीं मधुर दृश्यों पर थी। वृद्ध गंगाधर घोष हाथ में दूरबीन लिए हुए तन्मय होकर विधाता का वह विचित्र दृश्य देख रहे थे। डाँडीवाले डाँडी उतारकर एक ओर बैठे हुए विश्राम-सुख का उपभोग कर रहे थे। हम लोग भी धीरे धीरे घोड़ों पर से नीचे उतरे

स्वामीजी महाराज (अनुभवानंदजी) ने हम लोगों से कुशल-प्रश्न किया। हम लोगों ने उन्हें रास्ते के भयानक दृश्यों की बातें बतलाईं। उन्होंने कहा—"जब आप लोग कैलास जाना चाहते हैं, तब आप लोगों को इस प्रकार के रास्तों को बहुत ही सुगम समझना चाहिए।" जो हो; उस समय हम लोगों के थके हुए शरीर भय का रास्ता पीछे छोड़ आए थे। सामने के दृश्य नवीन राग से रंजित होकर क्षण क्षण पर हमारे नेत्रों में उद्भासित हो रहे थे और बहुत ही थोड़ी देर में हम लोगों का सारा क्लेश और भय दूर भाग गया यह डाँडी-हाट अलमोड़े से बासठ मील दूर है। इस स्थान पर केवल चार-पाँच घरों की बस्ती थी और उनके

सिवा एक धर्मशाला भी थी। उसकी अवस्था देखकर साधारणतः यही भ्रम होता था कि यह गोशाला है। उस कोठरी पर भी उस समय एक नर्त्तकी और उसके साथ के दो सारंगीवालों ने दो-तीन दिन से अधिकार कर रखा था। हम लोगों ने देखा कि स्वामीजी और उनके साथ के दूसरे यात्रियों ने वहाँ एक मकान के सामने के खुले हुए बरामदे में डेरा डाल रखा है, इसलिये हम लोग इधर-उधर यह देखने लगे कि हम लोगों को भी कहीं ठहरने की जगह मिल सकती है या नहीं। अंत में वहाँ के दूकानदार ने अपनी दूकान के ऊपरवाली उस कोठरी में रात बिताने की हम लोगों को अनुमति दे दी जिसमें ईंधन और काठ-कबाड़ भरा हुआ था; और हम लोगों ने उसी को यथेष्ट समझकर अपने आप को धन्य माना। सब असबाब वगैरह बाहर घोड़ेवालों के पास ही पड़ा रहा। जब हमने यह पूछा कि इस दूकान में क्या क्या चीजें मिलती हैं, तब पता लगा कि यहाँ का घी बहुत अच्छा होता है और दूसरे स्थानों से कुछ सस्ता भी होता है। इसलिये हम लोगों ने वहाँ से कुछ घी एक रुपये में चौदह छटांक के हिसाब से खरीदकर अपने साथ रख लिया। हम लोगों ने यह भी सुना कि स्वामीजी और उनके साथियों ने भी यहाँ से कुछ घी खरीद लिया है। रात के समय स्टोव जलाकर कुछ पूरियाँ और थोड़ा सा हलुआ बनाकर जलपान किया गया। दुःख की बात यह थी कि यहाँ जल का बहुत कष्ट था। बड़े

-ही चुके हैं। दूसरा स्थान यह आसकोट अलमोड़े से उनहत्तर मील की दूरी पर है। यह गाँव बहुत ही साफ़ और सुंदर है। चारों ओर दूर दूर पहाड़ों की श्रेणियाँ खड़ी हैं और अपेक्षाकृत ऊँचे पहाड़ पर यह गाँव बहुत प्रशस्त जान पड़ता है। गाँव के बीच से होकर एक रास्ता गया है उस रास्ते पर चार-पाँच दूकानें दिखाई पड़ीं। किसी पर बिसातखाने का सामान था, किसी पर चावल, दाल और मसाला आदि था और किसी पर कपड़े आदि बिक्री के लिये रखे हुए थे। यहाँ प्रायः पचीस तीस घरों की बस्ती दिखाई पड़ी।

हम लोगों के घोड़ों पर ग्रामवासियोंकी कुतूहलपूर्ण दृष्टि पड़ रही थी। उसी के बीच से चलते हुए हम एक धर्मशाला में जा पहुँचे। इतने दिनों के बाद उस पहाड़ी प्रदेश में इस एक मात्र धर्मशाला को देखकर हम लोगों के मन में यह धारणा हुई कि कैलास के यात्रियों के ठहरने के लिये यह एक उपयुक्त स्थान है। वह धर्मशाला नई बनी हुई थी। नीचे चार कोठरियाँ थीं और उनके आगे बरामदा था और ऊपर भी उसी प्रकार चार कोठरियाँ और एक बरामदा था। अभी उसमें इमारत का काम खतम नहीं हुआ था। धर्मशाला से उत्तर की ओर कुछ दूरी पर पहाड़ पर बने हुए दो प्रासाद चित्र की भाँति सुशोभित थे। उन्हें देखकर यह ध्यान नहीं होता था कि इन प्रासादों के अधिकारी या स्वामी साधारण अशिक्षित पहाड़ी होंगे। दोनों

प्रासादों के सामने के सजे हुए बरामदों में से कुछ तो पुराने और कुछ आजकल के ढंग के नए थे अर्थात् वे इन दोनों ही फैशनों के मिले जुले थे और इस प्रदेश में वे बहुत ही अभिनव और रुचिसंगत जान पड़ते थे। पूछने पर पता लगा कि इन प्रासादोंके स्वामी यहाँ के राजा साहब हैं और उन्हीं की यह धर्मशाला भी हं जिसमें आज हम लोगों ने आश्रय लिया है। उस धमशाला में दीदी और उनके साथ की स्त्री और दरबान भूपसिंह तीनां पहले से ही आ पहुँचे थे। हम लोगों को भी वहीं पहुँचते देखकर उन लोगों ने कहा कि अब यहीं विश्राम और भोजन आदि करना चाहिए। दूकान से चावल और घी आदि मँगवाया गया। धर्मशाला से थोड़ी दूर पर आम का एक बगीचा था। उसी में से होकर हम लोग एक झरने के पास पहुंचे और वहीं सब लोगों ने एक एक करके स्नान आदि किया। नासपाती और कच्चा आम यहाँ बहुत अधिक दिखाई पड़ा।

रसोई आदि बन चुकने पर जब हम लोग भोजन करने के लिये तैयार हुए, तब अचानक एक चपरासी एक बड़े थाल में चावल, दाल, घी, मसाला, आटा, चीनी और कई तरह के अचार आदि भेंट स्वरूप लेकर हम लोगों के सामने आ खड़ा हुआ। यह देखकर हम सभी लोग बहुत चकित हुए। पता लगा कि वह चपरासी यहाँ के राजा साहब के यहाँ का है। हर साल कैलास के जितने यात्री यहाँ आते हैं,

उनके तीर्थ-पथ का क्लेश दूर करने के लिये इस प्रकार सब सामान बराबर आता है। केवल यही नहीं, वह आदमी बार बार हम लोगों से पूछने लगा कि आप लोगों को यहाँ किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है। इस दुर्गम अपरिचित पहाड़ी प्रदेश में बहुत दिनों के परिचितों के समान आत्मीय राजा साहब के उसी समय दर्शन करने के लिये बहुत आग्रह हुआ; पर जब उस चपरासी ने यह बतलाया कि राजा साहब के साथ भेंट करने का यह समय नहीं है, तब हम लोग लाचार होगए। हम लोगों ने उस आदमी से कह दिया कि कैलास से लौटते समय हम लोग अवश्य राजा साहब के दर्शन करेंगे, और उसे कुछ इनाम देकर बिदा किया। भोजन आदि कर चुकने पर प्रायः ढाई बजे हम लोग आस-कोट से चलने की तैयारी करने लगे। यहां हम लोगों को आसकोट के राजा साहब के संबंध में थोड़ी बहुत बातों का पता चला था। ये राजा गजेंद्रसिंह पाल बहादुर के वंशधर हैं और इनका राजवंश कुतुर के नाम से प्रसिद्ध चला आता है। कुछ लोगों का कहना है कि मुसलमान बादशाह बख्तियार खिलजी के समय में ढाका, विक्रमपुर के पालवंशी राजा लोग वहाँ से भाग आये थे और यहाँ आकर ठहरे थे। ये राजा साहब उन्हीं के वंशधर हैं। अब ऐति-हासिक लोग ही यह कह सकते हैं कि यह बात कहाँ तक ठीक है। आजकल विक्रम पदकुमारसिंह बहादुर राजपाल

पर प्रतिष्ठित हैं। उनके चार भाई और हैं। उनके पिता के छोटे भाई के लड़के अर्थात् चचेरे भाई कुमार खड्गसिंह पाल बहादुर पिथौरागढ़ के पोलिटिकल डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। ऐसा जान पड़ता था कि इन लोगों की जमींदारी साधारण नहीं है; क्योंकि उसी समय हम लोगों ने सुना था कि धारचूला से और आगे खेला नाम का जो गाँव है, वहाँ तक का प्रायः सारा स्थान इन्हीं लोगों की जमींदारी के अंतर्गत है।

आसकोट से चलने पर आगे बढ़ते ही पहले उतराई पड़ी। यह उतराई भी क्रमशः इतनी खड़ी होती गई है कि घोड़े की पीठ पर चलना हम लोगों के लिये बहुत अधिक कठिन हो गया था। श्रीमान् नित्यनारायण आगे आगे जा रहे थे। यद्यपि अपने देशमें वे एक अच्छे और अभ्यस्त सवार थे, पर इस प्रांत में जान पड़ता था कि उनका वह अभ्यास भी असह्य हो रहा है। इसी लिये वे बीच बीच में तिरछी नजरों से इस अनभ्यस्त सवार की दुर्दशा भी देख लिया करते थे। हम लोगों की अक्षमता के प्रकाशित होने के पहले ही घोड़ेवालों ने स्वयं ही हम दोनों को घोड़ों पर से उतर जाने का परामर्श दिया और इस प्रकार संकट से हम लोगों को जान छुड़ाई। इस बार हम लोग प्रायः तीन या साढ़े तीन मील रास्ता पैदल चलकर नीचे आए। रास्ते में डाँडीवाले और दोदी भी हम लोगों को मिल गईं। ऐसी कठिन उतराई में डाँडीवाले बहुत ही सावधानी से धीरे धीरे

उन लोगों को ले जा रहे थे। जिस समय हम लोग उनके पीछे पीछे उतर रहे थे, उस समय सच बात यह है कि एक बार मैं स्वयं अपने आपको न सँभाल सका और उस ढालुएँ रास्ते पर सामने को ओर मुँह के बल गिर पड़ा। खैरियत यही हुई कि डाँडीवालों में से ही एक आदमी ने मुझे बीच में ही पकड़ लिया और उस यात्रा में आघात से मेरी रक्षा हुई। इस प्रकार नीचे उतरते हुए प्रायः दो बजे गौरीगंगा नाम की नदी का पुल हम लोगों को सामने दिखाई पड़ा। यह नदी उत्तर से दक्षिण की ओर बहती थी। यहाँ पहुँचकर हम सभी लोगों ने कुछ देर तक विश्राम करने की इच्छा प्रकट की; इसलिये डाँडीवालों ने दीदी को डाँडी पर से उतार दिया और हाथ-मुँह धोने के लिये नदी की ओर चले गए।

इस नदी का पाट पचीस-तीस हाथ से अधिक न होगा। इसके दोनों ही तटों पर गगनस्पर्शी पर्वत खड़े हुए हैं। उन पहाड़ों पर अनेक प्रकार के वृक्षों के जंगल लगे हुए हैं। उन्हीं जंगलों में से होकर नदी के किनारे किनारे केवल एक ही तंग रास्ता गया है। उस रास्ते में कहीं मनुष्य का नाम भी नहीं था और दिन के समय भी वह बहुत ही भयानक ज्ञात पड़ता था। हम लोग आपस में इस विषय पर तर्क-वितर्क करने लगे कि ऐसे जंगलों के बीच से होकर नदी के किनारे-वाले तंग रास्ते से कोई अकेला जा सकता है या नहीं। इस पर दीदी और मैं दोनों ही अपना अपना वाहन और यान

छोड़कर और वाहकों को भी पीछे छोड़कर पैदल ही कुछ दूर तक आगे बढ़े। दोनों ही आदमियों के हाथ में वही पहाड़ पर चढ़नेवाली हलकी लंबी लकड़ी थी। इस प्रकार कुछ दूर आगे बढ़ने पर हम लोगों के मन में अनेक प्रकार की चिंताएँ उत्पन्न होती थीं। कैलास कहाँ है, मानस सरोवर कहाँ है, हम लोग कितने दिनों में वहाँ पहुँचेंगे, पहुँच भी सकेंगे या नहीं, इस दुर्गम मार्ग में शरीर से सब लोग स्वस्थ रहेंगे या नहीं, यदि स्वस्थ न रहे तो कौन कौन सी दुर्दशाएँ भोगनी पड़ेंगी, इत्यादि अनेक प्रकार की चिंताएँ उस समय हम लोगों के मन में उठ रही थीं। जब हम लोग इस प्रकार नदी के किनारे किनारे प्रायः एक मील चले आए, तब पीछे से श्रीमान् नित्यनारायण, भूपसिंह और डाँडी तथा घोड़े लिए हुए वाहक लोग भी एक एक करके आ पहुँचे। कहना नहीं होगा कि अब हम लोग भी फिर अपने अपने यान-वाहन पर सवार हो गए। यदि यह कहा जाय कि इस नदी के किनारे पर आप से आप उगे हुए भाँग के जंगल ने रास्ते को एक प्रकार से ढक रखा है तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

इसी प्रकार कुछ दूर और आगे बढ़ने पर एक चढ़ाई के मुहाने पर नदी का भीषण गर्जन सुनकर सब लोगों की दृष्टि उसी की ओर आकृष्ट हुई। मैंने देखा कि रास्ते के पूर्व ओर से एक नदी आकर गोरीगंगा में मिली है और दोनों के संगम-स्थान से ही इस गर्जन की उत्पत्ति हो रही है। इस नदी

का नाम काली है। यह काली नदी जिस स्थान पर गौरी-गंगामें मिली है, उसके पास ही जोलजुबी नाम का एक छोटा गाँव दिखाई पड़ा। वहाँ भोटियों के रहने के दस-बारह घर हैं। इनके सिवा दोनों नदियों के संगम पर तट के ऊपर ही सुना था कि एक ब्रह्मचारी का सुंदर आश्रम है। लेकिन उस समय हम लोगों को यह भय हुआ कि अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने में संध्या हो जायगी, इसलिये उस आश्रम के दर्शन करना स्थगित कर दिया गया और हम लोग जोलजुबी छोड़कर आगे बढ़े। यहाँ जोलजुबी में कार्तिक मास में भोटिया लोगों का एक विशेष मेला लगता है।

अब हम लोग काली नदी के किनारे किनारे चलने लगे। यह नदी बहुत ही तेजी के साथ दो पहाड़ों के बीच में से होकर बहती है। इसके उस पार नेपाल राज्य और इस पार अँगरेजी राज्य है। बीच में यह नदी ही एक मात्र व्यवधान है। लेकिन इस पार से उस पार के नेपाल राज्य की कोई चीज दिखाई नहीं पड़ती। सामने केवल यही दिखाई पड़ता है कि बड़े बड़े आकाशस्पर्शी पर्वत उस राज्य को, दुर्ग की प्राचीर के समान, घेरे हुए हैं। इस पार इस नदी के किनारे किनारे हम लोगों का रास्ता पहाड़ पर से होता हुआ टेढ़ा-मेढ़ा गया है। कहीं तो बीच से थोड़ी सी चढ़ाई पड़ती है और कहीं तुरंत ही फिर उतराई मिलती है; और फिर उस उतराई के बाद तुरंत ही कुछ चढ़ाई पड़ती है। इस रास्ते

में काली नदी का गर्जन सुनते सुनते प्रायः छः मील आगे बढ़ने पर संध्या को सात बजे के लगभग हम लोग बलुआ-कोट नामक स्थान में जा पहुँचे।

यह बलुआकोट अलमोड़े से उन्यासी मील दूर है। इसके नीचे बहनेवाली काली नदी का जल ही इस गाँव के लोगों के लिये अवलंब-स्वरूप है। गाँव में एक फुलवाड़ी है। स्वामीजी अन्यान्य यात्रियों के साथ पहले ही इस स्थान पर आ पहुँचे थे। यहाँ पर एक मुसलमान की केवल एक दूकान है। गाँव में भोटिया लोगों के ऐसे बहुत से घर दिखाई पड़े जिनमें ताले लगे हुए थे। उन घरों को इस रूप में देखकर पहले तो हम लोगों के मन में बहुत भय उत्पन्न हुआ। हम लोगों ने समझा कि शायद इस गाँव में महामारी का उपद्रव हुआ है, इसी लिये गाँववाले यह स्थान छोड़कर कहीं और जगह चले गए हैं। परंतु यह जानकर हम लोगों की आशंका दूर हुई कि वास्तविक कारण यह नहीं है। सुना कि भोटिया लोग हर साल आजकल के दिनों में व्यापार आदि करने के लिये ऊपर अर्थात् गार्वियांग और तिब्बत की ओर चले जाते हैं। गरमी के दिनों में प्रायः पाँच-छः महीने ये लोग ऊपर ही रहकर व्यवसाय करते हैं और कात्तिक मास के बाद पूरे जाड़े भर वे यहीं नीचे रहकर व्यवसाय करते हैं। जो हो; और कहीं हम लोग अपने रहने के लिये स्थान नहीं पा सके। स्वामीजी और उनके साथ के दूसरे यात्रियों ने

पहले से ही पहुँच कर यहाँ के स्कूल की दोनों कोठरियों पर अधिकार कर लिया था। और कोई स्थान न मिलने पर लाचार होकर हम लोगों ने दूकान के पास ही एक ऐसी कोठरी में रात बिताना मंजूर किया जिसमें न दरवाजा था और न खिड़की और जिसमें घोड़ों की लीद भरी हुई थी। यही थी वहाँ यात्रियों की धर्मशाला। प्रवेश करते ही वहाँ की भीषण दुर्गंध के कारण सब लोग नाक सिकोड़ने लगे। हम लोग तो चाहते थे कि बाहर मैदान में ही कंबल से सिर तक ढककर रात बितावें, लेकिन आकाशमें उस दिन विलक्षण उत्पात आरम्भ हो रहा था, इसलिये लाचार होकर उस कोठरी की ही सफाई की गई। कोठरी के एक कोने में सब असबाब रख दिया गया। गीली मिट्टी की जमीन पर बिछाने के लिये एक बिलकुल नई चटाई दूकानदार से मिल गई थी। उसी पर अपना अपना बिछौना आदि बिछाकर रात बिताने की व्यवस्था की गई। दूकान से आटा, घी आदि खरीद कर बाहर के चौतरे पर रसोई बनाने की व्यवस्था की गई। यहाँ से किरासिन तेल मँहगा होना शुरू हो गया था। हम लोगोंको आठ आने बोतलके हिसाब से तेल खरीदना पड़ा था।

दिन भर बहुत अधिक परिश्रम करने के उपरांत रात को भोजन आदि करके जब सब लोग विश्राम का अवसर ढूँढ़ रहे थे, तब आकाश में मेघ घिर आए; और उनके साथ साथ

पहले तो कुछ बूँदाबाँदी हुई और फिर बहुत जोरोंसे पानी बरसने लगा। वह वृष्टि का जल हमारी नाम मात्र की धर्मशाला की छत से सैकड़ों छेदों में हो कर गिरने लगा और उसने हम लोगों का सब बिछौना आदि बिलकुल भिगा दिया। वह सारी रात हम लोगों को बैठकर ही बितानी पड़ी। अँधेरी रात में निर्जन पहाड़ों और जंगलों के बीच में दुर्गंध-मय कोठरी में बैठकर वर्षा के दिन रात भर जागने का हम लोगों के लिए वह पहला ही अवसर था। जब उस रात की दुर्दशा याद आती है, तब शरीर काँप उठता है। उस दारुण दुर्योग के समय हमारे बिहारी दरबान भूपसिंह का उस कोठरी के कोने में बैठे बैठे नाक बजाना उस समय हम लोगों को विचित्र रूप से कानों के लिये सुखकर जान पड़ता था।

दूसरे दिन सवेरे फिर हम लोग अपने अपने घोड़े पर सवार हुए। यद्यपि सारी रात पानी बरसा था, पर फिर भी आकाश में बादल घिरे ही हुए थे। भला विधाता इस विधान से क्यों संतुष्ट रहने लगे कि वर्षा के दिन वृष्टि न हो। हम थोड़े से आदमियों की दुर्दशा से सारे संसार का कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं। हम लोगों के बैठने के लिये घोड़े के साज आदि में का जो कुछ कंबल, आसह आदि था, वह सब भी भींग गया था। रातको घोड़ेवालों या डाँडी के कुलियों में से किसी को वृक्षों के नीचे की जमीन छोड़कर और कहीं आश्रय नहीं मिला था। ऐसी अवस्था में घोड़े

की पीठ पर भींगे हुए कंबल पर बैठकर एक हाथ से अपने अपने सिर पर छाता लगाए हुए और दूसरे हाथ से घोड़े के मुँह की भींगी हुई डोरी पकड़कर उस फिसलनवाले रास्ते पर हम लोगों को विवश होकर आगे बढ़ना पड़ा। दीदी और उनके साथ की स्त्री दोनों डाँडी पर थीं। इसी लिये यद्यपि उन लोगों को छाता लेकर चलने में विशेष कष्ट नहीं होता था, फिर भी मुझे और श्रीमान् नित्यनारायण को बहुत अधिक कष्ट होता था। उस वर्षा के समय उस फिसलन-वाले रास्ते पर चढ़ाई चढ़ते समय अथवा फिसलनवाले रास्ते पर उतराई उतरते समय दोनों ही अवस्थाओं में हम लोग बहुत ही सावधानी के साथ घोड़े की लगाम सँभाले हुए चलते थे। तो भी संतोष की बात यही थी कि उस दिन हम लोगों को बहुत दूर नहीं जाना था। वहाँ से केवल ग्यारह मील की दूरी पर ही धारचूला तपोवन था!

स्वामीजी तथा उनके साथ के लोग उस दिन बहुत तड़के ही बरसते हुए पानी में वहाँ से पैदल ही रवाना हो गए थे। जब वे लोग अपने आश्रम में पहुँच जाते, तब वहाँ तुरत ही उनका कई दिनों का सारा क्लेश दूर हो जाता। मन में आशा हो रही थी कि आज ही जैसे होगा, वहाँ पहुँच जायँगे। सौभाग्य से उस दिन रास्ते में कोई बहुत ऊँचा पहाड़ नहीं मिला। तीन-चार मील रास्ता तै करने पर आकाश कुछ निर्मल हुआ और साथ ही हम लोगों का रास्ता

भी समतल क्षेत्र में आ गया था। इस प्रकार प्रायः आठ मील चलने के उपरांत हम लोगों ने गोपालगाँव में प्रवेश किया। इस गाँव के रास्ते के दोनों ओर केले, आम, अमरूद और खट्टे नीबू आदि के वृक्ष देखकर हम लोगों को आनंद भी होता था और कुतूहल भी इस प्रकार उन वृक्षों को देखते हुए हम लोग आगे बढ़ रहे थे। गाँव के रहनेवाले हम लोगों की ओर उत्सुक दृष्टि से देख रहे थे। किसी किसी ने हर्ष-मिश्रित उत्साह के साथ यह भी पूछा—आप लोग कहाँ जाते हैं? कैलास? अथवा इसी प्रकार के कुछ और भी प्रश्न किए। गाँव के दोनों ओर कहीं तो ईख के खेत थे और कहीं भुट्टे के। तो भी हम लोगों ने देखा कि गाँव के अधिकांश घरों में ताले बंद हैं। यहाँ के निवासी भी व्यापार करने के लिये ऊपर गए हुए थे। ऊपर जाने के समय ये लोग यहाँ से प्रायः कपड़ा, गेहूँ, चावल, आटा आदि ले जाते हैं और वहाँ से उनके बदले में ऊन, नमक और सुहागा आदि लाते हैं। इस प्रकार उनका यह व्यापार बहुत दिनों से होता चला आता है। यहाँ हमें पंजाब का एक ऐसा दूकानदार भी दिखलाई दिया जो पहले तो यहाँ व्यापार करने के लिये आया था, पर फिर यहीं घर बनाकर रह गया और अपनी स्त्री तथा बाल-बच्चोंके साथ यहीं रहता था। यहाँ पादरियों का भी एक अड्डा दिखाई दिया। अलमोड़े से निन्यानबे मील दूर इस पहाड़ी प्रदेश में आने पर

भी इन पादरियों से किसी तरह पीछा नहीं छूट सकता ! उस समय उस अड्डे पर एक ईसाई ईसा मसीह-संबंधी गीत गा रहा था। गाँव में तीन-चार दूकानें थीं। एक दूकान और उससे मिले हुए पोस्ट आफिस के सामने पहुँचकर डाँडी-वालों ने डाँडी उतारकर रख दी और वहाँ विश्राम करने लगे। वे शायद इस गाँव से और आगे नहीं जाना चाहते थे। यहाँ से और आगे दो मील चलने पर स्वामीजी का तपोवन था। उसी तपोवन तक का भाड़ा दिया गया था। जब हम लोगों ने तहसीलदारी कचहरी की एजेंसी में रुपया जमा करने की रसीद दिखाई, तब कुछ देर तक कहा-सुनी करने के बाद और गाँववालों के फटकारने पर लाचार होकर कुली लोग फिर आगे बढ़े। हम समझते हैं कि कुछ इनाम पाने की तरकीब करने के लिये वे इस प्रकार उस गाँव में रुके थे और हमें वहीं छोड़ना चाहते थे। जो हो, दोपहर को ढाई बजे के लगभग हम लोगों ने तपोवन में प्रवेश किया। रास्ते में आते समय हम लोगों ने काली नदी पर उस पार से इस पार आने के लिये रस्सों का बना हुआ एक पुल देखा था। नेपाल राज्य के रहनेवाले लोग इसी रस्सों के पुल से होकर इस पार अर्थात् ब्रिटिश राज्य में आया करते हैं।

———*———

तीसरा पर्व

तपोवन

तपोवन में पहुँचने पर वहाँ के अध्यक्ष श्रीमान् अनुभवानंदजी महाराज ने हम लोगों का विशेष आदर-सत्कार किया और अपने आश्रम में हम लोगों को स्थान दिया। हम लोगों के आने पर अनेक मूर्त्तियों ने एक साथ मिलकर हर्ष-ध्वनि की। अपने पूर्व-परिचित यात्रियों के सिवा उस समय और भी तीन बंगालियों को हम लोगों ने वहाँ देखा और उनका परिचय प्राप्त करने की इच्छा हुई। सुना कि वे लोग भी कैलास के यात्री हैं; एक सप्ताह पहले से यहाँ आए हुए हैं और हमीं लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम लोगों का आनंद दूना हो गया। थोड़ी देर बाद बोझ ढोनेवाले घोड़े भी हम लोगों का माल-असबाब लेकर वहाँ आ पहुँचे। डाँडीवाले और घोड़ेवाले आदि सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक वहाँ विश्राम करने लगे। स्वामीजी महाराज के कहने के अनुसार मैं उन सब लोगों की बाकी मजदूरी चुकाने के लिये तैयार हुआ।

सवारी के दोनों घोड़ेवालों को बावन रुपए पर ठीक किया गया था, जिसमें से दो रुपए उन्हें पेशगी दिए जा चुके

थे। इसलिये उस समय उन दोनों को पचास रुपए दिए गए और साथ ही आठ आने फी आदमी के हिसाब से एक रुपया इनाम भी दिया गया। बोझ ढोने वाले घोड़ों को फी घोड़ा दो मन के हिसाब से कुल छः मन सामान लाने की मजदूरी के बयालिस रुपए चुका दिए गए। डाँडीवालोंने तो पहले ही वहां अपनी मजदूरी लेकर तब डांडी उठाई थी। यहाँ अब वे लोग इनाम मांगने लगे। दीदी की इच्छा के अनुसार उन बारह आदमियों को फी आदमी चार आने के हिसाब से कुल तीन रुपए इनाम के दे दिए। इस तीर्थ-यात्रा में जो कुछ व्यय आदि हुआ था या होने को था, उस सबका हिसाब रखने का भार मेरे ही ऊपर दिया गया था। पहले श्रीमान् नित्यनारायणजी से सब रुपया-पैसा अपने पास रखनेके लिये बहुत कुछ कहा गया था। परंतु उन्होंने इस संबंध में उस्तादी के साथ यही जवाब दिया था कि हम रुपया-पैसा तो बहुत मजे में अपने पास रख लेंगे, पर हमसे खर्च का हिसाब कोई न ले सकेगा। लेकिन दुःख की बात है कि इस प्रस्ताव से उनकी माताजी तनिक भी सहमत न हुईं। इसी लिये लाचार होकर इस विषय का सारा भार मुझे ही अपने ऊपर लेना पड़ा था।

मैं यहां पर एक बात कह देना चाहता हूँ। पाठकों को स्मरण होगा कि रास्ते में दीदी की डाँडी टूट गई थी और बारिछिना में आठ आने रोज के हिसाब से किराए पर एक

नई डाँडी ली गई थी। धारचूला तक पाँच दिन की उनकी मजदूरी ढाई रुपए और यहाँ से फिर वारिछिना तक वह डाँडी ले जाने के लिये पाँच दिन की मजदूरी और ढाई रुपए, इस प्रकार कुल पाँच रुपए कुलियों को दे दिए गए थे। इसके सिवा जो टूटी हुई डाँडी हम लोग वारिछिना में छोड़ आए थे, उसे वहाँ से अलमोड़े की दूकान तक पहुँचाने के लिये हम लोगों को आठ रुपये और भी देने पड़े थे। खरीदी हुई डाँडी दूकान तक वापस पहुँचाने का कारण यही था कि शायद वह टूटी हुई डाँडी देखकर दूकानदार हम लोगों को दाम में से कुछ रुपए वापस दे दे। इन सब विषयों में जो कुछ बंदोबस्त करने की आवश्यकता थी, उस सबका भार तपोवन के अध्यक्ष श्रीमान् अनुभवानंदजी महाराज ने स्वयं अपनी इच्छा से अपने ऊपर ले लिया था। हमारे ऐसे गृहस्थ लोग स्वामी जी से केवल उपकार ही ग्रहण कर आए और इसके लिये मैं उनका सदा के वास्ते ऋणी ही रह गया।

सब लोगों की बाकी मजदूरी चुकाकर मैं और श्रीमान् नित्यनारायणजी पहले से आए हुए कैलास के तीनों यात्रियों के साथ बात-चीत करने लगे। उन लोगों के नाम इस प्रकार थे—श्रीयुक्त नारायणचंद्र राय, श्रीयुक्त नलिनविहारी गुप्त और श्रीयुक्त शीतांशु सरकार। पहले के दो सज्जन कल-कत्ते के रहनेवाले थे। यद्यपि उनकी अवस्था कम थी, पर फिर भी वे मेडिकल कालेज की परीक्षा पास किए हुए डाक्टर

थे और अंतिम सज्जन उक्त कालेज में अभी तक डाक्टरी पढ़ते थे। वे उलूबेड़िया के रहनेवाले थे। यहाँ यह बात लिखकर नहीं बतलाई जा सकती कि विदेश में, और वह भी विशेषतः कैलास के समान दुर्गम पहाड़ी रास्ते में, बरफीले हिमालय के हिम-राज्य में, जब हम लोगों को यह मालूम हुआ कि ये ढाई डाक्टर भी हम लोगों के साथ ही कैलास की यात्रा करेंगे, हम समतलवासी बंगालियों को जिनके साथ कैलास के दर्शन के उत्साह से स्त्रियाँ भी चल रही थीं, मन में कितना अधिक साहस उत्पन्न हुआ था!

जब हम लोगों ने सुना कि रुमादेवी यहीं हैं, तब उनके दर्शन के लिये हम लोगों का मन बहुत चंचल हुआ। हम लोग पहाड़ पर सरकारी रास्ते के पास ही तपोवन के ऐसे बरामदे में थे जिसके साथ चार कोठरियाँ थीं। उनमें से दो कोठरियों में कुछ दवाइयाँ आदि थीं और वहीं डाक्टर लोग रोगियों को देखा करते थे। बाकी दोनों कोठरियों में स्वामीजी और हम लोग ठहरे हुए थे। वहाँ से प्रायः डेढ़ बीघे की दूरी पर कुछ नीचे आकर हम लोगों ने आश्रम का मंदिर देखा। मंदिर में शिवजी प्रतिष्ठित थे। मंदिर के पास रसोईघर के साथ ही छोटी छोटी और भी तीन कोठरियाँ थीं। उन्हीं में से एक कोठरी में दीदी और उनके साथ की स्त्री के ठहरने की व्यवस्था हुई थी। रुमादेवी भी उस समय वहीं उपस्थित थीं। कैलास के यात्रियों के लिये ये

रुमादेवी बहुत दिनों से प्रातःस्मरणीया हो रही हैं। उड स्ट्रीट के रहनेवाले श्रीयुक्त विजनराज चट्टोपाध्याय जिस समय "काश्यप" के साथ कैलास आदि की यात्रा के लिये निकले थे, उस समय इन रुमादेवी का वृत्तांत माडर्न रिव्यू में प्रकाशित हुआ था। यह यात्रा आरंभ करने से पहले मैं स्वयं भी कलकत्ते में उक्त चट्टोपाध्याय महाशय से मिला था। उन्हीं के मुँह से मैंने इन रुमादेवी के संबंध की बहुत सी बातें सुनी थीं और उन्हीं से मैंने यह भी समझ लिया था कि कैलास की यात्रा करने के लिये किन किन चीजों की आवश्यकता होती है। श्रद्धास्पद श्रीयुक्त सत्यचरण शास्त्री और श्रीयुक्त प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय महाशय ने भी अपने भ्रमण वृत्तांत में इन रुमादेवी की यथेष्ट प्रशंसा की है। इसी लिए इन तीर्थ-सेवी आश्रमवासिनी के दर्शन पाने के लिये व्यग्र होने का यथेष्ट कारण था। जिस समय हम लोग उनसे भेंट करने गए, उस समय वे दीदी और उनके साथ की स्त्री को आश्रम के संबंध की सब आवश्यक ज्ञातव्य बातें बतला रही थीं। वे बतला रही थीं कि कौन सी कोठरी किस काम के लिये है, किस रास्ते से काली नदी में स्नान करने जाना चाहिए और कहाँ रसोई बनानी चाहिए, आदि आदि।

जब हम लोग दीदी आदि के पास पहुँचे, तब दीदी ने यह कहकर रुमादेवी के साथ हम लोगों का परिचय कराया कि यही हम लोगों की रुमादेवी हैं। हम लोगों को देखकर

रुमादेवी ने बहुत दिनों के परिचितों की भाँति बहुत ही मीठे स्वर में कहा—"आइए, बैठिए, आप लोग कैलास-यात्री भाग्यवान् हैं।" इसी प्रकार की आदर-सत्कार की और भी अनेक बातें कहकर वे हम लोगों को तृप्त करने लगीं। अंत में जब हम लोग मंदिर आदि देखकर ऊपर आने लगे, तब उन्होंने कई विनय-मधुर वाक्य कहे—"देखिए, आप लोग नए आदमी हैं। आप लोगों को कुछ तकलीफ न हो। आप लोगों की सेवा में हम हाजिर हैं आदि आदि।" और थोड़ी ही देर में हम लोगों के साथ घर के से आदमियों का संवंध स्थापित कर लिया।

वहाँ के रहनेवाले साधुओं में से उस समय कालिकानंदजी महाराज इस बात के लिये विशेष उद्योग कर रहे थे कि यहाँ यात्रियों के सुख और सुभीते में किसी प्रकार की त्रुटि न हो। वहाँ जितने दिन तक हम लोग रहे, हम लोगों का समय बहुत ही आनंद के साथ बीता। कालिकानंद जी महाराज नित्य गाँव में जाकर आश्रम के लिये बाजार से जरूरी चीजें खरीद लाया करते थे। तरकारियों में उस समय कच्चा केला ही बहुत अधिक आया करता था। हमारे जैसे निरामिषाशी लोगों के लिये वह था भी बहुत ही उपादेय। यात्रियों में से पवना-निवासी श्रीयुक्त अविनाशचंद्र राय महाशय का नाम यहाँ विशेष रूप से उल्लेख करने के योग्य है। वे एक बहुत ही सदाचार-संपन्न और प्रकृत निष्ठा-

वान् व्यक्ति हैं। वे जब से आए थे, तब से मंदिर के बरामदे के एक कोने में एक स्थान लेकर ठहरे हुए थे। वे दिन रात में केवल एक बार अपने हाथ से निरामिष भोजन बनाते थे और एक ही बार खाकर दिन बिताते थे। श्रीमान् नित्यनारायणजी बहुत दिनों से आमिषप्रिय थे, इसलिये वे प्रायः भोजन के समय स्वामीजी और डाक्टरों के दल में मिल जाया करते थे।

यद्यपि यहाँ चारों ओर पहाड़ ही थे, तो भी अन्यान्य स्थानों की तुलना में यहाँ सरदी कम थी। कारण यह था कि यहाँ की ऊँचाई तीन हजार फुट से अधिक न होगी। आश्रम में तीन-चार गौएँ थीं और बीच बीच में रमादेवी हम लोगों को उनका खालिस दूध पिलाकर तृप्त करती थीं। इस तरफ के पहाड़ी लोग अपेक्षाकृत सस्ते दाम पर शुद्ध घी बेचा करते हैं। स्वामीजी के कहने के अनुसार हम लोगों ने यहाँ से कुछ घी, आटा और चीनी खरीद ली थी और कैलास के रास्ते में खाने के लिये उनके संयोग से एक तरह की मिठाई तैयार कर ली थी। इस अवसर पर हम तपोवन के संबंध में पाठकों को एक बात बतला देना आवश्यक समझते हैं। हम पहले ही कह चुके हैं कि यह तपोवन धारचूला से प्रायः दो मील दूर है और सरकारी रास्ते के पास ही है। आश्रम के नीचे अर्द्धचंद्र आकार में काली नदी बहुत अधिक तेजी के साथ बहती है। चारों ओर

ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं। उन सब पहाड़ों पर प्रायः मृग आदि देखे जाते हैं। बीच में एक छोटा सा समतल मैदान है और उसी में आश्रम स्थापित है। पास ही गरम जल का एक झरना है। आश्रम की यह जमीन हम लोगों के पूर्व-परिचित आसकोट के राजा साहब की जमींदारी के अंतर्गत ही है। श्रीमान् अनुभवानंदजी महाराज ने बहुत कुछ आवश्यकता समझकर बड़े कष्ट से उक्त राजा साहब से आश्रम के नाम इस जमीन का दानपत्र लिखा लिया है। सन् १९२४ ई० में जब श्री रामकृष्ण मिशन के उक्त स्वामी अनुभवानंदजी महाराज और स्वामी वीरेशानंदजी श्री कैलास और मानस सरोवर के दर्शनों की आशा से इस ओर आए थे, उस समय यहाँ के भोटिया लोगों का बहुत अधिक आग्रह देखकर उनके उद्योग और सहायता से इस प्रांत के लोगों और कैलास के यात्रियों की सेवा के लिये तपोवन की प्रतिष्ठा का पहला आयोजन किया गया था। इस शुभ आयोजन में हम लोगों की इन्हीं रुमा-देवी और श्रीमती हिम्मती पाधानी ने यथेष्ट सहायता की थी। इस बात में संदेह ही है कि यदि इन लोगों का पूरा पूरा उद्योग और सहायता न होती तो उक्त दोनों स्वामीजी इतनी जल्दी इस आश्रम की प्रतिष्ठा करके सब लोगों की दृष्टि आकृष्ट कर सकते या नहीं। सन् १९२६ ई० में इस आश्रम में शिवजी की प्रतिष्ठा की गई थी। उस समय दूसरी

महिला श्रीमती हिम्मती पाघानी ने एक पक्का मकान और मंदिर बनाने का पूरा व्यय-भार अपने ऊपर उठाया था। भोटिया लोगों की चेष्टा से इसी तरह का एक और भी पक्का मकान बना है। आश्रम के अध्यक्ष श्रीमान् अनुभवानंदजी महाराज ने अपने अदम्य उत्साह और परिश्रम से इस आश्रम में आजकल एक चिकित्सालय बनाया है। आज चार वर्षों से इस अस्पताल का काम बहुत ही उत्तमता से होता चला आ रहा है। इस प्रांत में प्रायः ढाई तीन सौ मील रास्ते में अर्थात् तिब्बत तक और कोई चिकित्सालय नहीं है, इसलिये इसकी उपकारिता और प्रयोजनीयता से पहाड़ी और कैलासके यात्री लोग बहुत कुछ लाभ उठाते हैं। इस चिकित्सालयके डाक्टर एक होनहार बंगाली युवक हैं जिनका नाम श्रीयुक्त मन्मथनाथ पालधि, एल० आर० एफ० हैं। ये हुगली जिले के ठकुरानीचक नामक गाँव के प्रसिद्ध डाक्टर श्रीयुक्त अधरचंद्र पालधि महाशय के ज्येष्ठ पुत्र हैं। सन् १९२९ ई० से ये इस अस्पताल के मेडिकल आफिसर हैं। जब से ये यहाँ आए हैं, तब से आश्रम की और भी अधिक श्रीवृद्धि हुई है। श्री स्वामीजी महाराज आजकल हाथ में भिक्षा की झोली लेकर द्वार द्वार इसलिये प्रार्थी होकर घूम रहे हैं जिसमें आश्रम और अस्पताल का काम सर्वांग-सुंदर रूप से चले और रोगियों की सेवा-सुश्रूषा तथा रहने की यथोचित और अच्छी व्यवस्था हो। उनके इस शुभ

उद्देश्य में सभी लोगों को यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए। आश्रम की रिपोर्ट देखने से जान पड़ता है कि दवाइयां आदि खरीदने के लिये अलमोड़े का डिस्ट्रिक्ट बोर्ड हर साल तीन सौ साठ रुपये देता है और युक्त प्रदेश का सरकारी मेडिकल बोर्ड डाक्टर के वेतन के लिये प्रति वर्ष चार सौ रुपए सहायता रूप में देता है। अलमोड़े से इतनी दूर पहाड़ों और जंगलों के बीच में मिशन का सेवा-व्रत का यह आयोजन वास्तव में बहुत अधिक प्रशंसा के योग्य है।

यह पहले से ही तै हो चुका था कि इस धारचूला तपोवन से कैलास के सब यात्री एक साथ यात्रा करेंगे। यहाँ से आगे चलनेपर जो गाँव और मंडियाँ आदि पड़ती हैं, उनमें से केवल दो-एक में खाने-पीने की चीजों में से घी, आटा, गुड़ या मिस्री मिलती है। लेकिन कैलास से लौट कर फिर धारचूला आने में प्रायः एक मास से अधिक का समय लगता है और रास्ते में इन चीजों के सिवा और भी कई चीजों की जरूरत पड़ सकती है। यही सोच कर हम लोगों में से प्रत्येक यात्री ने खूब अच्छी तरह यह समझ लिया कि हमें किस चीज की आवश्यकता होगी और अभी कौन कौन सी चीजें हमारे लिये खरीदने को बाकी हैं। एक तो हम लोग गृहस्थ, और तिस पर साथ में दो दो स्त्रियाँ थीं। इसलिये हम लोगों के मन में आपसे आप यह धारणा उठती थी कि इस दुर्गम मार्ग में चलने पर हम लोगों

को न जाने कितने कष्ट भोगने पड़ेंगे। लेकिन इससे पाठक लोग अपने मन में यह न समझ लें कि स्वामीजी आदि लोगों को इस सम्बन्ध में हम लोगोंसे कुछ कम चिंता थी। मिट्टी के तेल से लेकर रास्ते में पहनने के कपड़े आदि धोने का साबुन तक खरीद लिया गया था। इसमें संदेह नहीं कि इस संबंध में तपोवन के अध्यक्ष श्रीमान् अनुभवानंदजी से हम लोगों को बहुत कुछ उपदेश मिला था। यह बात हम पहले ही कह चुके हैं कि कैलास जानेवाले प्रत्येक यात्री को कैलास की यात्रा आरभ करने से पहले रास्ते में इस तपोवन में कुछ विश्राम कर लेना चाहिए और उक्त स्वामीजी से पहले सब बातें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए और तब कैलास जाने की व्यवस्था करनी चाहिए। ऐसा करने से यात्री लोग पहले से ही अच्छी तरह यह बात समझ सकेंगे कि रास्ते में कौन कौन से कष्ट होते हैं।

जो यात्री आमिष भक्त या मांस-प्रिय होते हैं, उन लोगों के लिये इस मार्ग में चलना उतना अधिक कष्टसाध्य नहीं होता। वे लोग बहुत थोड़े दाम में बकरी या भेड़ का मांस खरीद सकते हैं। यदि वे लोग साथ में थोड़े से मसाले आदि ले जायँ तो वहाँ उन्हें घी सस्ता मिल जाता है और उसमें नमक मिलाने से ही काम चल जाता है। इस यात्रा में जो महीने भर से अधिक समय लगता है, उसमें उनकी रसना को एक प्रकार की उपादेय वस्तु मिल जाती है। उन

लोगों में अरुचि उत्पन्न होने की कोई विशेष आशंका नहीं रहती। इसके सिवा दुर्गम पर्वतों की चोटियों की चढ़ाई और उतराई में भी वे लोग विशेष उत्साहपूर्ण दिखाई पड़ते हैं। लेकिन हमारे जैसे निरामिषाशी लोगों के लिये इस रास्ते में कहीं आलू, कहीं मसालेदार बड़ी और कहीं अरुचि मिटाने के लिये इमली या अचार आदि का संग्रह कर रखना बहुत ही आवश्यक हो गया था। साधुओं में से कालिकानंदजी और गृहस्थ यात्रियों में से पबना-निवासी श्रीयुक्त राय महाशय तथा उत्तरपाड़ा-निवासी घोष महाशय निरामिषाशी थे। बाकी सभी लोग अर्थात् कलकत्ते के सब डाक्टर, दूसरे साधु लोग, श्रीमान् नित्यनारायण और भूपसिंह आदि का मांस का आस्वाद इस मार्ग में खूब ही तृप्तिकर हुआ था, इसमें संदेह नहीं। इस विषय में आमिष-प्रिय स्वामीजी तथा डाक्टरों आदि के दल में मिलकर श्रीमान् नित्यनारायण उनके लिये क्रमशः बहुत प्रिय हो गये थे। उसी प्रकार इधर कालिकानंदजी हम लोगों के दल में मिलकर हम लोगों को उससे अधिक आनंद दान करते थे। इस प्रकार हम लोग आपस में एक दूसरे से परिचित होकर यात्रा के आयोजन में व्यस्त हो गए थे। इधर कई दिनों से श्रीमान् नित्यनारायण रक्तामाशय से पीड़ित हो रहे थे। हम लोगों के साथी डाक्टरों ने उन्हें एमिटीन का इंजेक्शन दिया था (यद्यपि हम लोगों के साथ भी बंगाल

केमिकल का औषधों आदि का बक्स था) जिससे उस यात्रा में उनके रोग की सहज में ही निवृत्ति हो गई थी। जिसे जो जो चीजें खरीदनी बाकी थीं, वे सब उन लोगों ने कालिकानंदजी से मँगवाकर इकट्ठी कर ली थीं। मैंने देखा कि वहाँ बोझ ढोने का निर्ख कुछ अधिक नहीं था। इस मार्ग में घी और आटा ही मुख्य खाद्य पदार्थ कहे जा सकते हैं और ये दोनों चीजें यहाँ अच्छी और सस्ती मिलती थीं। शुद्ध घी रुपए में तेरह छटाँक, आटा रुपए का नौ सेर, मिस्री और चीनी रुपए की डेढ़ सेर, भेली गुड़ बारह आने का ढाई सेर और नमक तीन आने सेर के हिसाब से यात्रियों को मिलता था। बहुत पुराना चावल तो नहीं मिलता था, पर नया चावल जरूर मिलता था। तरकारियों में आलू मुझे नहीं मिला। अलमोड़े से जो आलू खरीद लाए थे, बस उसी का आसरा था। हम कह सकते हैं कि वहाँ केवल कच्चे और पक्के केले का राज्य था। यात्री लोग केवल छः आने पैसे खर्च करके ही एक घौद केला खरीद सकते थे। डर था कि रास्ते में शायद और कहीं आलू न मिले, इसलिये यहाँ जितने दिनों तक हम लोग रहे, उतने दिनों तक अपने बंगाल देश की तरह केले के फूल की तरकारी, केले के डंठल के अंदर के गूदे की तरकारी और कच्चे केले की तरकारी ही हम लोगों का प्रधान खाद्य रही। यहाँ से चलते समय भी हम लोगों ने एक घौद कच्चा केला खरीदकर अपने साथ

रख लिया था। यद्यपि यात्रा में अपने साथ कच्चा केला लेकर चलना अशुभ समझा जाता है, तो भी इस कच्चे केले के साथ रहने के कारण श्रीमान् नित्यनारायण का आमाशय जल्दी अच्छा हो गया था और उसने उनके लिये धन्वंतरि के समान काम किया था।

इन सब बातों की व्यवस्था करने में तीन-चार दिन लग गए। रास्ते में हम लोगों ने सरयू-तट पर (शेरा घाट में) पंजाबी यात्रियों का एक दल देखा था जो कैलास जाना चाहता था; इसलिये अब तक हम लोग उनके आने की भी प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन अभी तक वे लोग नहीं आए थे, इसलिये लोग और अधिक विलंब नहीं करना चाहते थे और चलने के लिये उतावले हो रहे थे। अब लाचार होकर अनुभवानंदजी ने खेला नामक गाँव से कुली ठीक करना आवश्यक समझा। गार्बियांग आदि स्थानों को जाने के लिये साधारणतः वहीं से कुली किराए पर लिए जाते हैं। इन कुलियों के सरदारों को इन देशों में "प्रधान" कहते हैं। प्रधान को बुलवाया गया और तदनुसार वह तपोवन में आ पहुँचा। यात्रियों का दल और उनमें से प्रत्येक का इतना अधिक असबाब देखकर पहले तो वह एक बार खूब जोर से हँसा और तब तरह तरह की बातें पूछने और भाड़े के संबंध में बात-चीत करने लगा। यात्रियों में दो स्त्रियों को भी देखकर सबसे पहले उसने यही पूछा कि

ये लोग किस प्रकार जायँगी। इस पर स्वामीजी ने उत्तर दिया—ये लोग अलमोड़े से यहाँ तक बराबर डाँडी पर ही आई हैं। उससे पूछा गया कि तुम लोग गार्ब्यांग की डाँडी के साथ इनको ले चल सकोगे या नहीं। इसके उत्तर में प्रधान ने साफ इनकार कर दिया।

जब प्रधान ने साफ साफ बतला दिया कि चढ़ाई उतराई के संकीर्ण रास्ते पर डाँडी लेकर किसी प्रकार चला नहीं जा सकता, तब स्वामीजी ने लाचार होकर एक नए और विलक्षण वाहन की व्यवस्था की। उस वाहन की व्यवस्था सुनकर हम सब लोग ठठाकर हँस पड़े। हमें संदेह है कि हमारे पाठक भी उस अभिनव वाहन की व्यवस्था सुनकर अपनी हँसी रोक सकेंगे या नहीं। क्योंकि यदि इस विषय की कल्पना की जाय तो मन में केवल महाप्रस्थान का ही विचार उत्पन्न होता है। यदि पाठिकाओं में से कभी किसी के मन में कैलास दर्शन की इच्छा उत्पन्न हो तो उन्हें भी यात्रा आरंभ करने से पहले एक बार इस विषय पर विचार कर लेना चाहिए।

कैलास प्रायः महाप्रस्थान का मार्ग कहा जाता है, इसलिये उस मार्ग में जाने की व्यवस्था भी उसके अनुरूप ही हो सकेगी। छः-सात हाथ लंबे एक बाँस के दोनों सिरों पर मजबूत रस्सी की सहायता से एक मजबूत दरी या कंबल दोनों ओर से बाँधकर एक झोला तैयार किया जाता है।

इसके बाद उसी झोले में सवार होनेवाला पैर लटकाकर बैठता है और बाएँ हाथ से उसी बाँस पर अपना भार रखकर कुछ कुबड़ा होकर बैठता है। वह सारा रास्ता अर्थात् गार्वियांग तक प्रायः पचास मील उसे ठीक इसी एक ढंग से जाना होता है। अवश्य ही वह बाँस भी उतना ही मजबूत होना चाहिए। यह व्यवस्था सुनकर हमारे साथ की स्त्रियाँ आपस में एक दूसरी का मुँह देखने लगीं; और कोई दूसरा उपाय न होने के कारण अंत में उन्हें लाचार होकर यही व्यवस्था स्वीकृत करनी पड़ी। इधर नव्वे मील का रास्ता उन लोगों ने डाँडी पर ही तै किया था। उस पर चलने में एक सुभीता था। उसमें आगे और पीछे दो दो आदमी अर्थात् कुल चार आदमी रहते हैं और सवार उस पर प्रायः उसी तरह बैठता है जिस तरह तामजाम पर बैठता है और उसे एक तरह से आराम ही मिलता है। उसमें केवल चौड़े रास्ते की ही आवश्यकता होती है। गार्वियांग के समान संकीर्णतर और अप्रशस्त मार्ग की चढ़ाई-उतराई पार करने में इस प्रकार दो आदमी साथ साथ नहीं चल सकते थे; इसी लिये इस अभिनव व्यवस्था की आवश्यकता हुई थी। श्रीमान् नित्यनारायण उस समय बीमार थे, इसलिये उनके संबंध में भी यही उपाय स्थिर किया गया। तीनों आदमियों के तीन वाहनों के लिये तीन बाँस तीन रुपए में खरीदे गए और उनमें बाँधने के लिये

आवश्यक रस्सियाँ भी इकट्ठी कर ली गईं। प्रधान ने बतलाया कि प्रत्येक वाहन के लिये इस लंबे सफर में चार कुली नियुक्त करने पड़ेंगे। जब पहले दो कुली थक जायँगे, तब दूसरे दो कुली उसे उठाकर ले चलेंगे। इस प्रकार तीनों वाहनों के लिये सब मिलाकर बारह कुलियों की आवश्यकता होगी। पर इनके सिवा प्रधान ने एक और अतिरिक्त कुली भी साथ ले जाने की सलाह दी। इसका कारण यह था कि यदि रास्ते में कोई कुली बीमार हो गया तो यह अतिरिक्त कुली उसकी जगह काम देगा। इसके सिवा उस अतिरिक्त कुली के कंधे पर अन्यान्य कुलियों का सामान और खान-पीने की चीजें भी रखी जा सकती थीं। इस स्थान पर पाठकों को एक और बात बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। वह यह कि यदि सवार के शरीर का वजन ज्यादा हो अथवा उठानेवाले कुली उतने अधिक बलवान न हों तो प्रत्येक सवार के लिये उठानेवाले कुलियों की संख्या अधिक से अधिक छः तक भी हो सकती है।

दुर्गम पहाड़ी रास्ते में अचानक कोई ऐसी विपत्ति भी आ सकती है जिसकी पहले से किसी ने कल्पना भी न की हो, इसलिये सब बातों का विचार करके हम लोगों ने भी प्रधान के कथन का ही समर्थन किया। गावियांग तक ले जाने के लिये प्रत्येक कुली की मजदूरी छः रुपए ठीक हुई। प्रधान ने बतलाया कि इन तेरह कुलियों के सिवा हम लोगों

का बोझ ले जाने के लिये और भी सात कुलियों की आवश्यकता होगी। हम लोगों ने पूछा—हर एक कुली अंदाजन् कितना माल उठा सकेगा? उत्तर में प्रधान ने कहा कि प्रत्येक कुली तीस सेर तक असबाब उठा सकेगा। उसने पहले से ही अंदाज से समझ लिया कि हम लोगों का असबाब पाँच मन से अधिक है। हम लोगों को यह समझने में कोई कठिनता नहीं हुई कि बोझ को केवल देखकर ही उसके वजन के संबंध में उसके मन में सूक्ष्म धारणा किस प्रकार हो गई। स्वामीजी के कहने के अनुसार इन बीस कुलियों को प्रत्येक कुली एक रुपए के हिसाब से बीस रुपए पेशगी देने की बात छिड़ी। स्वामीजी ने यह भी कहा कि जब हम लोग कैलास से लौटेंगे, तब यही कुली फिर यहाँ से गार्वियांग जाकर हम लोगों को वहाँसे यहाँ तक ले आवेंगे। इसके लिये भी फी कुली छः रुपए के हिसाब से मजदूरी ठीक कर दी गई और उन्होंने इसके लिये भी फी कुली एक रुपए के हिसाब से पेशगी दे देने की सलाह दी। यह सोचा गया कि लौटने के समय खाने-पीने का बहुत सा सामान कम हो जायगा, इसलिये लौटने के समय के लिये हम लोगों ने केवल अठारह कुलियों को ठीक करना ही उचित समझा और अड़तिस कुलियों के आने-जाने के हिसाब से प्रधान को अड़तिस रुपए पेशगी दे दिए और उसके अँगूठे का निशान कराके उससे रसीद ले ली। स्वामीजी ने उसी समय कह

दिया था कि कुलियों को यह बात यथासमय बतला दी जायगी कि गार्बियांग से हम लोग कब धारचूला की ओर लौटेंगे।

यात्रियों में से कुछ लोगों ने उस समय यह प्रश्न किया था कि लौटने के समय के लिये कुलियों की व्यवस्था इतने पहले से क्यों की जा रही है। इसके उत्तर में स्वामीजी ने कहा था –गार्बियांग से लौटते समय वहाँ कुली ठीक करने में प्राय: बहुत कठिनता होती है। विशेषत: जब नीरपानी का पुल टूट जाता है, तब गार्बियांग के कुली जल्द इस तरफ आना नहीं चाहते। ऐसी अवस्था में उन्होंने पहले से ही यह व्यवस्था कर लेना उचित समझा था। इसलिये प्रत्येक यात्री को यह बात याद रखनी चाहिए कि जिस समय धारचूला से गार्बियांग तक जाने के लिये कुली ठीक किए जायँ, उस समय यदि साथ ही साथ वहाँ से उनके वापसी असबाब वगैरह लाने की मजदूरी भी चुका ली जाय और इसके लिये उन्हें ठीक कर लिया जाय तो उससे एक लाभ तो यह होता है कि यात्रियों को ठीक समय पर लौटने का सुभीता हो जाता है; गार्बियांग में उन्हें कुली ढूँढ़ने में व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना पड़ता; और दूसरे यदि मजदूरी का खयाल किया जाय तो लौटते समय उतनी ही मजदूरी में कुली लोग सब सामान ले आना मंजूर कर लेते हैं। जब हम लोग गार्बियांग से धारचूला लौटने लगे थे, तब यही कुली लोग हमारा सब

सामान वगैरह ले आए थे। पर उस समय दुर्भाग्यवश नीर पानी का पुल टूट गया था, इस लिये कुलियों को कुछ अलग इनाम भी देना पड़ा था। इस संबंध में पाठकों को आगे चलकर मालूम होगा।

स्वामीजी और प्रधान की बात-चीत में यह एक बात खुल पड़ी कि पिछले वर्ष उत्तरपाड़ा से जो कई कैलास-यात्री स्त्रियोंको अपने साथ लेकर आए थे, उन्होंने यहाँ के कुलियों को यथेष्ट अधिक भाड़ा दे देकर कुलियों की मजदूरी के संबंध में बाजार की दर खराब कर दी थी। जो हो, इस प्रकार सभी यात्रियों के बोझ के अनुसार मजदूर और मजदूरी ठीक हो गई। प्रत्येक यात्री प्रत्येक कुली को पेशगी देकर यात्रा की व्यवस्था करने लगा।

यात्रा से ठीक एक दिन पहले पूर्व-परिचित पंजाबी यात्रियों के दल में से एक सज्जन ने आकर अकस्मात् एक ऐसी विपत्ति की बात बतलाई जिसकी किसी को कल्पना भी नहीं थी। उन सज्जन से मालूम हुआ कि उनके दल के प्रायः सभी यात्रियों को हैजे की बीमारी हो गई है और वे सब लोग बलुआकोट में निराश्रय अवस्थामें मृतकों के समान पड़े हुए सहायता की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वहाँ सेवा-सुश्रूषा और चिकित्सा आदि की कोई व्यवस्था नहीं है, और लाचार होकर वे यहाँ स्वामीजी को यह समाचार देने के लिए आगे चले आये हैं।

हम लोग बहुत दिनों से कागज कलमकी सहायता से तो यह अवश्य सुनते चले आए थे कि इस दुर्गम तीर्थ-यात्रा के मार्ग में हैजेकी बीमारी प्रायः फैला करती है; पर आज स्वयं अपनी आँखोंके सामने सहसा उसकी वास्तविक अवस्था का अनुभव करके तपोवन के सभी यात्री किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गए और मन ही मन इस बात की कल्पना करके सब लोग काँप उठे कि बलुआकोट के उस जंगल के बीच में उस दुर्गंध से भरी और खुली हुई कोठरी में रोगियों की उस समय क्या अवस्था होती होगी! अब यही बात-चीत होने लगी कि ऐसे समय स्वामी जी उनके लिये क्या व्यवस्था कर सकते हैं। अन्त में यही ठीक हुआ कि जिस प्रकार हो, उन सब रोगियों को यहीं ले आना ठीक है। उन्होंने हम लोगों के लिये ठीक किए हुए कुलियों को बुलाकर उनसे मजदूरी ठीक कर ली और हम लोगों के अभिनव यान के लिए जो तीन घोड़े खरीदे गए थे और हम लोगों के साथ की स्त्रियों के लिये जो डाँडियाँ थीं, उन सब को साथ लेकर उन कुलियों सहित वे बलुआकोट की ओर चल पड़े।

कहाँ तो उस दिन कैलास की ओर चलने की व्यवस्था हो रही थी और सब लोग दूने उत्साह से उत्साहित होकर यात्रा आरंभ करने का सुयोग ढूँढ़ रहे थे और कहाँ यह आकस्मिक और अप्रत्याशित विपत्ति सामने आ खड़ी हुई और वह यात्रा रह गई। यह बात स्वयं कैलासपति

ही कह सकते हैं कि उस दिन कैलास-यात्रा के मार्ग में उनकी क्या इच्छा थी। स्वामीजी के कहने के अनुसार हम लोगों की यात्रा उस दिन स्थगित हो गई।

दूसरे दिन पंजाबी यात्रियों के रोगी दल को लेकर स्वामीजी तपोवन लौटे। उस दल में दल के प्रधान सिया-रामजी एक अच्छे साधक थे। वही बीमार हुए थे। उनके सिवा उनके भक्तों और शिष्यों की मंडली में से कैलास के यात्रियों में से और भी दो आदमी उस रोग से पीड़ित हो गए थे। उन लोगों के यहाँ आते ही अस्पताल में कोह-राम सा मच गया। स्थानीय डाक्टर श्रीयुक्त पालधि महाशय अपनी स्वभावसिद्ध विचक्षणता के साथ रोगियों की चिकित्सा और पथ्य आदि की व्यवस्था करने में तुरंत ही तत्पर हो गए। उस समय सेवा-व्रतधारिणी रुमादेवी का सेवा-कार्य और दूने जोरों से होने लगा। उस समय उन लोगों की असाधारण शिष्टता, धैर्य और रोगियों की अवस्था के अनुसार उनकी व्यवस्था करने की तत्परता देखकर हम सब लोग मुग्ध हो गए थे।

जिन सज्जन ने पहले आकर पंजाबी यात्रियों के रोगी होने का समाचार दिया था, उनका परिचय बाद में मिला। वे एक बंगाली साधु थे और उनका नाम विवेकानंद स्वामी था। मैंने देखा कि उनके साधु-जनोचित और निश्छल व्यवहार से उस पंजाबी यात्री-दल के सभी लोग उनके प्रति

विशेष रूप से आकृष्ट हुए थे। स्वयं सियारामजी भी उनके साथ बहुत स्नेह रखते थे। जब हम लोगों ने यह सुना कि वही सियारामजी अपने विशेष स्नेह के कारण स्वामी विवेकानंदजी को कैलास तक ले जाने के लिये अपने साथ लाए हैं, तो हमारे बंगाली-यात्री दल के सभी लोगों को मन ही मन विशेष गौरव का अनुभव हुआ।

एक तो हम लोग संख्या में कम नहीं थे, तिस पर यह रोगियों का दल आकर तपोवन में भरती हो गया था; इसलिये तपोवन के सभी कमरे यात्रियों से भर गए थे। जैसे-तैसे वह रात बिताई गई। दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान करना निश्चित हो चुका था, इसलिये हमारे दल के सभी लोग जल्दी जल्दी भोजन आदि से निवृत्त होकर कुलियों को हिसाब से अपना अपना असबाब सुपुर्द करने लगे और सब सामान बाँधने लगे। यद्यपि उन पंजाबी यात्रियों की भी चलने की इच्छा थी, तो भी स्वामीजी ने उन लोगों को यही परामर्श दिया कि जब तक सब रोगी अच्छी तरह आराम न हो जायँ, तब तक उन्हें यहीं अस्पताल में रहना चाहिए। यह भी निश्चय हो गया कि डाक्टर श्रीयुक्त पालधि महाशय पर सब रोगियों की चिकित्सा और पथ्य आदि के संबंध की सारी व्यवस्था का भार छोड़कर स्वयं स्वामीजी महाराज भी हम लोगों के साथ ही चलेंगे। चलने से पहले रूमादेवी के लिये हम सब लोग बहुत उदास हो गए थे;

विशेषतः दीदी जब से यहाँ आई थीं, तभी से उनके प्रति दिन के प्रत्येक कार्य में साथ रहने के कारण उनसे इतना अधिक हेल-मेल हो गया था कि वे रुमादेवी को भी अपने साथ कैलास ले चलने की बात-चीत चला रही थीं। यद्यपि रुमा-देवी कई बार कैलास तीर्थ की यात्रा कर आई थीं, तथापि इस अवस्था में भी जब उन्हें फिर कैलास ले चलने का प्रस्ताव हुआ, उस समय भी हम लोगों ने उनमें जो यथेष्ट उत्साह और आनंद देखा, उससे हम लोगों ने मन ही मन समझ लिया कि श्रद्धास्पद श्रीयुक्त शास्त्रीजी तथा श्रीयुक्त प्रमोद बाबू ने कैलास-यात्रा के मार्ग में उन्हें संगिनी-रूप में पाकर उनके प्रति क्यों इतनी अधिक कृतज्ञता स्वीकृत की थी! परोपकार तथा सेवाधर्म में जो संसार में इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक अपने सुख-दुःख को तुच्छ समझ कर जीवन उत्सर्ग करने में समर्थ हो सकती हैं, वे इस युग में मानवी होने पर भी देवी हैं। उनके सामने हम लोगों का चित्त स्वयं ही श्रद्धा से झुक जाता है। जो हो, हम लोगों ने समझ लिया था कि श्रीमान् अनुभवानंदजी और रुमादेवी दोनों का ही एक साथ इन रोगियों को छोड़कर कैलास जाना इस समय किसी प्रकार संभव नहीं।

चौथा पर्व

धारचूला से गार्वियांग

३ जुलाई बुधवार को दोपहर दो बजे के लगभग हम सब लोगों ने यात्रा आरंभ की। हम लोगों के साथ वही पूर्व-परिचित ढाई डाक्टर (ढाई इसलिये कि उनमें से एक छात्र डाक्टर थे), उत्तरपाड़ा के तीन यात्री, पवना के एक सज्जन और पाँच साधु थे। सभी लोगों ने पहले अपना अपना असबाब कुलियों की पीठ पर उठवा दिया था। वे लोग अपना अपना बोझ लेकर पहले ही आगे चले गए थे। इन लोगों का बोझ ढोने का ढंग भी दार्जिलिंग के कुलियों के बोझ ढोने के ढंग के समान ही दिखाई पड़ा। ये लोग बोझ को रस्सी से बाँधकर उसे पीठ पर लटका लेते हैं और रस्सी को अपने सिर पर माथे के पास अटका लेते हैं। जान पड़ता है कि पहाड़ों की कठिन चढ़ाई और उतराई के समय इस तरह बोझ लेकर चलना अपेक्षाकृत अधिक सुगम होता है। लेकिन बोझ लेकर चलनेवाले कुलियों पर अविश्वास करने का (जैसा कि हम लोग इस देश में सदा करते हैं) यहाँ कोई कारण नहीं है। आप उस पर बोझ लाद दीजिए और उसे अकेला छोड़ दीजिए। फिर

जहाँ आपको पहुँचना है, वहाँ आप उसे छोटी-मोटी सभी चीजों के साथ अवश्य ही पावेंगे। यदि यह बात न होती तो इसमें संदेह नहीं कि इन सब पहाड़ी प्रदेशों में बोझ पर निगाह रखकर कुलियों के साथ रास्ता चलना अवश्य ही दुःसाध्य होता। जब बोझ ढोनेवाले कुली अपना अपना बोझ लेकर चले गए, तब दोनों स्त्रियों और श्रीमान् नित्य-नारायण को ले चलने के लिये तीन अभिनव यान प्रस्तुत हुए। इसके बाद जब उन तीनों यानों पर सवारियों के बैठने की बारी आई, तब उन लोगों के मन की जो अवस्था हुई होगी, उसका वर्णन केवल वही कर सकते हैं। उन लोगों को इस प्रकार बाँस की झोली पर यात्रा करते देखकर उस समय मुझे एक पागल का इस आशय का गाना याद हो आया था—

चढ़ि कै बाँस खटोलना को यह जात मसान।

धर्मप्राण युधिष्ठिर आदि पाँचों पांडव उस युग में संसार की माया छोड़कर जिस पथ के पथिक हुए थे, आज उसी पथ पर इस युग के संसारासक्त और भ्रांतिमति हम नगण्य मनुष्य स्त्री यात्रियों को साथ लेकर चलने लगे थे। हम लोग नहीं जानते थे कि आगे चलने के इस अनजान रास्ते में हम लोगों के भाग्य में कौन कौन सी अतर्कित विपत्तियाँ उपस्थित हो सकती हैं। इस प्रकार अनेक चिंताओं से ग्रस्त होने की दशा में हम सब लोगों ने एक बार कैलासपति के उद्देश्य से उस समय अपना सारा जोर लगाकर चिल्लाते

हुए कहा—कैलासपति की जय ! धारचूलाके सामनेवाले विशाल पर्वत से उसके उत्तर में मानों फिर उसी की प्रतिध्वनि लौट आई। इस प्रकार तीनों यात्रियों को तीनों झूलों पर बैठाकर बाकी हम सब लोग पैदल ही रवाना हुए।

काली नदी के किनारे पहाड़ के पास से होता हुआ वह टेढ़ा-मेढ़ा और सँकरा रास्ता गया है। इस पार ब्रिटिश सीमा में रास्ते की बाईं ओर सिर पर विशाल पर्वत था। बीच में काली नदी प्रचंड वेग से अनंत की ओर बह रही थी और उस पार नेपाल की सीमा में हम लोगों की आँखों के सामने एक और आकाशभेदी पर्वत खड़ा हुआ था। वह मार्ग बिलकुल जन शून्य था। केवल हमीं लोग थोड़े से यात्री थे; और हम लोग यह भी नहीं जानते थे कि ये सब यात्री कितनी दूर तक जा सकेंगे। यद्यपि दिन दोपहर का समय था, तो भी न जाने कैसा आतंक क्षण क्षण पर हम लोगों पर छा जाता था और हमारे प्राणों को व्याकुल कर देता था ! हम सब लोग अपने मन में केवल यही सोचते हुए बिलकुल चुपचाप आगे की ओर बढ़ रहे थे कि अपने उद्दिष्ट स्थान पर कब पहुँचेंगे। कभी कभी बीच में काले रंग के दो-एक पक्षी अस्फुट काकली ध्वनि करते हुए इस पहाड़ से उड़कर दूसरे पहाड़ को पार करते हुए चले जाते थे। अब यहाँ के पहाड़ों पर पहले की तरह चीड़ के वृक्षों की घनी श्रेणियाँ नहीं दिखाई पड़ती थीं। कहीं तो अनेक प्रकार के

पहाड़ी छोटे छोटे वृक्षों के जंगल थे और कहीं उनके छोटे छोटे झुरमुट थे। कहीं कहीं दो-एक पहाड़ी वृक्ष अपना मस्तक ऊँचा किए हुए खड़े थे और उस स्थान की स्वाभाविक निःस्तब्धता का प्रचार कर रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि भोग विलास-वर्जित शिवके समाधि-क्षेत्र कैलास के दर्शनों के लिये जानेवालों को इसी प्रकार निःस्तब्धता के उपासक बनकर अग्रसर होना पड़ता है। इसी प्रकार की अनेक चिंताएँ करते हुए हम लोग धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे।

इससे पहले धारचूला तक का नब्बे मील रास्ता मैंने घोड़े की पीठ पर तै किया था, इसलिये अभी तक चढ़ाई-उतराई के रास्तों पर पैदल चलने का कष्ट मुझे नहीं भोगना पड़ा था। आनंद की बात यही है कि आज का प्रायः पाँच मील का रास्ता दो पहाड़ों के बीच में से होता हुआ पहले बराबर समतल रूप से ही गया था। तो भी उसके आस-पास बीच बीच में बिच्छू के पौधों के बहुत से जंगल पड़ते थे। अनजान में हाथ या पैर में उसके लग जाने से शरीर में जो जलन उत्पन्न होती है, उससे उस दिन हम लोगों में से कोई बच नहीं सका था। यद्यपि यह आरंभ का पाँच मील का रास्ता उस दिन पैदल चलने में कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ था, लेकिन जब अंत में मैंने अपने सामने एक बहुत ऊँचे पहाड़ की चढ़ाई देखी, तब मेरे पैर किसी तरह जरा भी आगे बढ़ना नहीं चाहते थे। बाकी यात्रियों में से कुछ लोग ऐसे

थे जो उस समय तक उस चढ़ाई के ऊपर तक पहुँच गए थे और कुछ लोग बीच में थे। वे हम लोगों को नीचे देखकर बड़े उल्लास के साथ विजयी वीरों के समान संबोधन करके अपने पीछे पीछे चले आने के लिये उत्साहित करते थे और स्वयं आगे बढ़ते चले जाते थे। पर मैं अपने हृदय के दुःख की बात क्या कहूँ! उस पहले ही दिन की चढ़ाई चढ़ने में मुझे जो कष्ट हुआ था, उसका स्मरण करके आज भी मेरा हृदय धकधक करने लगता है। उस दिन सब लोगों के पीछे अकेला मैं ही था। उत्तरपाड़ा के निवासी श्रीयुक्त सुरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय और श्रीयुक्त गंगाधर घोष भी मेरी ही तरह दुर्दशा भोग रहे थे। विशेषतः चट्टोपाध्याय महाशय के पैरों में जो चट्टराज (चट्टी) थे और जिनके संबंध में उन्होंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी कि हम इन्हें कैलास तक योंही पहने चलेंगे, वे इस चढ़ाई के चढ़ने में किसी तरह उनका कहना नहीं मानते थे। मैंने देखा कि जिन कुलियों को हमने पहले से ही भेज दिया था, वे बोझ लिए अब तक उस चढ़ाई के बीच तक पहुँच गए हैं। बोझ उनकी पीठ पर था और सारा शरीर पसीने से तर था। क्षण क्षण पर थके हुए घोड़े की तरह जल्दी जल्दी उनका जो निःश्वास-प्रश्वास चल रहा था, उसका शब्द हम लोगों को और भी विकल कर रहा था। इस प्रकार धारचूला से प्रायः आठ मील चलकर संध्या से पहले हम सभी लोग खेला नामक स्थान में जा पहुँचे।

खेला आठ-दस घरों की बस्ती है। पहाड़ के ऊपर छोटी छोटी कोठरियाँ बनी हैं। गाँव के आस-पास दो एक झरने हैं जिनसे गाँववालों को पीने का जल मिलता है। यहाँ सरकारी डाकखाना भी है। उसके पास ही हमारे साथ के और यात्री पहले से ही पहुँच गए थे। उनमें से कुछ लोग तो हाथ-पैर धोकर बैठे हुए थे और कुछ लोग निर्जीव की तरह बिलकुल लंबे पड़े हुए थे। कठिन चढ़ाइयों और उतराइयों में बराबर अबाध रूप से भ्रमण करनेवाले स्वामी शंकरनाथजी के समान लोग, जो इस मार्ग के क्लेश से जरा भी थकावट का अनुभव नहीं करते थे, एक नासपाती के पेड़ के पास खड़े हुए टकटकी लगाए उसकी ओर देख रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि आज रात को वे उसी की उपासना करने का डौल लगा रहे हैं। ऐसे समय हम लोगों को वहाँ पहुँचते देखकर "कैलासपति की जय" की ध्वनि और प्रतिध्वनि हुई। मैंने देखा कि बाँस की झोलीवाले तीनों यात्री पहले से ही यहाँ आ पहुँचे हैं। झोली के आरोही श्रीमान् नित्यनारायण बीच में घबरा जाने के कारण शरीर को सीधा करने के लिये रास्ते में दो-तीन बार उस झोली पर से उतरे भी थे। उस समय वे मील दो मील पैदल भी चलना चाहते थे और इसके लिये उन्होंने चेष्टा भी की थी। इस प्रकार उस समय सब लोगों की समझ में यह बात आ गई थी कि इन झोलियों के लिये जो अतिरिक्त चार कुली

लिए गए हैं, उनका खर्च बिलकुल फजूल ही हुआ है। जो हो, यहाँ पहुँचने पर हम लोग थोड़ी दूर पर रहने का कोई घर ढूँढ़ने के लिये बाध्य हुए। कारण यह था कि इस डाकखाने में एक साथ इतने आदमियों का समावेश बहुत ही कठिन जान पड़ता था।

इस अवसर पर पाठकों की जानकारी के लिये एक बात बतला देना अप्रासंगिक न होगा। कैलास के समान दूरवर्त्ती कठिन और दुर्गम तीर्थ की यात्रा के समय यदि एकसाथ कुछ अधिक यात्रियों का दल हो तो मार्ग का क्लेश बहुत कुछ कम हो जाता है। यदि दल के किसी एक आदमी का साहस या उत्साह कम हो जाय तो समस्त दल का उत्साह और साहस लेकर उसकी पूर्त्ति भी की जा सकती है। तथापि इस तीर्थ के मार्ग में यदि ग्रामवासियों की दया न हो तो यात्रियों के ठहरने का कोई सुभीता नहीं हो सकता; क्योंकि यहाँ धर्मशाला या चट्टी आदि की कोई व्यवस्था नहीं है, जहाँ रात के समय यात्री लोग ठहर सकें। इसलिये यहाँ बिना अधिक कष्ट स्वीकार या सहन किए और कोई उपाय नहीं है। प्रत्येक यात्री को यह बात बहुत अच्छी तरह स्मरण रखनी चाहिए। अलमोड़े से धारचूला तक आते समय प्रायः प्रत्येक दिन हम लोगों ने रात के समय जहाँ जहाँ विश्राम किया है, वहाँ वहाँ मैंने यही देखा है कि हम लोगों के दल में से जो लोग सबसे पहले गंतव्य स्थान

पर पहुँच गए हैं, उन्होंने दूसरे यात्रियों की अपेक्षा रात को रहने के लिये मकान या दूध आदि के विषय में अपेक्षाकृत अधिक सुभीता पाया है। इसलिये यदि किसी दल में बहुत अधिक लोग हों और वे कुछ भागों में विभक्त होकर एक एक दिन आगे-पीछे जा सकें तो यात्रियों को कम कष्ट हो सकता है। हाँ, धारचूला के तपोवन की बात दूसरी है। वहाँ हम सभी यात्रियों को बहुत अधिक सुख और सुभीता मिला था। एक तो वहाँ कमरे यथेष्ट थे, तिस पर वह स्वयं स्वामीजी तथा साधुओं का निवास-स्थान था; अतः सभी लोगों ने सभी विषयों में वहाँ आशा से अधिक आदर-सत्कार का उपभोग किया था। अस्तु, यहाँ हम लोगों को एक दुमंजिले मकान के नीचे की काठ-कबाड़ से भरी हुई कोठरी के सामने का स्थान मिला था और उसी को हम लोगों ने साफ करके उसके एक ओर अपना असबाब वगैरह रख दिया था और वहीं किसी प्रकार रात बिताने के लिये विवश हुए थे। थोड़ी देर तक विश्राम करने के उपरांत वहीं स्टोव पर कुछ पूरियाँ और थोड़ा हलुआ बना लिया गया था और रात के समय उसी से हम लोगों की क्षुधा की निवृत्ति हुई थी।

तड़का होते न होते सभी लोग बिस्तर पर से उठ बैठे। यदि यह कहा जाय कि रात को पिस्सुओं के उपद्रव के कारण किसी को जरा भी नींद नहीं आई थी, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। ज्योंही हम लोग सोकर उठे, त्योंही कुली लोग

अपना अपना बोझ ठीक करके वहाँ से चलने की तैयारी करने लगे। हम लोगों ने भी जहाँ तक जल्दी हो सका, हाथ-मुँह धोया और एक एक करके गंतव्य स्थान की ओर बढ़ने लगे। अब की सबसे पहले सामने प्रायः डेढ़ मील उतराई का रास्ता था। यह उतराई समाप्त करके हम लोगों ने धौली गंगा पार की। यह धौली गंगा कुछ दूर और आगे चलकर काली नदी में मिल गई है। अब सामने एक ऐसी भारी चढ़ाई दिखाई पड़ी जो ऊपर आकाश तक पहुँची हुई जान पड़ती थी। यह पहाड़ देखकर हम लोग किसी तरह यह नहीं समझ सकते थे कि इस चढ़ाई के बाद भी कहीं कोई गाँव या आदमियों के रहने की बस्ती हो सकती है। इस चढ़ाई के बाद पंगु नाम का गाँव पड़ता है, इसीलिये पहाड़ी लोग इसे साधारणतः पंगु का पहाड़ ही कहते हैं। उस ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने का रास्ता इतना टेढ़ा-मेढ़ा होकर ऊपर गया है कि वह नीचे से ठीक साँप के समान जान पड़ता है—वे चक्र-गति रेखाएँ अस्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। उस समय यदि मैं यह सोचता कि यह चढ़ाई का रास्ता मैं मनुष्य होकर कैसे पार करने में समर्थ हो सकता हूँ, तो शायद मैं कभी उसके ऊपर न चढ़ सकता। कैलासपति का नाम लेकर हाथ में लंबी लकड़ी लिए हुए काँपते हुए पैरों से एक एक करके सभी लोग पंगुलों के समान धीरे धीरे स्वर्ग की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। ऐसा जान पड़ता था कि कैलास जाने के लिये ये सीढ़ियाँ

त्रेता युग में रावण के द्वारा ही निर्मित हुई होंगी। नगण्य मनुष्य के द्वारा इन सीढ़ियों का कभी किसी तरह निर्माण हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार की अनेक कल्पनाएँ मेरे मन में उठ रही थीं। हम लोग ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ते जाते थे, त्यों त्यों इस पर्वत पर एक एक स्थान का मार्ग इतना अधिक संकीर्ण और ढालुआँ होता जाता था कि यदि उसके ऊपर फैले हुए पत्थर के टुकड़ों पर पैर न जमकर फिसल जाते तो किसी तरह निस्तार न होता। उस समय शरीर की बोटी बोटी हो जाती और उसी दशा में वह ठीक पाताल के गर्भ में पहुँचकर विलीन हो जाता। उस समय मन में यही होता था कि क्यों अपने आत्मीय स्वजनों, संसार और लोकालय का त्याग करके इस भयंकर पथ के पथिक होने की दुराकांक्षा मन में उत्पन्न हुई थी।

प्रायः साढ़े तीन घंटे तक चढ़ाई के रास्ते पर चलने के उपरांत दूर से पंगु गाँव दिखाई पड़ा। साढ़े दस बजे के लगभग हम लोग वहाँ के स्कूल की इमारत में पहुँचे। उस समय मार्ग के क्लेश से शरीर बहुत ही गरम था, तथापि वहाँ पहुँचते ही शीत की अनुभूति बहुत बढ़ गई। समुद्र तल से पंगु की ऊँचाई सात हजार फुट से कम नहीं है। यहाँ के स्कूल का मकान दोमंजिला है और अपेक्षाकृत अधिक सुंदर भी है। गाँव भी बहुत छोटा नहीं है। कोई पंद्रह-बीस घरों की बस्ती है। हम लोगों के वहाँ

पहुँचते ही गाँववाले हम सबको घेरकर खड़े हो गए, मानों हम लोग उनके लिये कोई नए प्रकार के जीव हों। जब वहाँ के पटवारी ने सुना कि हम लोग कैलास के यात्री हैं, तब उसने हम लोगों की बहुत कुछ खातिरदारी की और हम लोगों को वहीं दोपहर के समय ठहरकर स्नान और भोजन आदि करने और तब आगे जाने की सलाह दी। कुली लोग पहले से ही यहाँ पहुँचकर विश्राम-सुख का उपभोग कर रहे थे। उस समय की अवस्था समझकर हम लोगों ने वहीं थोड़ी देर तक विश्राम किया और पास के एक झरने में स्नान आदि करके सब लोग भोजन का प्रबंध करने लगे। नीचे मक्खियों का बहुत अधिक उपद्रव दिखाई दिया, इसलिये पटवारी के कहने के अनुसार हम लोग स्कूल की दूसरी मंजिलवाली कोठरी में चले गए और वहीं कुछ तरकारी और भात बनाकर आहार आदि का कार्य संपन्न किया।

आते समय डाक्टर लोग मानसिंह नामक एक व्यक्ति को अलमोड़े से ही रसोई बनाने के लिये नियुक्त करके अपने साथ लेते आए थे। यहाँ जाड़ा अधिक लगता था, इसलिए मानसिंह ने अपने मालिकों का शरीर ताजा रखने के लिये एक नवीन उपाय की उद्भावना की थी। वहीं के एक पहाड़ी से वह एक रुपए में एक जीती मुरगी ले आया और उसे छिपाकर जबह करने का अवसर ढूँढ़ने लगा। पर दुर्भाग्य से एक पहाड़ी दर्शक ने उसका भंडा फोड़ दिया

जिससे दीदी और उनके साथ की विधवा स्त्री इस काम के लिये उस रसोईदार पर उस समय बिगड़ खड़ी हुईं। परिणाम यह हुआ कि वह मुरगी फिर अपने पुराने मालिक के पास लौट गई। पर दुःख की बात है कि रसोईदार का दिया हुआ रुपया लौटकर नहीं आया। इस घटना के कारण उस दिन यात्रियों ने उस रसोईदार से कुछ देर तक अच्छी दिल्लगी की थी। दोपहर को प्रायः दो बजे हम लोग फिर वहाँ से रवाना हुए। पंगु से चलने पर पहले तो प्रायः एक मील की उतराई पड़ी और उसके बाद फिर एक चढ़ाई सामने दिखाई दी। वह चढ़ाई पार करने में हम लोगों को कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ था। तो भी वह चढ़ाई दो मील से कम न होगी, यह उस समय हम लोगों ने अच्छी तरह समझ लिया था। कारण यह था कि पाँच बजे के लगभग वह चढ़ाई समाप्त हो गई थी। साथ ही अबकी जब हम लोग उतराई उतरने लगे, तब हम लोगों को अचानक एक बहुत ही सुंदर दृश्य दिखाई पड़ा। संध्या होने में अभी थोड़ी ही देर थी। वहाँ से कुछ दूरी पर एक पहाड़ पर बरफ पड़ रहा था जिससे उस पहाड़ की अनुपम सुंदरता हम सब लोगों की आँखों के सामने उद्भासित होने लगी। मेरे मन में तो ऐसी इच्छा उत्पन्न हो रही थी कि उस सुंदर दृश्य की सारी माधुरी एक ही निमेष में पान करके उसे निःशेष कर दूँ। अस्त होते हुए सूर्य की वह लाल रंग से रँगी हुई

किरणमाला उस गगनस्पर्शी पर्वत के तुषारपूर्ण अंगों पर पड़कर बायस्कोप के समान प्रति क्षण मानों नए चलते-फिरते चित्र का अभिनय-चातुर्य दिखाकर अनजान में अपने सौंदर्य पर आप ही मोहित हो रही थी। दुःख की बात है कि इस अभिनय-चातुरी के अनंत सौंदर्य की सृष्टि इस नश्वर जगत के यात्रियों के लिये नहीं हुई थी। वह अनजान में पहाड़ों की आड़ में सौंदर्य-पिपासु मनुष्यों की दृष्टि से बिलकुल दूर अपनी छटा फैला रही थी। जान पड़ता है कि सृष्टिकर्त्ता ने यही सोचा होगा कि रास्ते की थकावट से हम लोगों की जो आँखें अंधी हो रही थीं, वे मोह-रूपी अंधकार से निकलकर कहीं उस सदा उज्ज्वल रहनेवाले स्निग्ध सौंदर्य में बिलकुल ही निविष्ट न हो जायँ; इसलिये जितनी मनोरमता थी, वह सब कौशल से इन परम दुर्गम, दुर्लंघ्य पर्वत-श्रेणियों के बीच में छिपा रखी थी।

सुना कि उस पहाड़ का नाम काली था। इसी के नीचे सिरदांग है। जान पड़ता था कि उतराई के मुहाने पर नीचे इस गाँव को किसी ने छोटे खिलौने की तरह बहुत सफाई के साथ सजा रखा है। पास ही बाईं ओर के ऊँचे पर्वत के एक स्थान पर पादरियों के एक अड्डे से एक बड़ा घंटा टन टन शब्द करता हुआ जोरों से बजा। मैंने सोचा कि इन लोगों ने भी खूब अच्छा स्थान देखकर यहाँ अपना उपासना-मंदिर बनाया है और अपना जाल बिछाने का अपूर्व

कौशल दिखलाया है। संध्या छः बजे लगभग हम लोग सिरदांग गाँव में जा पहुँचे। यहाँ पहुँचने पर हम लोग मारे जाड़े के घबरा गए। पटवारी के साथ बात-चीत करने के बाद हम लोगों ने रात भर अपने रहने के लिये एक बड़ी कोठरी का बन्दोबस्त कर लिया। यह घर अन्यान्य स्थानों के घरों की अपेक्षा कुछ बड़ा था। घर के एक कोने में हम सब लोगों ने अपना असबाब वगैरह रख लिया।

ज्यों ज्यों हम लोग आगे बढ़ते चलते थे, त्यों त्यों इन सब गाँवों में रहनेवाले भोटिया लोगों की वेश-भूषा में अधिक परिवर्त्तन दिखाई पड़ता था। सूती कपड़ों की जगह यहाँ लोग प्रायः ऊनी कपड़ों का व्यवहार करते हैं। इन लोगों की आकृति की रुक्षता और वेश-भूषा की अपरिच्छन्नता देखकर यह साफ पता चल जाता है कि इन्हें आज तक कभी स्नान आदि करने का अभ्यास ही नहीं रहा। इसी लिये जब कोई इन लोगों के पास जाकर इनके साथ थोड़ी देर तक बात-चीत करता है, तो विषम दुर्गंध के मारे उसकी नाक फटने लगती है। इनकी लाल आँखों में सदा कीचड़ या मल भरा रहता है। इन हाथ-पैरवाले मनुष्यों को अपने सामने देखकर सहज में ही यह बात समझ में आ जाती है कि इन लोगों की प्रकृति साधारण मनुष्यों की प्रकृति से कुछ भिन्न है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही बहुत कम लज्जाशीला जान पड़ीं; उनके वस्त्र और शरीर पुरुषों की अपेक्षा कुछ

अधिक स्वच्छ होते हैं और स्नान आदि की ओर भी उनका लक्ष्य रहता है। दूसरे यात्रियों के यहाँ पहुँचने से प्रायः एक घंटा पहले ही हम लोग यहाँ पहुँचे थे। जब अँधेरा होता देखकर हम लोगों ने पटवारी से कहा कि हमें अपनी लालटेन के लिये मिट्टी के तेल की आवश्यकता है, तब उसने एक रुपए में एक बोतल मिट्टी का तेल भरवाकर मंगा दिया।

स्वामीजी के कहने के अनुसार धारचूला से ही हम लोगों ने पेट्रोल के एक खाली कनस्तर में मिट्टी का तेल खरीदकर भर लिया था और वह कनस्तर बराबर कुली की पीठ पर लदा हुआ साथ चला आ रहा था। यही समझकर अभी तक हम लोग वह तेल काम में नहीं लाए थे कि मार्ग के अंत तक पहुँचने पर कहीं मिट्टी के तेल का बिलकुल ही अभाव न हो जाय। रात को भोजन के समय थोड़ा दूध भी मिल गया था। यदि यहाँ हम अपने यहाँ के सेर के हिसाब से दूध खरीदने जायँ तो वह आठ आने सेर से कम किसी तरह नहीं मिल सकता। अन्यान्य यात्रियों के साथ स्वामीजी यहाँ आने पर आज स्कूलवाले मकान में ही ठहरे थे।

आकाश में बादल छाए हुए थे और रात में थोड़ी-बहुत वर्षा भी हुई थी। दूसरे दिन तड़के ही हाथ-मुँह धोकर और कुलियों पर असबाब लादकर फिर हम लोग आगे चले। पहले प्रायः ढाई मील की उतराई उतरकर साढ़े सात बजे

के लगभग हम लोग एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ जंगलों से भरे हुए पहाड़ के बीच में से चढ़ाई का एक रास्ता था। उसी रास्ते से हम लोग ऊपर चढ़ने लगे। अनेक प्रकार के बड़े बड़े और घने पहाड़ी वृक्षों के कारण वहाँ दिन के समय भी साधारणतः अंधकार छाया हुआ था। इसके सिवा उस जगह की हवा इतनी नम थी कि पहाड़ के पत्थरों पर और रास्ते में सभी जगह एक तरह की सेवार उग आई थी जिससे रास्ते में बहुत अधिक फिसलन हो गई थी। मैंने यह भी देखा कि नमी की अधिकता के कारण बड़े बड़े वृक्षों के तनों और शाखाओं पर भी वह सेवार जम गई है और उस पर से फिर छोटे छोटे अंकुर निकले हैं। ऐसी अवस्था में वृक्षों का असली स्वरूप मानों बिलकुल ढक सा गया था और उनके वास्तविक स्वरूप तथा आकार का जल्दी कुछ पता ही नहीं चलता था।

इतने दिनों के बाद यहाँ एक स्थान पर पहुंचकर जंगल में इन्हीं सब वृक्षों पर लंगूरों के एक दल को इधर से उधर खूब कूदते देखा और तब हम लोग यह मानने के लिये विवश हुए कि यहाँ जीव-जंतुओं का भी अस्तित्व है। जान पड़ता था कि मनुष्यों से नितांत शून्य और जंगलों से भरे हुए इस अँधेरे रास्ते में इन लंगूरों ने बीसवीं शताब्दी की रोशनी देखे हुए हमारे जैसे सभ्य भव्य यात्रियों का दल और पहले कभी नहीं देखा था; इसी लिये हम लोगों के वहाँ पहुँचने पर

वे अपना स्वभाव-सुलभ दंत-विकाश करके बहुत कुछ स्वागत संभाषण करने लगे थे। हम लोग हाथों में लंबी लंबी लकड़ी लिए हुए निर्भीकों के समान (यद्यपि इस जंगल में हम लोग उनके प्रभाव से मन ही मन बहुत कुछ भयभीत हो रहे थे) उस फिसलनेवाले रास्ते पर बहुत ही सतर्क होकर आगे बढ़ रहे थे। चलते समय रास्ते में एक तरह के छोटे छोटे बहुत से मच्छड़ एक साथ ही हम लोगों के पैरों में काटते थे जिससे हम लोग बहुत ही परेशान हो गए थे। कहीं कहीं ऐसा भी होता था कि लहू पीनेवाली जोंकें आकर पैरों पर बैठ जाती थीं और चुपचाप मोजा भेदकर बिना युद्ध किए ही खून निकालकर हम लोगों के इस प्रयत्न में बहुत कुछ बाधा पहुँचा रही थीं। इन सब बाधा-विपत्तियों की ओर कुछ ध्यान न देकर हम लोग धीरे धीरे चलते हुए प्रायः दो मील की चढ़ाई चढ़ गए और तब उसके बाद उतराई पड़ी। इस उतराई के रास्ते में भी बहुत फिसलन थी। इसलिये उस दिन जो जो दुर्दशाएँ भोगनी पड़ी थीं, उनका पूरा वर्णन केवल यात्री लोग ही कर सकते हैं।

प्रायः तीन मील की उतराई उतरने में मैं दो घंटे देर करने के लिये बाध्य हुआ था। हाथ में लंबी लाठी लिए रहने पर भी चट्टराज-धारी श्रीयुक्त सुरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के समान लंबे-चौड़े आदमी को भी दो-तीन बार फिसलकर पत्थरों का आलिंगन करना पड़ा था। अस्तु, दोपहर को

प्रायः बारह बजे हम लोगों ने नीचे उतरकर एक अच्छा और बड़ा झरना देखा। यद्यपि झरने का स्रोत बहुत तेजी के साथ बह रहा था, तो भी उसके दोनों किनारों पर पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़े सजे हुए थे; अतः उन पर विश्राम करने में बहुत सुभीता हुआ था। मैंने देखा कि अन्यान्य यात्रियों के साथ स्वामीजी पहले से ही झरने के बहुत पास बैठे हुए विश्राम-सुख का उपभोग कर रहे हैं।

जब हम लोग पास पहुंचे तब स्वामीजी ने कहा—आज उतराई उतरने में सभी लोगों को बहुत कष्ट हुआ है; इसलिये इसी स्थान पर इस झरने के किनारे स्नान और भोजन आदि करके कुछ विश्राम कर लेना चाहिए और तब दो मील और आगे चलकर गाला नामक गाँव में रात भर रहेंगे। इस स्थान का नाम सामखेला था। ऐसा प्रशस्त झरना सामने देखकर सब लोग वहीं स्नान और भोजन आदि की व्यवस्था करने लगे। हम लोगों की यह व्यवस्था देखकर सब कुलियों ने भी लाचार होकर हम लोगों का अनुसरण किया।

भोजन आदि कर चुकने के उपरांत चार बजे के लगभग हम लोगों ने फिर वहाँ से चलना आरंभ किया। इस बार के रास्ते में न तो कोई विशेष चढ़ाई थी और न उतराई। उसी झरने के पास से होते हुए प्रायः दो मील रास्ता चलकर संध्या से पहले ही हम लोग गाला नामक गाँव में जा पहुँचे।

वहाँ केवल दो ही तीन घरों की वस्ती थी। इन घरों के एक ओर फूस से छाई हुई एक लंबी कोठरी सी थी। वह स्थान डाक के हरकारे के ठहरने आदि के लिये बना था। वही लंबा घर हम सब लोगों के लिये आश्रय-स्वरूप था। उस रात को पहले पहल हम सब लोग एक साथ उस लंबे घर में रहने के लिये विवश हुए थे।

यह गाला गाँव एक ऊँचे पर्वत के कोने पर बसा हुआ है। यदि रास्ते से इसका तल-देश देखा जाय तो यही जान पड़ता है कि वह सामखेलावाला प्रशस्त झरना ही टेढ़ा-मेढ़ा होकर कहीं जाकर मिल गया है। इतनी दूर से उसका निरंतर होनेवाला झर झर शब्द दूर से सुनाई पड़नेवाले संगीत के समान कानों में अस्पष्ट स्वर की तरह जान पड़ता है। चारों ओर अनंत पर्वत हैं। इन सब पर्वतों पर छोटे छोटे सघन वृक्षों को दूर से देखकर ऐसा जान पड़ता है कि किसी चीज ने अस्पष्ट छाया के समान पर्वतों को ढक रखा है। यह भी जान पड़ता है कि इन सब पहाड़ों को लाँघकर किसी ओर जाने का कोई रास्ता ही नहीं है। विलकुल अज्ञात राज्य है। उसी राज्य में स्वप्न के समान हम लोग बराबर घूम रहे हैं। समय समय पर हम लोगों के मन में इस प्रकार की न जाने कितनी ही चिंताएँ उत्पन्न होती थीं कि यहाँ इन थोड़े से साथियों और यात्रियों के सिवा हम लोगों का और कोई संगी-साथी नहीं है; और यह भी ठीक

नहीं है कि कितने दिनों में हम लोग अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचेंगे।

हम लोग जिस घर में ठहरे हुए थे, उससे प्रायः एक फरलांग नीचे एक पुराना और टूटा-फूटा घर दिखाई पड़ता था। मैंने सुना कि आज दो दिन हुए, उसमें बाहर से आया हुआ एक आदमी हैजे से मर गया है। उसका मृत शरीर अभी तक उसी घर में पड़ा हुआ है। इस देश की प्रथा के अनुसार उसकी मृत्यु का समाचार पटवारी को दे दिया गया है। जब पटवारी आकर जाँच कर जायगा, तब उस शरीर की अंत्येष्टि क्रिया होगी! दुःख की बात थी कि आज दो दिन से पटवारी की जाँच हो ही रही थी।

हम लोगोंने अपने घर के पास ही पहाड़ पर कुछ खेतों में आलू और कुम्हड़े की खेती देखी थी। यात्रियों में उस समय यह प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि इस समय यहाँ थोड़ा आलू खरीद लेना चाहिए। परंतु दुर्भाग्यवश आलूका मालिक आलू बेचने के लिये तैयार नहीं हुआ। उसने उस समय के व्यवहार के लिये केवल दो सेर आलू दे दिए थे। उस समय हम लोगों के एक साथी यात्री ने हम लोगों से कहा कि उस खेत के ऊपर सामनेवाले दूर के पहाड़ की ओर देखिए। इसके अनुसार हम सब लोगों ने एक साथ ही उस ओर देखा। लेकिन जब वहाँ कोई देखने लायक चीज नहीं दिखाई दी, तब हम लोग आपस में एक दूसरे की

ओर देखने लगे। इतने में एक आदमी बोल उठा—असंख्य भेड़ों का दल पहाड़ पर चर रहा है। यद्यपि यह एक बहुत ही साधारण सी बात जान पड़ी तो भी मैंने देखा कि इतने ऊँचे पहाड़ की ढालू जमीन पर उनका अबाध रूप से विचरण अवश्य ही कुछ विस्मयजनक था। पर इससे भी अधिक आश्चर्यजनक जान पड़ा सब लोगों का ध्यानपूर्वक उनको देखना। स्याही की छोटी छोटी अगणित बूँदों की तरह वे धीरे धीरे पहाड़ पर इधर-उधर घूम रही थीं। उस समय वह दृश्य देखकर हम लोगों को बहुत कुतूहल हुआ था।

अस्तु, उसी फूस से छाये हुए एक लंबे घर में आज हम पंद्रह-सोलह यात्रियों को एक साथ ही रात बितानी पड़ेगी। इधर संध्या ने धीरे धीरे बहुत घना अंधकार फैला दिया था। अचानक डाक के हरकारेने स्वामीजी के नाम का एक पत्र लाकर दिया। वह पत्र धारचूला से डाक्टर श्रीयुक्त पालधि महाशय ने भेजा था। वह पत्र देखकर सभी लोग उन पंजाबी यात्रियों का कुशल-समाचार जानने के लिये उत्सुक हुए। दुःखकी बात है कि उस पत्र में सियारामजी और उनके साथ के दोनों यात्रियों की मृत्युका समाचार लिखा था। बहुत यत्नपूर्वक उनकी चिकित्सा करने पर भी डाक्टर साहब उन्हें किसी प्रकार बचा नहीं सके थे। यह समाचार सुनकर सभी लोगों को बहुत अधिक कष्ट हुआ। पत्र से यह भी पता चला कि बाकी और सब यात्री तो अच्छी तरह

हैं, पर अपने नेता और गुरु सियारामजी की मृत्यु हो जाने के कारण अब उनमें से कोई कैलास की यात्रा नहीं करना चाहता था। इन लोगों की यात्रा के मार्ग में अचानक इस प्रकार का भारी विघ्न देखकर हम लोगों का बहुत कुछ उत्साह नष्ट हो गया। यह सब देख सुनकर सब लोगों को फिर से उत्साहित करने के लिये स्वामीजी तथा अन्यान्य यात्रियों ने कैलासपति के उद्देश्य से कुछ देर तक भजन गाने का प्रस्ताव किया। हम लोगों में से प्रायः सभी को इस रस का समान रूप से ही ज्ञान था। इसलिये किसी को अपनी विद्या प्रकाशित करने में कोई आपत्ति नहीं हुई। भजन आरंभ हुआ। स्वामीजी के दल ने पहले एक भजन का पहला चरण गाया और तब बाकी सब यात्री भी उसी सुर में गाने लगे। इस प्रकार संगीत का 'कोरस' होने लगा। उस दिन प्रायः दो घंटे तक खूब मजे में हम लोगों का भजन-साधन होता रहा। उस समय एक गाना मुझे बहुत ही अच्छा लगा, पर उसके केवल दो ही तीन चरण इस समय मुझे याद हैं। इसी लिये यहाँ पर उन्हें उद्धृत करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। वह भजन इस प्रकार था। (यहाँ उसका हिंदी रूपांतर दिया जाता है।

कर्णाट एक-ताल

ताथैया ताथैया नाचे भोला बम् बम् बम् बाजे गाल।
डिमि डिमि डिमि डमरू बाजे हिले कपाल की माल॥

जिस समय सब लोग एक साथ मिलकर यह भजन गा रहे थे, उस समय सब लोग आनंद में पूर्णरूप से मग्न हो गए थे। उस समय इस महायात्रा के मार्ग के भीषण कष्टों या गृहत्यागी गार्हस्थ्य जीवन के नित्य-प्रति के झगड़े-बखेड़ों के लिये मन में कोई स्थान ही नहीं रह गया था। इस प्रकार वह रात गाला में बिताकर दूसरे दिन तड़के हम लोग फिर वहाँ से रवाना हुए। पहले ही रास्ते के पास पहाड़ के एक चबूतरे पर दो-तीन पहाड़ियों से भेंट हुई। वे बहुत सी भेड़ों का दल (जिसे वे कल संध्या के समय पहाड़ पर चराते फिरते थे) लिए हुए इसी रास्ते से आगे बढ़ने का आयोजन कर रहे थे और प्रत्येक भेड़ की पीठ पर दोनों ओर आटे और गुड़ आदि से भरी हुई चमड़े की छोटी छोटी थैलियाँ लाद रहे थे। जब उनसे पूछा गया कि इन थैलियों का बोझ कितना होगा, तब मालूम हुआ कि प्रत्येक भेड़ पर प्रायः दस-बारह सेर बोझ लादकर यह चढ़ाई-उतराई का रास्ता अच्छी तरह पार किया जा सकता है। ये सब लोग व्यापारी थे। ये लोग हर साल इन्हीं दिनों में ये सब चीजें लेकर इसी रास्ते से तिब्बत तक जाते हैं और वहाँ से इनके बदले में ऊन, नमक, सुहागा आदि लेकर और इन्हीं भेड़ों की पीठ पर लाद कर लौट आते हैं। अब सब लोगों की समझ में यह बात आ गई कि इन सब संकीर्ण पहाड़ी रास्तों में भेड़ों से इन लोगों का कितना अधिक उपकार होता

है। इन सब भेड़ों के पास से होते हुए किसी तरह हम लोग आगे बढ़े। आगे चलकर भीषण उतराई पड़ी। आज तक हम लोगों ने जितनी उतराइयाँ पार की थीं, उनमें ऐसी भीषण उतराई और कोई नहीं पड़ी थी। यह उतराई मालपा जाने के रास्ते में पड़ती है। उस सँकरे मार्ग से सभी लोग बहुत ही सावधान होकर धीरे धीरे नीचे उतर रहे थे। इस रास्ते में बाईं ओर गगनचुंबी पर्वत था और बीच बीच में यह उतराई प्रायः खड़ी के समान थी और टूटी फूटी सीढ़ियों के आकार में नीचे की ओर चली गई थी। किसी जगह रास्ते की चौड़ाई एक हाथ से अधिक न होगी। इन सब स्थानों में बाईं ओर झुककर चलना पड़ता है और प्रत्येक यात्री को पहाड़ी लकड़ी की आवश्यकता भली भाँति मालूम हो जाती है।

पहाड़ी कुलियों को इन सब रास्तों में आने जाने का अभ्यास रहता है, परंतु हमारे जैसे समतलवासी बंगाली यात्रियों के लिये इस रास्ते पर चलने में कदम कदम पर पैर फिसलने की यथेष्ट आशंका रहती है। पाठकवर्ग इस समय आप लोग अपने मन में जरा यह बात सोचकर देखें कि इस गगनस्पर्शी पहाड़ से सटे हुए एक सँकरे रास्ते पर से होकर बाँस की झोली में दूसरों के कंधों पर बैठी हुई चली जा रही हैं स्त्रियाँ। एक तो पहले उन लोगों को कुबड़ी होकर बैठना पड़ता है। दोनों पैर नीचे की ओर झूलते हैं और यदि

नीचे की ओर देखा जाय तो ऐसी झाईं आती है कि जान निकल सी जाती है। इसलिये ढोनेवाले कुलियों के कहने के अनुसार उन्हें आँखें एक प्रकार से बंद सी रखनी पड़ती हैं। ऐसी अवस्था में इस प्रकार की यात्रा को उस समय महाप्रस्थान के सिवा और भी कुछ समझा जा सकता है या नहीं, इसका विचार स्वयं आप लोग ही कर लें। यदि सब बातों का भली भाँति विचार किया जाय तो इस प्रकार के रास्तों पर पैदल चलना ही अधिक उत्तम और युक्तियुक्त जान पड़ता है।

इस प्रकार की तीन साढ़े तीन मील की उतराई उतरने के उपरांत काली नदी का पुल मिला। वहाँ कुछ देर तक विश्राम करने के उपरांत हम लोगों ने पुल पार किया और तब नेपाल की सीमावाले रास्ते पर चलने लगे। जब हम लोग उस रास्ते से काली नदी के किनारे किनारे जा रहे थे, तब मैंने देखा कि दक्षिण की ओर पहाड़ों को भेदकर दो-तीन झरने बड़ी तेजी के साथ काली नदी में गिर रहे थे। उन स्थानों के दृश्य आदि देखकर मनुष्य सचमुच चमत्कृत हो जाता है। इस प्रकार डेढ़ मील रास्ता चलने के बाद फिर हम उस नदी का पुल पार करके इस पार अँगरेजी इलाके में चले आए। दो पहाड़ों के बीच में जब यात्री इस रास्ते से चलते हैं, तब दोनों किनारों पर टकरानेवाली नदी की लहरों के भीषण शब्द से उनके कान बहरे हो जाते हैं। कुलियों के

मुँह से मैंने सुना था कि यहाँ का पुल प्रायः प्रति वर्ष वर्षा की बाढ़ के कारण टूट जाता है। उस समय नीरपानी के पहाड़ के बहुत ही ऊँचे शिखर को छोड़कर यात्रियों के लिये और कोई उपाय नहीं रह जाता। इसके बाद नदी का किनारा छोड़ने पर फिर एक मील लंबी चढ़ाई मिली। वहाँ से कुछ दूर ऊपर चढ़ने पर मैंने देखा कि बाईं ओर एक बहुत ऊँचे पहाड़ से एक झरने की जल-धारा बड़ी तेजी के साथ नीचे की ओर बह रही है। उस स्थान पर यात्रियों के पार करने के लिये काठ का एक पुल बना हुआ है। इस पुल पर चलने के समय हम लोगों के पैर क्षण क्षण पर काँप उठते थे। इस प्रकार कुछ दूर चलने के उपरांत कुलियों ने दूर से नीरपानी पहाड़ के ऊपर से होकर जाने का रास्ता दिखा दिया। उस समय हम लोगों ने उस ओर विशेष रूप से देखने की कोई आवश्यकता नहीं समझी और धीरे धीरे कभी चढ़ाई और कभी उतराई पार करते हुए साढ़े ग्यारह बजे के लगभग मालपा में जा पहुँचे। गाला से मालपा प्रायः आठ मील दूर होगा। यहाँ डाक के हरकारे के विश्राम करने के लिये केवल एक छप्पर बना हुआ था। इसके सिवा वहाँ कोई घर या गाँव कुछ भी दिखाई न दिया।

यहाँ पर जलाने के लिये लकड़ी आदि भी मिलना कठिन दिखाई दिया, इस लिये स्वामीजी तथा और सब लोग और भी आगे बढ़ने लगे। उन्होंने सोचा कि यहाँ से और आठ

मोल आगे चलकर बूयो नामक गाँव में ही विश्राम और भोजन आदि करना ठीक होगा। लेकिन हम लोग बिना कुछ खाए आगे नहीं बढ़ सके। कुलियों को इनाम के तौर पर नक़द दो आना पैसा देकर बड़े कष्ट से थोड़ा सा ईंधन इकट्ठा करा मँगाया और खिचडी तैयार कर ली। हम लोगों को विलंब होता देखकर केवल कालिकानंदजी हम लोगों के साथ रह गए थे।

भोजन के उपरांत प्रायः डेढ़ बजे हम लोग फिर आगे रवाना हुए। अलमोड़े से इतनी दूर आने पर इतने दिनों के बाद आज एक झरने के पास पत्थर की एक चट्टान पर काले रंग का एक पहाड़ी साँप दिखाई दिया। इन सब रास्तों पर चलने के समय जब दोनों ओर बीच बीच में घने झुरमुट या जंगल दिखाई पड़ते हैं, तब इस निर्जन मार्ग में साँप का नाम सुनकर जरूर ही आतंक उत्पन्न होता है। प्रसन्नता की बात यही है कि कैलास से लौटकर आने के समय तक केवल आज दिखाई पड़नेवाले साँप को छोड़कर और किसी दिन कहीं कोई साँप नहीं दिखाई पड़ा। इसी लिये हम लोग जंगलों के बीच में भी तंबू लगाकर रात बिता दिया करते थे और मन में किसी तरह का खटका नहीं होता था।

कुली लोग अपनी अपनी सवारी के यात्रियों को लेकर चले गए। मैं, कालिकानंदजी और भूपसिंह तीनों आदमी धीरे धीरे उनके पीछे चलने लगे। दोपहर को खिचड़ी खाई थी

और उसके बाद बिना विश्राम किए तुरंत ही उठकर पहाड़ की चढ़ाई-उतराई पार करने लगे थे, इसलिये उस दिन हम लोगों को बहुत ही कष्ट हो रहा था और प्रायः दस दस मिनट के बाद कड़ी प्यास के मारे गला सूखने लगता था। प्रसन्नता की बात यही है कि इस रास्ते में बरफ के गले हुए पानी के झरने की धारा इतनी ठंढी होती है कि उसका जल पीते ही जीभ से हृदय तक तृप्त हो जाता है।

बिहारी दरबान भूपसिंह के कष्ट की तो उस दिन सीमा ही नहीं थी। यद्यपि वह रोज सब लोगों के साथ ही चलता था, तथापि वह नित्य गंतव्य स्थान पर सबके पीछे ही पहुँचता था। उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों के निवासियों को आप बहुत सी बातों में हम लोगों की अपेक्षा ज्यादा सख्त और हराठे समझ सकते हैं, परंतु यह जो बिहार प्रांत का हृष्ट-पुष्ट जीव-विशेष, और वह भी जमीदार के प्रासाद का दरवान और हथियारबंद पहरेदार था, केवल सत्तू और रोटियों का यम होने के सिवा कुछ भी नहीं था। और किसी विषय में उसकी कर्म-कुशलता देखना बहुत ही कठिन जान पड़ता था। सिर पर की बीस हाथ लंबी पगड़ी ही उसकी एक मात्र शोभा थी। इस चढ़ाई-उतराई के रास्ते में मर जाने पर भी उसने किसी दिन अपने बनाव-सिंगार में कोई कमी नहीं होने दी। वह अपने मालिक की रक्षा करने के लिये कंधे पर बंदूक रखकर लाया था। पर मालिक कहाँ

हैं ? वे तो इस समय उससे तीन मील आगे चले गए हैं। तो फिर आखिर भूपसिंह साथ किस लिये जा रहा था ? जान पड़ता है कि कंधे पर बंदूक रखकर केवल शोभा बढ़ाने के लिये ही वह साथ जा रहा था। उसमें जो उत्साह था, उसका नमूना एक बार पहले धारचूला में ही हम लोगों को दिखाई पड़ चुका था। वहाँ स्वामीजी एक दिन हिरन का शिकार करने के लिये जाना चाहते थे और अपने साथ भूपसिंह को भी ले जाना चाहते थे। यद्यपि स्वामीजी के साथ जाने के लिये उसके मालिक से अनुमति मिल गई थी, तो भी उसने उस समय कह दिया था—"हम असल टोंटा तो अपने साथ लाए ही नहीं हैं जिससे हिरन का शिकार किया जा सके।" इत्यादि।

मैं और कालिकानंदजी दोनों आदमी बात-चीत करते हुए चले जा रहे थे। बीच बीच में पीछे से बहुत दूर से भूपसिंह का इस प्रकार कातर स्वर सुनाई पड़ता था—"बाबू! बाबू!" भला उस समय वहाँ स्वयं बाबुओं को ही कौन देखनेवाला था! वे स्वयं ही अपने लिये व्याकुल हो रहे थे। कदाचित् यहाँ यह कहने की आवश्यकता न होगी कि बूधी तक पहुँचने की चिंता की अपेक्षा उस समय भूपसिंह के उस समय के कातर आह्वान ने ही हम लोगों को अधिक चिंतित कर रखा था।

कुछ देर तक चलने के बाद हम लोग एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जिसे पार करना हम लोगों को कुछ विपत्तिजनक जान

पड़ा। मैंने देखा कि ऊपर के पहाड़ पर से इस संकीर्ण मार्ग के कुछ अंश में वर्षा की सैकड़ों धाराओं का प्रवाह आकर झर झर शब्द करता हुआ नीचे की ओर गिर रहा है। इसके परिणाम-स्वरूप प्रायः पचीस-तीस हाथ रास्ते पर बहुत अधिक फिसलन हो गई है। ऐसी अवस्था में इतना रास्ता पार करने में कदम कदम पर पैर फिसलने की संभावना थी। बहुत नीचे काली नदी का जल दोनों पहाड़ों को कँपाता हुआ प्रबल वेग से बह रहा था। इतने में मुझे सुनाई पड़ा कि इस संकटपूर्ण मार्ग के उस पार खड़े हुए स्वामीजी जोर से चिल्लाकर कह रहे हैं—"खूब होशियारी से लाठी के सहारे पहाड़ की ओर झुककर चले आइए; नहीं तो अवश्य ही विपत्ति में पड़ेंगे।" आगे कालिकानंदजी बीच में मैं और पीछे भूपसिंह था। तीनों आदमियों ने भगवान् का नाम स्मरण करके और धीरे धीरे वह स्थान पार करके साँस लिया। बदन पर वाटरप्रूफ पड़ा हुआ था, इसलिये शरीर तो नहीं भींगा, पर उस झरने के पानी से सारा सिर भींग गया। परंतु उस ओर ध्यान न देकर उस फिसलनवाले रास्ते पर अपने आपको बचाने के लिये दोनों पैरों पर पूरा पूरा ध्यान रखा गया था। तिस पर से उस जगह एक प्रकार के बड़े बड़े मच्छड़ उस समय हम लोगों को और भी अधिक तंग कर रहे थे। मैं अपने मन में सोच रहा था कि यदि कैलास जाने का इस प्रकार का मार्ग दो-

चार बार पार करना पड़े तो फिर कैलास जाने की साध मिट जायगी !

हम लोगों को उस स्थान से पार होते देखकर स्वामीजी और उनके साथ के लोग फिर तेजी से अपने रास्ते पर आगे बढ़ने लगे। हम तीनों आदमी उनके पीछे पीछे चल रहे थे। इस प्रकार संध्या को सात बजे के लगभग हम लोग बूधी गाँव में जा पहुँचे। इस रास्ते में आते समय हम लोगों को कई झरने मिले थे। आज प्रायः सोलह-सत्रह मील रास्ता चलने के कारण सब लोग बहुत ही थक गए थे।

बूधी की ऊँचाई समुद्र-तल से प्रायः नौ हजार फुट होगी। गाँव से कुछ दूर पर घोड़े की लीद से भरा हुआ एक लंबा घर था। यही वहाँ की धर्मशाला थी। उसी में सब लोग ठहरने के लिये विवश हुए। रात को पानी भी बरसा था जिसके कारण उसकी छत के सैकड़ों छेदों में से गिरकर पानी ने हम लोगों के बिछौने और सब सामान भिगा दिए थे। इसके सिवा पिस्सुओं का भी यथेष्ट उपद्रव था जिससे उस रात को हम लोग न तो सो ही सके थे और न जाग ही सके थे। इसी अवस्था में वह रात बिताई गई।

तड़का होने पर हम में से प्रत्येक यात्री ने बहुत शीत अनुभव किया। ज्यों ज्यों सवेरा होने लगा, त्यों त्यों लोग एक एक करके बाहर निकलने लगे। यहाँ सामने पहाड़ों पर बीच बीच में केवल ढेर सा बरफ जमा हुआ दिखाई

पड़ता था। कहीं कहीं धूप की किरणों के कारण वह गल-कर चाँदी की शुभ्र धारा के समान पहाड़ पर इधर-उधर बह रहा था। उस समय वहाँ के उन सब पहाड़ों का दृश्य देखकर ऐसा जान पड़ता था कि शायद अब हम लोगों को इस अमल धवल तुषार के बीच से ही होकर आगे बढ़ना पड़ेगा। सभी लोग मन में आशा तथा उत्साह रखकर प्रतीक्षा करने लगे।

गार्वियांग यहाँ से प्रायः चार मील दूर होगा। बीच में केवल एक बहुत ऊँचे पहाड़ का ही व्यवधान था। स्वामीजी और उनके साथ के दो-तीन आदमी तड़के ही गार्वियांग की ओर चल पड़े थे। उनके इस प्रकार पहले ही चल देने का उद्देश्य यह था कि एक साथ ही इतने यात्रियों को गार्वियांग न ले जाकर वे थोड़े से आदमियों के साथ पहले वहाँ जायँ और पहले से ही देख-सुनकर सब लोगों के ठहरने आदि की अच्छी व्यवस्था कर रखें। इसके सिवा उन लोगों के पहले जाने का एक और कारण था। उनके आश्रम की रमादेवी की बहन सुरमा देवी वहाँ रहती थीं। यदि हम लोगों के इतने दल-बल सहित वहाँ पहुँचने का समाचार उनको पहले से ही मिल जाता तो वे गार्वियांग से हम लोगों के आगे जाने के लिये आवश्यक घोड़ों और झब्बुओं आदि का भी प्रबंध कर रखतीं। उस अवस्था में हम लोगों को गार्वियांग में ज्यादा दिनों तक ठहरने की आवश्यकता न होती। इसी लिये

उस दिन हम लोग स्वामीजी के साथ नहीं चले थे, बूधी में ही रुक गए थे। यह तै हुआ था कि संध्या को स्वामीजी फिर लौट आवेंगे।

उस दिन तीसरे पहर एक गेरुआ-वस्त्र-धारी आगंतुक बंगाली युवक हम लोगों के रहने के स्थान पर आकर हम लोगों से मिले। पूछने से पता लगा कि आप कैलास से वापस आ रहे हैं। यह समाचार सुनकर यात्रियों में शोर सा मच गया। सब लोग उनको घेरकर बैठ गए और प्रश्न पर प्रश्न करके उन्हें तंग करने लगे। उनका नाम श्यामानंद ब्रह्मचारी था। ब्रह्मचारी की जबानी कैलास के संबंध में किसी विशेष बात का पता नहीं लगा। तो भी उन्होंने जो कुछ कहा, उसका सारांश यह था—

"गत ६ आषाढ़ को, अर्थात् जिस दिन तिब्बती व्यापारी लोग भेड़ें लेकर तिब्बत की ओर यात्रा करते हैं, उसी दिन वे भी उन्हीं लोगों के साथ कैलास की यात्रा करने निकले थे। दुःख का विषय यह था कि उस समय गलनेवाले बरफ के कारण लिपू लेक नामक दर्रा बिलकुल बंद हो गया था। व्यापारी बहुत यत्नपूर्वक उन्हें नित्य अपने साथ ले जाते थे। लेकिन जिस दिन उन्होंने वह लिपू का दर्रा पार किया था, उस दिन उनके दोनों पैर जाँघों तक गले हुए बरफ में धँस गए थे। पग पग पर आघात होने पर भी जब वे किसी प्रकार प्राण बचाकर आगे बढ़े, तब उनके शरीर में स्पर्श का

अनुभव नहीं रह गया था, सारा शरीर सुन्न हो गया था। उन्होंने बेहोशी की हालत में ही कई दिन उन्हीं व्यापारियों के तंबू में बिताए थे। उन व्यापारियों ने बहुत सी आग जलाकर उन्हें सेंका था और इसी प्रकार के और भी अनेक उपाय किए थे। उनके इस प्रकार सेवा-शुश्रूषा करने के ही कारण किसी प्रकार उनके प्राण बचे थे। लेकिन उनके घुटने के नीचे की ओर सामनेवाले भाग में अब भी थोडा सा क्षत (उन्होंने हम लोगों को वह क्षत दिखलाया भी था) बाकी था। वे बड़ी कठिनता से किसी प्रकार तीर्थ-यात्रा करके लौटे हैं। उन्होंने यह भी कहा था कि आप लोग ठीक समय पर जा रहे हैं। इस समय लिपू लेक का रास्ता अच्छी तरह जाने के लायक हो गया है; इत्यादि।"

संध्या को स्वामीजी गार्बियांग से लौट आए। निश्चय हुआ कि दूसरे दिन सबेरे ही सब लोग गार्बियांग की ओर रवाना होंगे। गंतव्य स्थान तक पहुँचने में एक दिन की देर होती देखकर हम लोगों के कुलियों के सरदार प्रधान ने ही प्रधानतः आपत्ति की थी। इस आपत्ति का उद्देश्य केवल यही था कि वह बादमें प्रत्येक कुली की एक दिन की मजदूरी के नाम से कुछ और वसूल करे। यदि उसके कहने के अनुसार काम किया जाता तो हम लोगों को बहुत से रुपए निकालने पड़ते, क्योंकि हम लोगों के साथ कुली कुछ कम तो थे ही नहीं। लाचार उस दिन प्रधान के साथ

स्वामीजी को बहुत कुछ कहा-सुनी करनी पड़ी थी। अंत में यही निश्चय हुआ कि प्रत्येक कुली को थोड़ा थोड़ा अतिरिक्त पुरस्कार दिया जायगा। इस प्रकार किसी तरह हम लोगों का छुटकारा हुआ।

८ जुलाई, २४ आषाढ़, सोमवार को सवेरे छः बजे के लगभग हम लोग बूधी से रवाना हुए। सभी कुली अपना अपना बोझ लेकर आगे चले। थोड़ी ही दूर चलने पर प्रायः डेढ़ मील की चढ़ाई का पहाड़ सामने पड़ा। मैंने सुना था कि इसकी ऊँचाई समुद्र-तल से प्रायः ग्यारह हजार फुट होगी। तीन घंटे में चढ़ाई समाप्त करके हम लोग ऊपर पहुँचे। इतने ऊपर पहुँचने के बाद अब हम लोगों को श्याम शस्य से शोभित एक बड़ा मैदान पार करना पड़ा। कहाँ वह समुद्र-वेला-भूमि सुजला सुफला सुदूर बंगाल देश का समतल क्षेत्र जहाँ श्याम तृणों से आच्छादित बड़े बड़े मैदान, बहुत दिन हुए, हम लोग देखकर आए थे; और कहाँ आज हिमालय के इस शिरोभाग पर अत्युच्च पर्वतों की कठिन पथरीली भूमि पर उसी प्रकार के सुंदर और नयन-मनोहर मैदान का विस्तार! आँखों के सामने का यह दृश्य उस समय बहुत ही रमणीय जान पड़ता था। विशेषतः इस दृश्य में एक नवीनता यह थी कि इस लंबे-चौड़े मैदान के चारों ओर केवल बरफ से ढका हुआ रजत-शुभ्र पर्वत-प्रासाद उन्नत मस्तक किए हुए चारों ओर से घेरे था। लाल, हरे और

पीले आदि अनेक रंगों के मौसिमी फूल इस श्याम तृणों से शोभित मैदान में बहुत अधिक संख्या में खिले हुए थे जिनके कारण सौंदर्य अपनी चरम सीमा को पहुँचा हुआ जान पड़ता था और जिसके कारण इस पहाड़ी प्रदेश में भी हम सब लोग अपने मन में अभिमान का अनुभव कर रहे थे। उस मैदान में कहीं तो असंख्य भेड़ों के दल चरते थे और कहीं बहुत से पहाड़ी घोड़े दल बाँध कर इधर-उधर घूम रहे थे। उनके साथ के छोटे छोटे बछेड़े कभी तो उनके साथ रहते थे और कभी जल्दी जल्दी दौड़ते हुए उनसे बहुत दूर चले जाते थे और पहाड़ पर इधर-उधर कुलेल करके फिर लौट आते थे। एक स्थान पर बड़े बड़े झब्बुओं का दल निश्चिंत हो कर घास चर रहा था। उन झब्बुओं को देखकर सब लोगों की दृष्टि उसी ओर खिच गई। यह झब्बू भैंस के आकार का एक बड़ा जंतु होता है जिसके शरीर पर बड़े बड़े बाल होते हैं। हम में से कुछ लोगों ने जब सुना कि कैलास जाने के लिये इसी की पीठ पर सवारी करनी पड़ती है, तब वे लोग कुछ काँप उठे। इस प्रकार की अनेक चिंताओं के कारण हम लोग उद्भ्रांत से हो रहे थे। इन्हीं चिंताओं में वह मैदान पार करके ग्यारह बजे के लगभग हम लोगों ने गार्वियांग में प्रवेश किया। यह वही गार्वियांग है जिसके संबंध में लोक में यह प्रवाद प्रचलित है कि किसी समय यहाँ भगवान् व्यासदेव ने बहुत दिनों तक

तपस्या की थी और इसी पहाड़ी प्रदेश की किसी निर्जन गुफा में बैठकर उन्होंने किसी समय अपने अमूल्य ग्रंथ लिखे थे। इसी लिये इसका एक और नाम व्यास-क्षेत्र है।

जिस समय हम लोग गाँव के बीच में से होकर जा रहे थे, उस समय वहाँ के पुरुष और स्त्रियाँ बहुत उत्सुकता से हम लोगों की ओर देख रही थीं। उन लोगों के बीच में से होते हुए हम लोग धीरे धीरे गाँव के उत्तर ओर की फुलवाड़ी में जा पहुँचे। फुलवाड़ी से सटे हुए एक बड़े मैदान में हम लोगों के ठहरने की व्यवस्था हुई। सब लोग अपने अपने तंबू लगाने की व्यवस्था करने लगे। कदाचित् यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि यहीं से नित्य यात्रियों का तंबू का व्यवहार आरंभ हुआ था। स्कूल के अध्यापक महोदय ने बहुत अच्छी तरह हम लोगों का आदर-सत्कार करके कहा—"कैलास जानेके लिये इतनी बड़ी पार्टी एक साथ मैंने कभी नहीं देखी। आप लोग धन्य हैं।" इत्यादि। मतलब यह कि उनके व्यवहार से इस बात का बहुत अच्छी तरह पता चलता था कि हम लोगों के आने से वे बहुत ही प्रसन्न हुए हैं।

हम लोगों के दल में दो स्त्रियों को भी देखकर उस समय गाँवकी बहुत सी स्त्रियाँ भी वहाँ आकर इकट्ठी हो गईं। उनके हाव-भाव और देखने के ढंग से जान पड़ता था कि उन्हें बहुत अधिक विस्मय हो रहा है। ऐसा जान पड़ता

था कि इस प्रकार की स्त्रियाँ उन्होंने और पहले कभी नहीं देखी थीं।

अध्यापक महाशय तंबू खड़ा करने के काम में सब लोगों को यथेष्ट सहायता दे रहे थे। इसी बीच में कुलियों का हिसाब चुकाने के लिये प्रधान को बुलाया गया। हम लोगों के बीस कुलियों को मजदूरी फी कुली छः रुपए के हिसाब से एक सो बीस रुपए होती थी जिसमें से बीस रुपए उन लोगों को पेशगी दिए जा चुके थे। वे बीस रुपए काटकर बाकी सौ रुपए उनको दे दिए गए और साथ ही प्रत्येक कुली को चार आने इनाम के हिसाब से पाँच रुपए और भी दे दिए गए। प्रधान को एक रुपया अलग इनाम दिया गया। इस प्रकार कुल एक सौ छः रुपए देकर प्रधान और कुलियों को बिदा किया गया। जाने के समय उन सब लोगों ने बहुत ही भले आदमियों के समान हम लोगों को सलाम किया। इसके सिवा उन लोगों ने अपने देवता से इस बात की भी प्रार्थना की थी कि हम सब लोग निर्विघ्न कैलास की यात्रा करके सकुशल लौट आवें।

फुलवाड़ी की एक कोठरी में रसोई बनाने का आयोजन होने लगा। गाँव के नीचे रास्ते के पास ही एक झरना था। वहीं जाकर सब लोगों ने स्नान आदि किया। यहाँ का जल बहुत ठंढा था, इसलिये कुछ लोगों ने शरीर पर स्वेटर पहने पहने ही फ्रेंच बाथ (French Bath) किया;

महोदय ही यहाँ के पोस्ट मास्टर भी थे। मास्टर साहब ने स्वयं ही हम लोगों को यह परामर्श दिया कि हम लोग अपने उन पत्रों के उत्तर केयर आफ पोस्ट मास्टर गार्बियांग के पते से मँगावें। मानों इस तरह हम लोगों ने पोस्ट मास्टर साहब को ही एक प्रकार से इस बात का उत्तरदायी बना लिया था कि जब हम लोग कैलास से लौटकर वापस आवें, तब हम सब लोगों को अपने अपने घर का समाचार यहाँ मिल जाय।

उस दिन कैलास के और भी दो यात्री आकर हम लोगों से मिले। उनमें से एक का नाम मिथू बाबू था। ये एक गुजराती सौम्य-दर्शन और उच्च-शिक्षित सज्जन थे। ये गेरुए कपड़े पहने हुए थे और इनके सिर पर काले रंग के बड़े बड़े चिकने बाल थे जो पीछे की ओर कुछ लटक रहे थे। ये बहुत ही विनयी और मिष्टभाषी थे। इनका परिचय मिलने पर पता लगा कि इन्होंने किसी समय बंबई प्रेसिडेंसी के किसी कालिज में कृषि-विद्या का विशेष विषय लेकर बी० एस-सी० पास किया था और वहीं लेक्चरर (Lecturer) हुए थे। दूसरे सज्जन अलमोड़े से आए हुए एक पेशकार साहब थे। उनका नाम इस समय मुझे ठीक याद नहीं है। वे मजिस्ट्रेट के पेशकार थे। साधारणतः अलमोड़े के आस-पास के सभी गाँव इन्हीं के हाथ में रहते हैं। गाँवों में कौन पटवारी कैसा है, किसकी कौन सी जमीन किसने नक्शे में गलत भरी है,

किनारे पर केवल दो झरने हैं जिनमें से एक की धारा बहुत ही क्षीण है और उन्हीं झरनों से गाँववालों को पीने का पानी मिलता है। बहुत नीचे जाकर काली नदी भी बहती है। उसके प्रवाह का शब्द गाँव तक में अस्पष्ट रूप से सुनाई पड़ता है।

इस गाँव में आते ही इस बात का पता चल जाता है कि यहाँ के निवासी बिलकुल म्लेच्छों की तरह से रहते हैं। वे रास्ते के इधर-उधर झरने के आस-पास, जहाँ होता है वहीं, मल-त्याग करते हैं। वे इस बात का जरा भी विचार नहीं करते कि इसी रास्ते से स्वयं हम लोगों को ही आना-जाना पड़ता है। ये लोग आलसी, मद्यप और यथेच्छाचारी होते हैं। नशा ही मानों इन लोगों का जीवन है। रास्ते के पास ही एक बिलकुल चौकोर घेरी हुई जगह है जो इन नशाखोरों का मुख्य अड्डा है। झरने का जल लाने के लिये स्कूल के अहाते से निकलकर इसी अड्डे के सामने से होकर हम लोगों को जाना पड़ता था। उस समय हम लोग देखते थे कि कोई तो हुक्के की निगाली मुँह से लगाए हुए तमाकू पी रहा है, कोई मजे में गप्पे लड़ाता और हँसी-मजाक करता है और कोई चुपचाप खड़ा हुआ इधर-उधर देखता है। जब ये लोग अपनी लाल लाल आँखों से विह्वलों की भाँति हम लोगों की ओर देखते थे, तब उनका वह देखना हम लोगों को सचमुच ही असह्य जान पड़ता था। हम

लोगों के मन में यह बात किसी तरह बैठती ही नहीं थी कि ये लोग व्यवसाय के द्वारा भी जीविका उपार्जन करते हैं।

संध्या से पहले ही सुरमा देवी अपनी दस-ग्यारह बरस की लड़की (उसका नाम दाशरथी था) को साथ लेकर आईं और दीदी के साथ परिचय कर गईं। उन्होंने कहा था—"कैलास जाने में बहुत तकलीफ होती है। और न जाने कितनी तकलीफें उठानी पड़ेंगी।" साथ ही इसी प्रकार की और भी कितनी ही सहानुभूति-सूचक बातें उनके मुँह से निकली थीं। साथ ही उन्होंने सब लोगों से यह भी पूछा कि आप लोगों को यहाँ किसी तरह की तकलीफ तो नहीं है। इस प्रकार की अनेक बातें करके वे चली गईं। यह सुरमा देवी ही हम लोगों के यहाँ से आगे जाने की सब व्यवस्था कर रही थीं। उनके सुजनतापूर्ण तथा निष्कपट व्यवहार से हम लोग इतने अधिक मुग्ध हो गए थे कि इस स्थान पर मैं उनका थोड़ा सा परिचय दिए बिना नहीं रह सकता।

ये रुमादेवी की छोटी बहन हैं। इनके स्वामी का नाम गोपालसिंह कुठियाल है। इनकी ससुराल यहाँ से दस मील की दूरी पर कूटी नामक गाँव में है। यहाँ गार्बि-यांग में इनका मायका है। ये अपने पिता के धन से धन-शालिनी हुई हैं और यहीं निवास करती हैं। इनके दो पुत्र हैं :जिनमें से एक का नाम तंजनसिंह और दूसरे का नाम नंदनसिंह है। गोपालसिंह की पहली विवाहिता स्त्री के

गर्भ से एक और संतान है। जिसका नाम दौलतसिंह है। धारचूला में भी इन लोगों का मकान है। इन सब प्रदेशों में ये लोग अच्छे व्यापारी प्रसिद्ध हैं और इनकी अच्छी कीर्ति है। तकला कोट और ज्ञानिमा मंडी (जोहार के रास्ते में) के बाजारों में ही साधारणतः इन लोगों का व्यापार होता है। इनके स्वामी और बड़े लड़के ही व्यापार आदि का सब काम करते हैं। छोटा लड़का अभी अलमोड़े में पढ़ता है।

यद्यपि यहाँ की स्त्रियाँ परदानशीन नहीं होतीं, पर फिर भी वे स्वभावतः कुछ लज्जाशीला जान पड़ीं। वे प्रायः सदा घर-गृहस्थी का कोई न कोई काम किया ही करती हैं। जब हम लोग झरने के पास जाते थे, तब किसी न किसी युवती स्त्री को ताँबे के बड़े घड़ों में जल भरकर ले जाते हुए देखते थे। घड़े के मुँह पर बड़े बड़े छल्ले लगे रहते हैं। जल भरकर ले जाने के समय वे घड़ा पीठ पर रख लेती हैं और उसी छल्ले में बँधी हुई ऊनी रस्सी अपने सिर पर अटका लेती हैं। कुछ स्त्रियाँ तो ऐसी भी होती हैं जो इस प्रकार का एक बड़ा घड़ा अपनी पीठ पर रखती हैं और दूसरा घड़ा कमर पर रखती हैं और दोनों में साथ जल भरकर ले जाने में उनको जरा भी कष्ट नहीं होता। इनका पहनावा कमर में एक ऊनी घाघरा होता है, शरीर पर एक ऊनी कुरता रहता है और प्रायः ऊनका ही एक ऐसा जूता होता है जिसमें मोज़ा भी मिला रहता है। इन लोगों का यह मोज़े समेत

जूता बहुत ही कोमल होता है और इस ठंडे देश में बहुत ही आराम देता है इस प्रकार का मोजे समेत जूता यहां बिकता भी है। दाम ढाई-तीन रुपये के अंदाज होता है।

अलंकारों में ये लोग मूँगे की माला ही ज्यादा पसंद करती हैं। कभी कभी चाँदी के कुछ गहने भी दिखाई पड़ते हैं। बालिकाओं के गले में साधारणतः चाँदी की अठन्नियाँ और चवन्नियाँ गूँथी हुई पड़ी रहती हैं। किसी किसी सधवा स्त्री की माँग में सिंदूर भी होता है। यह भी सुना कि कान छेदकर उनमें बालियाँ आदि पहनना यहां सधवाओं का चिह्न है।

इन लोगों के शरीर का रंग न तो बहुत गोरा होता है और न बहुत काला। गालों पर कुछ कुछ लाल आभा दिखाई पड़ती है। कद कुछ नाटा होता है। ये लोग अधिक काम करनेवाली होती हैं, इसलिये पुरुषों की अपेक्षा इनकी शारीरिक गठन में अधिक सौंदर्य होता है। जिन लोगों के पास खेती करने के लिये जमीन होती है, उनके यहां खेती-बारी का सारा काम प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं। केवल हल जोतने का काम यहाँ के नशाखोर पुरुष करते हैं।

जलाने के लिये लकड़ी चुनकर लाना यहाँ की स्त्रियों का नित्य का काम है। वे सवेरे उठकर पीठ पर एक प्रकार की दौरी लिए हुए काली नदी के किनारे किनारे लकड़ियाँ चुनती हैं। अपने ऊनी कपड़े ये लोग फुरसत के समय आप-

ही तैयार कर लेती हैं। चरखा कातकर ऊन और सूत तैयार करती हैं। हम लोगों की तरह इन्हें विदेशियों का मुँह नहीं ताकना पड़ता। पहाड़ी थुलमा (पशम का मुलायम कंबल) इन्हीं लोगों के हाथ का तैयार किया हुआ होता है।

इन लोगों में विवाह एक तरह से कोर्टशिप की रीति पर ही होता चला आया है। गाँव में एक निदिष्ट मकान है जिसे रामरांग कहते हैं। विवाह के पहले युवक और युवतियाँ सज-धज कर रात के समय वहीं मिलती हैं। वहाँ सब लोग मद्य-पान, नाच-गाने और आमोद-प्रमोद में खूब मत्त होते हैं। उनमें से जो युवक और युवतियाँ आपस में एक दूसरे के साथ प्रेम-विनिमय कर लेती हैं, वही बाद में क्रमशः वर और कन्या होती हैं। युवती को सहमत देखकर उस समय उसका प्रेमी उसे एक अँगूठी उपहार देता है। जब इस प्रकार प्रेमी और प्रेमिका में दृढ़ प्रेम-संबंध स्थापित हो जाता है, तब दोनों पक्षों के अभिभावकगण इस संबंध में अपनी सम्मति प्रकट करते हैं। इसके उपरांत इस प्रेम का परिणाम यह होता है कि पात्र महाशय एक दिन रात के समय पात्री को लेकर अपने घर चले आते हैं। वहीं भेड़-बकरा मारकर भोज और उत्सव आदि होता है और तभी से दोनों सब लोगों के सामने दंपति रूप से रहने-सहने लगते हैं।

यहाँ किसी के मरने पर भी उत्सव होता है। जब कभी कोई मर जाता है, तब उसके मृत शरीर का जुलूस लेकर

श्मशान की ओर जाते हैं। हम लोगों ने यह घटना एक दिन प्रत्यक्ष रूप से देखी थी। अध्यात्म के विचार से उस समय मेरे मन में यह धारणा हुई थी कि जब कैलासपति शिव के समाधि-क्षेत्र के आस-पास इस उत्तराखंड में किसी की मृत्यु होती है, तब उसे शिवत्व की प्राप्ति होती है। इसी लिये यहाँ भी काशी के समान शव का जुलूस निकालने की प्रथा चल पड़ी है। इसमें संदेह नहीं कि स्वयं पहाड़ियों में इस प्रकार की कोई धारणा प्रचलित नहीं है; तो भी शव के साथ एक दल पुरुषों का और एक दल स्त्रियों का होता है और सब लोग अपने पद और मर्यादा के अनुसार आगे-पीछे होकर मृत देह के पीछे पीछे शवोत्सव के लिये श्मशान तक जाते हैं।

गार्बियांग में हम लोग केवल तीन दिन ठहरे थे। इस बीच में इन लोगों के रीति-रिवाज के संबंध में मुझे जिन थोड़ी-बहुत बातों का पता लगा, वही मैंने यहाँ लिख दी हैं।

यहाँ नया चावल, आटा, घी, मसूर की दाल, भेली गुड़, सत्तू आदि चीजें मिलती हैं। यहाँ के लोगों का हाथ का तैयार किया हुआ कपड़ा भी कहीं कहीं मिलता है। चावल साधारणतः रुपए में सवा चार सेर, आटा रुपए में पाँच सेर, सत्तू रुपए में आठ सेर और भेली गुड़ बारह आने का ढाई सेर मिलता है। मिट्टी का तेल दुर्लभ है। वह एक रुपए में एक बोतल मिलता है। हम लोग जिस समय गए

थे, उस समय कोई तरकारी नहीं मिली थी। इस गाँव के निवासी साधारणतः मांसाहारी हैं। मांस यहाँ सस्ता मिलता है। डाक्टरों और स्वामीजी आदि ने यहाँ एक दिन चार रुपए में एक भेड़ा खरीदा था। सुना कि उसमें आठ-नौ सेर मांस निकला था।

हम लोग यहाँ जितने दिन रहे, उतने दिन नित्य ही मिथू बाबू आकर हम लोगों से मिलते और बात-चीत करते थे। एक दिन उनके साथ हम लोग एक झरना देखने गए थे। रास्ते में चलते समय उन्होंने उत्तर-पूर्व की ओर बरफ से ढके हुए पहाड़ दिखलाकर कहा था—"इन पहाड़ों का नाम आपी है।" नक्शे के हिसाब से इन पहाड़ों की ऊँचाई समुद्र-तल से बाइस हजार फुट है। इस गार्वियांग की ऊँचाई दस हजार तीन सौ बीस फुट होगी।

इस गांव की बाईं तरफ पीछे की ओर एक बहुत ऊँचा और दुर्गम पहाड़ है। इस गाँव के निवासियों की धारणा है कि उस पहाड़ में बहुत सी गुफाएँ हैं और उन गुफाओं में ऋषि-मुनि आदि तपस्या करते हैं। बीच बीच में इस पहाड़ पर से हिरन उतरकर नीचे आते हैं। उस समय शिकार का अच्छा सुभीता होता है। दुःख की बात है कि इन सब साधु महात्माओं के दर्शन हममें से किसी के भाग्य में नहीं बदे थे।

इस बीच में हमारे पुराने कैलास-यात्री डा० बी० कौशिक पंडित महाशय और भी दो यात्रियों को लेकर आ

पहुँचे। इन दो यात्रियों में से एक यात्री (जिनका नाम स्वामी रामानंद था) फर्रुखाबाद से आए थे और दूसरे सज्जन (जिनका नाम शांतिप्रकाश था) एटा के रहनेवाले थे। इस प्रकार कैलास-यात्रियों का दल काफी बड़ा हो गया।

ये डाक्टर पंडित महाशय स्कूल के एक छोटे कमरे में ठहरे थे। उनके साथ होमियोपैथिक दवाओं का एक बक्स भी था। जब यहाँ के लोगों को यह पता चला कि ये एक अच्छे डाक्टर हैं, तब उनका कमरा एक छोटा-मोटा डाक्टर-खाना बन गया। बहुत से पुरुष भी और स्त्रियाँ भी आ आकर अपने रोग की अवस्था बतलाकर उनसे दवाएँ ले गईं। जब मैंने डाक्टर साहब से पूछा कि इन लोगों को क्या बीमारी थी, तब उन्होंने बतलाया कि सौ में से अस्सी रोगियों को उपदंश या गरमी और धातु गिरने की बीमारी थी। यदि बहुत अधिक मद्य-पान करनेवाली, व्यभिचार करनेवाली और चरित्रहीन जाति में इस प्रकार के सांघातिक रोग हों, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

यहाँ मुझे कुछ जुकाम और बुखार सा हो गया था, इसलिये मैं अपने साथ जो मकरध्वज लाया था, उसकी एक मात्रा आदी और शहद के साथ खाई थी। यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि आदी, शहद और खल-बट्टा आदि सब चीजे हम लोग घर से अपने साथ ही लाए थे। एक दिन मिथू बाबू के साथ मैं इनके सहयात्री पेश-

कार साहब के यहाँ गया था। उस समय वे कई व्यापारियों से मृग-नाभि के संबंध में बात-चीत कर रहे थे। उनके हाथ में कस्तूरी सहित तीन-चार मृग-नाभियाँ थीं। उनके प्रभाव आदि की विशेष प्राशंसा के कारण मैंने अपने लिये भी कस्तूरी का एक नाभा पचीस रुपए पर (उन्हीं के द्वारा दाम तै करके) खरीदा था। प्राय: ऐसा होता है कि व्यापारी लोग नकली मृग-नाभि दिखलाकर खरीददारों को धोखा देते हैं। मुझे इस बात का पूरा विश्वास था कि यहाँ पेशकार साहब का यथेष्ट प्रभाव है; और जो गाँव उन्हीं के हाथ में हैं, उनके निवासी उन्हें कभी नकली चीज देकर उनसे दाम नहीं वसूल करेंगे। इसी लिये मैंने निःसंकोच होकर इतने रुपए देकर वह मृग-नाभि खरीद ली थी।

भिन्न भिन्न देशों से आए हुए इतने अधिक यात्रियों का एक साथ इतना बड़ा दल देखकर स्कूल के अध्यापक महाशय ने तीसरे पहर वहाँ एक सभा का आयोजन किया। उनकी यही प्रार्थना थी कि छात्रों को कुछ उपदेश दिया जाय। हमारे डाक्टर कौशिक महोदय इस प्रकार के कार्यों में बहुत उत्साही थे। और सदा सबसे आगे रहते थे। उसी समय उन्होंने मिथू बाबू को सभापति चुना और एक नोटिस निकाल दी। सब अभिभावकों के पास यह समाचार भेज दिया गया कि वे छात्रों सहित आकर उपस्थित हों।

यथा समय सभा का अधिवेशन आरंभ हुआ। सभापति के लिये एक कुरसी लाई गई थी और उसके सामने एक टेबुल रखा गया था।

दर्शकों और छात्रों के लिये मैदान में अलग अलग दरियाँ और कंबल बिछाये गए थे।

छात्रों की संख्या साठ-सत्तर के लगभग थी। उनमें मैंने आठ-दस छात्रियों को भी देखा था। हम लोगों के दल का छोड़कर वहाँ के प्रायः पंद्रह-सोलह दर्शक भी वहाँ आ पहुँचे थे। सभा आरंभ होने से पहले छात्रों ने दो गीत गाए थे। उनमें से एक गीत का पहला चरण मुझे याद है—"मेरे प्यारे भारत जागो जागो।" अब पहाड़ी लोगों में भी अपने देशके संबंध में अच्छे भावों की जाग्रति होने लगी है। डाक्टर कौशिक महाशय ने हिंदी भाषा में दो घंटे तक ओजस्विनी वक्तृता दी थी। उनका मुख्य उपदेश था—चरित्र-सुधार और सफाई। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि इस प्रदेश में मुख्यतः इन्हीं दोनों बातों का अभाव है बहुत अधिक मद्य पीनेवाले इन सब पहाड़ियों से मद्य छुड़ाने के लिये वक्ता महाशय ने अनेक प्रकार की रसपूर्ण बातें कही थीं और लोगों को सचमुच मुग्ध कर लिया था। जब उनकी वक्तृता समाप्त हो गई, तब वहाँ के नव्वे वर्ष के बूढ़े एक साधक बाबा ने, जो खद्दर की धोती पहने हुए नंगे बदन और नंगे पैर थे, गाँधीजी के संबंध में कुछ उपदेश दिया।

यद्यपि उनकी भाषा बहुत कुछ हिंदी और पहाड़ी मिश्रित थी, तो भी उस समय सब लोग निर्वाक् तथा निःस्तब्ध थे। धन्य हैं महात्मा गाँधी, जिनका पवित्र नाम केवल शहरों में ही नहीं, बल्कि कैलास के पाद-देश तक गाँव गाँव में लिया जाता है।

उस दिन संध्या के बाद से ही वृष्टि आरंभ हुई। भोजन आदि के बाद सब लोगों ने तंबू में हो रात बिताई। सवेरे के समय लगातार दो-तीन बार बंदूक छूटने का शब्द हुआ जिससे सब लोगों की नींद टूट गई। कोई कोई यात्री तो अहाते के बाहर भी निकल पड़े। पर जब उन लोगों को पता नहीं लगा कि यह शब्द कहाँ से आया, तब वे लोग फिर लौट आए। बाद में मालूम हुआ कि जब इस गाँव में लोगों में से किसी को कोई भारी बीमारी होती है, तब यह समझा जाता है कि उसके कंधे पर भूत सवार है। इसी लिये वे लोग उस समय भूत को भगाने के लिये इस प्रकार बंदूक छोड़ते हैं। पहाड़ी जातियों में रोग दूर करने के लिये आज-कल भी इस प्रकार के औषध का प्रचार है।

सुरमा देवी ने जो व्यवस्था की थो, उसके अनुसार आजकल में ही पहाड़ से झब्बू और घोड़े आदि सवारियाँ आने को थीं। हम सब लोग आपस में यही बात-चीत कर रहे थे कि सब सामान वगैरह ठीक करने और बाँधने-छाँदने में क्या क्या बाकी है। मैंने सुना कि कैलास जाने के लिये

सबसे पहले एक दुभाषिए को आवश्यकता होती है। तिब्बत एक अलग देश है और वहाँ की भाषा बिलकुल स्वतंत्र है और लोग उस भाषा का एक अक्षर भी नहीं समझ सकते, इसलिये यात्री लोग साधारणतः यहीं से एक दुभाषिया अपने साथ ले जाते हैं। वह दुभाषिया ही यात्रियों को कैलास का मार्ग दिखलाता हुआ ले जाता है।

रंजन नामक एक व्यक्ति दुभाषिया बनकर हम लोगों के साथ जाना चाहता था। वह सुरमा देवी का ही भेजा हुआ था, इसलिये विश्वस्त था। वह आदमी हँसमुख और कार्य-कुशल था। वह हिंदी में बहुत अच्छी तरह बात-चीत करना जानता था। यह तै हुआ कि भोजन के अतिरिक्त उसे डेढ़ रुपया रोज देना होगा। यहाँ एक बात बतला देना आवश्यक है। जब एक-दो आदमी कैलास जाते हैं, तब उन्हीं को अकेले इस दुभाषिए का सारा खर्च उठाना पड़ता है। हम लोगों के लिये सुभीते की बात यह थी कि यह खर्च तीन दलों में (डाक्टरों का दल, उत्तरपाड़ा-वाला दल और हम लोगों का दल) समान भागों में बँट गया था।

जब हम लोगों को यह मालूम हुआ कि कैलास से फिर लौटकर गार्बियांग तक आने में प्रायः बीस दिन लगेंगे, तब तीनों दलों के खर्च से उस दुभाषिए के लिये आवश्यक भोजन-सामग्री खरीद ली गई।

भूपसिंह की अवस्था देखकर दुभाषिए ने हम लोगों को राय दी कि आप यहाँ से एक पहाड़ी नौकर अपने साथ ले चलें। कैलास में बहुत जाड़ा पड़ेगा। वहाँ रास्ते में रोज तंबू खड़ा करना पड़ेगा, असबाब वगैरह खोलना-बाँधना पड़ेगा, पानी गरम करना पड़ेगा, कपड़े धोने पड़ेंगे। और ये सब काम भूपसिंह होशियारी के साथ कभी न कर सकेगा। इसी लिये लाचार होकर पानसिंह नामक एक पहाड़ी को साथ ले जाने की व्यवस्था हुई। बीस रुपए महीने के हिसाब से उसे तनख्वाह देना तै हुआ। इसके सिवा भोजन अलग। इन्हीं सब कारणों से हम लोगों ने गार्वियांग से साढ़े बारह सेर आटा, एक रुपए की मसूर की दाल, साढ़े आठ सेर चावल और ढाई सेर गुड़ भी खरीद लिया। इसके सिवा पाँच सेर सत्तू भी ले लिया गया, पर वह केवल भूपसिंह के अनुरोध से। वह कहता था कि यदि मुझे सत्तू न मिलेगा तो कैलास के जाड़े में मैं मर जाऊँगा। वह इतनी बड़ी पार्टी के साथ आया था और इसी लिये अभी तक उसकी रसना से कोई चीज बाकी नहीं बची थी; तो भी उस समय दीदी को लाचार होकर उसके इस अनुरोध की रक्षा करनी पड़ी थी। डर था कि कहीं ऐसा न हो कि भोजन की सामग्री कम होने पर शायद सिंहजी बंदूक भी कंधे से उतारकर रख दें और कहें कि इसे भी नौकर उठा ले चले। जब हम लोगों ने एक नया नौकर रख लिया, तब उसके आनंद की सीमा न रही।

नौकर तो रख लिया गया, पर उसके पास कैलास जाने के लायक पहनने के कपड़े न थे। भला वहाँ जाड़े में प्राण देने कौन जायगा? अतः उसके कुरते और पाजामे के लिये एक रुपए साढ़े तेरह आने में पौने तीन गज कपड़ा खरीदा गया और वहीं के एक दरजी को आठ आने सिलाई देकर उसकी पोशाक तैयार करा ली गई। इसके सिवा उसके जूते के लिये एक रुपया नौ आना अलग खर्च करना पड़ा।

हम लोगों के साथ छोटे छोटे दो तंबू थे। यात्रा आरंभ करने से पहले ही कानपुर की एल्गिन मिल्स से इसलिये दो हलके और छोटे तंबू खरीदे गए थे कि दूर देश में ऐसे ही तंबू ले जाने में सुभीता होगा। उनमें से एक तंबू तो केवल असबाब से ही भर गया। बाकी एक तंबू में छः आदमी किसी तरह नहीं रह सकते थे। और विशेषतः तिब्बत के रास्ते में कहीं कोई घर मकान नहीं था। खाना पकाना आदि भी तंबू में ही करना पड़ता। बाहर बहुत तेज हवा चलती थी। इस प्रकार की अनेक कठिनाइयों का हाल सुनकर, दुभाषिए के कहने के अनुसार, हम लोगों ने बीस-पचीस दिन के लिये मझोले आकार का एक तंबू छः रुपए किराए पर ठीक करके अपने साथ ले लिया। यहाँ से स्वामीजी आदि ने भी एक तंबू किराए पर ले लिया था। यहाँ एक बात बतला देना आवश्यक

है। यदि प्रयत्न किया जाय तो यहाँ दो-चार तंबू किराए पर मिल सकते हैं; पर यदि अधिक यात्री एक साथ हों और सब लोग अपने अपने लिए अलग तंबू ठीक करना चाहें तो कठिनता होती है। इसलिये यदि घर से ही तंबू अपने साथ लाया जा सके तो फिर कोई चिंता नहीं रह जाती। इस प्रकार सब व्यवस्था करके १३ जुलाई, २९ आषाढ़, शनिवार को हम लोग गार्बियांग से रवाना हुए।

——※——

पाँचवाँ पर्व

गार्बियांग से तकला कोट

हम सब यात्रियों का असबाब वगैरह ढो ले चलने के लिये पहाड़ से काले रंग के भीषण आकारवाले बाइस झब्बू आकर स्कूल के सामने खड़े हो गए। उनके गले में बँधे घंटों से एक साथ जो रुन-झुन शब्द हो रहा था, वह हम लोगों को एक अज्ञात और दुर्गम मार्ग की यात्रा की सूचना दे रहा था। हम सब लोगों ने अपना अपना असबाब तंबू आदि समेत उन्हीं की पीठ पर लदवा दिया। भोजन के उपरांत साढ़े दस बजे के करीब सब लोगों ने एक एक करके यात्रा आरंभ की।

दीदी और उनके साथ की स्त्री दोनों उस दिन पहले-पहल झब्बू पर सवार हुईं। झब्बू की पीठ पर पहले तो कई कंबल बिछाए गए और तब बीच में जीन की तरह का काठ का एक आधार (जिसके ऊपर सवारी बैठती है) रखा गया। इसके बाद फिर उस पर एक-दो कंबल बिछा दिए गए जिससे उस पर एक गद्दी सी बन गई। तब मज-बूत रस्सी से दोनों ओर दो रिकाबें बाँधी गईं। जिस समय झब्बू के मालिक ने इन दोनों स्त्रियों से झब्बू की पीठ पर सवार होने के लिये कहा, उस समय एक बार उन दोनों को

पसीना हो आया। रंजन की सहायता से उन लोगों को झब्बू पर सवार कराया गया और प्रत्येक की कमर में एक कपड़ा लपेटकर झब्बू की पीठ के साथ बाँध दिया गया।

झब्बू बहुत ही भीषण आकारवाले जंतु होते हैं। जिस समय आदमी उन पर सवार होने लगते हैं, उस समय वे अपना अंग-प्रत्यंग खूब हिलाकर उसके सवार होने में बाधा देते हैं। जब आदमी एक बार सवार हो जाता है और झब्बू की नाक में पड़ी हुई डोरी या लगाम हाथ में पकड़ लेता है, तब वह बहुत कुछ निश्चिंत हो जाता है। इन झब्बुओं के सिवा हम लोगों को चार घोड़े भी मिल गए थे। उन पर श्रीमान् नित्यनारायण, भूपसिंह, गंगाधर घोष और मैं ये चार आदमी सवार हुए। बाकी और सब लोग पैदल चले। गार्वियांग से तकला कोट तक प्रत्येक झब्बू और घोड़े का भाड़ा साढ़े चार रुपए के हिसाब से तै हुआ था। इसके सिवा सवारी के दोनों झब्बुओं को पकड़कर ले चलने के लिये दो और आदमियों की जरूरत थी और वे दोनों आदमी ढाई ढाई रुपए पर ठीक हुए थे। इनके सिवा बोझ ढोनेवाले जो बीस झब्बू थे, उन्हें हाँकने के लिये पाँच आदमी रखे गए थे और प्रत्येक आदमी दो रुपए पर ठीक किया गया था।

यहाँ से आगे जाने के लिये जो स्थान निर्दिष्ट हैं, उन स्थानों में जलाने की लकड़ी मिलना बहुत ही कठिन होता है। इसलिये यात्रियों में से स्वामीजी आदि तीन-चार आदमी

रंजन को साथ लेकर आगे के रास्ते के किसी स्थान से लकड़ी संग्रह करने के लिये पहले ही रवाना हो गए थे। इसी लिये रंजन ने अपने साथ एक कुल्हाड़ी या टाँगी भी ले ली थी। यहाँ यात्रा करते समय सभी लोग यह अस्त्र अपने साथ रखते हैं। झब्बू हाँकनेवाले प्रत्येक आदमी की कमर में एक तेज धार-वाली भुजाली शोभा पा रही थी। हम लोग कभी तो काली नदी के इस पारवाले किनारे से और कभी उस पारवाले किनारे से अर्थात् नेपाल की सीमा में से होते हुए धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। रास्ते में जगह जगह देवदार की तरह के पहाड़ी वृक्ष और दूसरे छोटे छोटे जंगली वृक्षों के झुरमुट पार करने पड़ते थे। एक जगह झरना पार करने पर सामने खड़ा ऊँचा रास्ता मिला। सब झब्बू बोझ लिए हुए उस रास्ते से अनायास ही चढ़ते चले गए। इन महिषाकार पशुओं की पीठ पर स्त्रियों को सवार देखकर उस समय ऐसा जान पड़ता था कि ये लोग महिषमर्दिनी के रूप में इस दुर्गम शैल-शिखर पर कैलास-पति के दर्शनों के लिये जा रही हैं। कोई इधर-उधर नहीं देखता था। रास्ते में कहीं किसी जीव-जंतु या पशु-पक्षी का कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता था। बस पहाड़ों के बाद पहाड़ दुर्ग की भाँति चारों ओर से घेरे हुए थे। उनके मस्तक पर बरफ से ढके हुए शृंग थे जिन पर सूर्य की किरणें और भी उज्ज्वल हो रही थीं। वह दृश्य मानों ठीक शिवजी के रजत-शुभ्र अट्टहास के समान जान पड़ता था।

जिस समय हम लोग घोड़े पर सवार इस ऊँचे रास्ते पर चढ़ रहे थे, उस समय अचानक भूपसिंह घोड़े के साज समेत दुम की ओर से नीचे गिर पड़ा। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि वह सिंह-प्रवर रण से मुँह न मोड़कर दुम पकड़े हुए ही स्वर्ग जाने की कल्पना कर रहा था। शायद इसी लिये ज्योंही उसने घोड़े की दुम पकड़ी, त्योंही वह स्वर्ग प्राप्त करने का उद्योग करता हुआ छटककर एक बार बगल में श्रीमान् नित्यनारायण के घोड़े के पैरों पर जा पड़ा। इसमें उसे स्वयं तो बहुत कुछ चोट आई ही, श्रीमान् नित्यनारायण का घोड़ा भी अचानक चोट लगने के कारण रास्ते पर से एकदम किनारे चला गया। प्रसन्नता की बात यही थी कि श्रीमान् अपने घोड़े की लगाम बहुत मजबूती के साथ पकड़े हुए थे, नहीं तो वे घोड़े समेत नीचे नदी में ही जा पड़ते। अचानक विपत्ति की यह सूचना देखकर मैंने मन ही मन भगवान् का स्मरण किया। अपने प्राण बचाने के लिये मैंने तै कर लिया कि मैं स्वयं ही घोड़े से उतरकर पैदल चलूँगा। घोड़ा ले चलनेवाले के बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी फिर उस यात्रा में मैं घोड़े पर नहीं चढ़ा। बेचारा भूपसिंह चोट खाकर कुछ देर तक विश्राम करता रहा और थोड़ी ही देर बाद फिर हँसता हुआ घोड़े पर चढ़ बैठा।

प्राय: ढाई बजे के समय रास्ते के पास एक जंगल में स्वामीजी आदि के साथ भेंट हुई। इसी बीच में उन लोगों

ने बहुत सी लकड़ी इकट्ठी कर रखी थी। प्रत्येक झब्बू के बोझ के साथ दो-चार मोटी मोटी लकड़ियाँ बाँध दी गईं। मेरा घोड़ा अब मेरे बदले में लकड़ी ढोकर चलने लगा। हम लोग बराबर इसी तरह काली नदी के किनारे किनारे चलते हुए संध्या के लगभग काला पानी जा पहुँचे।

काला पानी का नाम सुनकर पहले हम लोगों ने समझा था कि यहाँ का पानी काले रंग का होगा—अंडमनवाले काले पानी का ध्यान हम लोगों को नहीं हुआ था। लेकिन यहाँ आने पर वह भ्रम दूर हो गया। जिस जगह हम लोगों के तंबू खड़े किए गए थे, उसके पास ही एक झरना बह रहा था। उस झरने का पानी बहुत ही स्वच्छ और बरफ की तरह ठंढा था। वह झरना नीचे जाकर काली नदी में मिल गया था। यहाँ केवल दो-एक घरों की बस्ती थी। यहाँ की ऊँचाई समुद्र-तल से तेरह हजार फुट होगी। जाड़े के कारण यहीं से बहुत से लोगों के होंठ फटने लग गए थे। जो लकड़ियाँ हम लोग अपने साथ लाए थे, उनमें से कुछ लकड़ियाँ चीरकर रंजन ने रसोई की व्यवस्था की। किसी ने चाय पी, किसी ने खिचड़ी खाई और किसी ने पूरी हलुआ बनवाया। पबना निवासी एकाहारी श्रीयुक्त राय महाशय ने बिना कुछ खाए-पीए ही रात बिताने की व्यवस्था की। इस विषय में उनकी सहिष्णुता असीम थी। वे स्वयं अपनी इच्छा से और जान-बूझकर बराबर यहाँ तक पैदल और नंगे

पैर (यद्यपि उनके साथ एक जोड़ा नया जूता था) चले आ रहे थे। तीर्थ-यात्रा के लिये उनका यह संकल्प था कि जब तक नंगे पैर चलना असंभव न हो जायगा, तब तक हम जूते का व्यवहार नहीं करेंगे और बराबर पैदल ही चलेंगे; झब्बू या घोड़े पर सवार होकर उनको कष्ट न देंगे।

आज हम लोग गार्वियांग से चलकर प्रायः ग्यारह मील आए थे। दूसरे दिन अर्थात् १४ जुलाई, ३० आषाढ़, रविवार को भोजन आदि कर चुकने के उपरांत दस बजे के लगभग हम लोगों ने काले पानी से फिर अपनी यात्रा आरंभ की। यहाँ तक रास्ते के साथ साथ वही काली नदी बह रही थी। पर यहाँ के पहाड़ों पर कोई वनस्पति नहीं थी और वे बिलकुल अनावृत थे। उनके मस्तक पर केवल बरफ का शुभ्र सौंदर्य व्याप्त था। सूर्य की किरणों पड़ने से वह सौंदर्य और भी उज्ज्वल हो जाता था और जगह जगह और भी अधिक सुंदर होता हुआ पहाड़ पर से नीचे उतरता था। रास्ते के आस-पास पहाड़ी जमीन के छोटे छोटे टुकड़े तृणों से शोभित हो रहे थे और उनमें कहीं कहीं मौसिमी पौधे अनेक प्रकार के रंगों से हम लोगों के उत्सुक नयनों को मोहित कर रहे थे। उनमें से अधिकांश फूल एयास्टर की जाति के थे। तो भी उनका सौंदर्य हम लोगों के कृत्रिम उपायों से तैयार किए हुए पौधों के फूलों की अपेक्षा कहीं अधिक मधुर और उज्ज्वल था। अनेक प्रकार की नवीन

कल्पनाएँ करते हुए हम इस रास्ते से बढ़ते हुए डेढ़ बजे के लगभग एक झरने के पास पहुँचे। उस झरने की प्रशस्त धारा पश्चिम की ओर से पूर्व की ओर आई थी और काली नदी में मिल गई थी। हम लोगों को यह झरना पार नहीं करना पड़ा था। झरने के उस पार एक बहुत ऊँचा पहाड़ था। वह समस्त पर्वत प्रायः तुषार-माला से आच्छन्न था। यहाँ साधारणतः मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि यहीं से काली नदी उत्पन्न हुई है। इसका कारण यह था कि इस झरने और काली नदी का संगम-स्थल इस पार से जितना दूर दिखाई पड़ता था, उससे स्पष्ट ही मन में यह विश्वास उत्पन्न होता था कि इसी तुषार-धवल पर्वत से इस नदी का प्रवाह नीचे आ रहा है।

अब हम लोग काली नदी को पीछे छोड़कर झरने के किनारे किनारे आगे बढ़े। यहाँ से सामनेवाले पहाड़ों का दृश्य देखने में इतना अधिक सुंदर जान पड़ता था कि उसे देखने के लिये सभी लोगों ने कुछ देर तक वहाँ विश्राम किया। उस दिन मानों जटा-जूटधारी योगिश्रेष्ठ के निर्वाण की प्रति मूर्त्ति सजीव होकर हम लोगों के नेत्रों के सामने आ खड़ी हुई थी। हम लोगों ने समझ लिया कि रजत-प्रभा से युक्त इन हिमाच्छादित पर्वतों के निर्जन प्रदेश में ही हिमालय-पति के विश्राम करने का आवास-स्थल है और इसी वास्ते क्षण भर के लिये उस विचित्र शैल-माला के तुषार में हम लोगों

का मन पूर्ण रूप से लीन हो गया। हम लोगों ने उद्भ्रांतों के समान उस दिन वह दृश्य विह्वल नेत्रों से देखा था। हम लोग ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाते थे, त्यों त्यों प्रकृति के उस सुरम्य निकेतन में नए नए दृश्य देखकर हम लोगों के पिपासित नेत्र और भी अधिक चरितार्थ होते जाते थे। झरने के किनारे किनारे कुछ दूर चलने के उपरांत डेढ़ बजे के लगभग हम लोग संग् चिग् नामक स्थान में पहुँचे। रास्ते में आते समय हम लोगों को दो-तीन ऐसे झरने पार करने पड़े थे जो बाईं ओर के पहाड़ से बहकर नीचे आ रहे थे। उन झरनों को पार करने के समय उनके बरफ की तरह ठंढे जल में प्रत्येक यात्री के पैरों का अस्तित्व ही प्रायः नष्ट हो गया था—उस ठंढे जल के स्पर्श से सब लोगों के पैर बिलकुल सुन्न हो गए थे।

संग् चिग् की ऊँचाई समुद्र-तल से प्रायः पंद्रह हजार फुट होगी। यहाँ हम लोगों को कोई घर या मकान नहीं दिखाई पड़ा। सामने परम दुर्गम लिपूलेक नामक पहाड़ था। नीचे झरने के किनारे एक समतल मैदान में तंबू खड़े करने की व्यवस्था हुई।

इतने बड़े दल के साथ तंबू कुछ कम तो थे ही नहीं। स्वामीजी का एक बड़ा तंबू था (डाक्टरों का दल उसी में सोता था), उत्तरपाड़ावालों का तंबू था, राय महाशय का एक तंबू था, हम लोगों के तीन तंबू थे और रंजन आदि

नौकरों के लिये एक तंबू था। इस प्रकार यहाँ सब मिलाकर सात तंबू गोलाकार में खड़े किए गए। इनके सिवा झब्बू हाँकनेवालों के कंबलों के छोटे छोटे दो-तीन घिराव भी तंबू की तरह ही शोभा पा रहे थे। इस प्रकार नित्य ही इस पहाड़ी रास्ते में हम लोगों को एक स्थान पर इतने तंबू खड़े करने पड़ते थे और दूसरे ही दिन उन्हें खोलकर उठाना पड़ता था और तुरंत यात्रा करनी पड़ती थी। यह हम लोगों का विराट् अभियान था। मानों एक मात्र कैलास-पति ही, इस प्रदेश के अधिपति हो, प्रसन्न होकर यह प्रत्यक्ष करते थे कि स्वयंसेवकों की तरह नित्य यह सेना अपनी इच्छा से कोई एक महान उद्देश्य मन में रखकर निर्भीकतापूर्वक चल रही है।

जब हम लोगों को बहुत अधिक जाड़ा लगने लगा, तब रंजन ने तंबू के बीच में कई बड़ी बड़ी लकड़ियाँ रखकर जलाईं। झरने के पानी से किसी तरह हाथ पैर धोकर सब लोग आकर उसी आग के पास बैठ गए और यात्रा के संबंध में परामर्श करने लगे। संध्या से कुछ पहले डाक्टर कौशिक और उनके साथ के दोनों यात्री वहाँ पहुँचकर हम लोगों से मिले। उस समय यह निश्चित हुआ कि आज रात को हम सब लोग बहुत जल्दी सोकर उठेंगे और तड़के अँधेरा रहते ही लिपूलेक पार करेंगे। यह मार्ग विस्तृत तुषार-राशि पर से होकर गया है। ज्यों ज्यों दिन चढ़ता है, त्यों त्यों वह बरफ गलना आरंभ होता है। अतः यदि धूप निकलने

से पहले ही यात्री लिपूलेक के उस पार पहुँच जायँ तो उन्हें उतना अधिक कष्ट नहीं होता। यह सब परामर्श करके जहाँ तक जल्दी हो सका, हम लोगों ने भोजन कर लिया और जाकर सो रहे। काला पानी से संग् चिग् प्रायः पाँच मील होगा।

बहुत अधिक जाड़ा पड़ने के कारण रात के समय किसी को नींद नहीं आई। तिस पर से रात को तीन बजे से ही भोटिए व्यापारी लोग अपनी भेड़ों के दल हाँककर आगे बढ़ने लगे। क्षण क्षण पर उनके चिल्लाने का शब्द तंबू भेदकर हम लोगों के कान फाड़ रहा था। रात को चार बजे के लगभग स्वामी शंकरनाथजी ने अपने तंबू से बाहर निकलकर जोर से आवाज देकर सब लोगों को जगा दिया। सब लोग बिस्तर पर से उठ खड़े हुए और नित्य की तरह फिर असबाब वगैरह बाँधकर झब्बू हाँकनेवालों के सपुर्द करने लगे। हाथ-मुँह धोने के उपरांत उस दिन सब लोग सबेरे पाँच बजे के लगभग ही भगवान् का नाम लेकर वहाँ से चल पड़े।

लिपूलेक पर्वत की ऊँचाई समुद्र-तल से प्रायः सोलह हजार सात सौ अस्सी फुट होगी। इसे पार करने के बाद ही तिब्बत का राज्य आरंभ होता है। इस प्रकार इतने दिनों के बाद इस रास्ते में हिमालय के दुर्लंघ्य शिखरों का एक प्रकार से अंत हो गया था। हम लोग मन में एक प्रकार के अभिमान का अनुभव करते हुए धीरे धीरे चढ़ाई के रास्ते

पर चढ़ने लगे। उस दिन प्रायः दो मील चलने के उपरांत ही हम लोगों के पैर बिलकुल सुन्न हो गए। यद्यपि मन में बहुत कुछ उत्साह था, तो भी चलने में शरीर बहुत ही भारी जान पड़ता था। इस रास्ते की चढ़ाई बहुत अधिक ऊँची नहीं थी, बल्कि जिस रास्ते से होकर हम लोग आए थे, उसे देखते हुए यह रास्ता बहुत कुछ प्रशस्त था और इसलिये आने-जाने के विचार से बहुत सुभीते का था; परंतु आगे बढ़ने के समय प्रत्येक यात्री के जल्दी जल्दी चलते हुए श्वास-प्रश्वास का कातर शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ता था। एक तो योंही असह्य जाड़ा पड़ रहा था; तिस पर चारों ओर से बरफीली हवा आकर उस समय हम लोगों के मार्ग में विलक्षण बाधा देने लगी। सब लोग चुपचाप अवसन्न हृदय से चल रहे थे। इसी बरफ के बीच में सामने प्रायः दो फरलांग लंबा रास्ता देखकर सब लोग घबरा गए। अब कहीं जाकर राय महाशय के नंगे रहनेवाले पैरों पर मोजे के साथ मिला हुआ जूता दिखाई पड़ा। झब्बुओं का दल बोझ समेत उस बरफीले रास्ते के निर्दिष्ट चिह्न पर से होता हुआ आगे निकल गया। हम लोग भी लंबी लाठी के सहारे धीरे धीरे उस रास्ते के पार हुए। इसके बाद कुछ दूर और आगे बढ़ने पर फिर एक और बरफीला रास्ता दिखाई दिया। इस बार का रास्ता क्रमशः ऊँचा होता गया था और कुछ दूर जाकर पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी पर समाप्त हुआ था। यहाँ दीदी और

उनके साथ की स्त्री को लाचार होकर झब्बू से उतरना पड़ा। बोझ ढोनेवाले झब्बुओं को भी बोझ लेकर यह रास्ता पार करने में बहुत कठिनता हुई थी। झब्बू हाँकनेवाले दो आदमी दौड़े और उनके साथ की स्त्री को पकड़कर ऊपर ले गए थे। जिस समय हम सब लोग लाठी के सहारे यह बरफीला रास्ता पार कर रहे थे, उस समय उत्तरपाड़ा के चट्टोपाध्याय महाशय को अधिक चोट आई थी। यद्यपि चट्टराज के बदले में उनके पैरों में नया 'क्रेप शू' था, तो भी उनके दोनों पैर तीन-चार बार गले हुए बरफ में धँस गए थे।

मैंने तुषार का किरीट धारण करनेवाले इस शृंग के पास देखा कि एक सूखा हुआ वृक्ष डालियों समेत पड़ा हुआ है। उस वृक्ष की जड़ कई चुने हुए पत्थरों से घिरी हुई थी और उसकी शाखा-प्रशाखाओं में अनेक रंगों के कई कटे फटे कपड़े बँधे हुए थे। यहाँ आकर पहुँचने पर चढ़ाई समाप्त हुई थी और इसी बात की सूचना देने के लिये तिब्बती लोगों ने इस प्रकार जय-यात्रा की यह सूचना सी बना रखी थी। मैंने यह भी सुना कि कपड़े के ये टुकड़े बाँधते समय वे लोग अपने देवता के नाम पर मन्नत भी चढ़ाते हैं।

लिपू के सबसे ऊपरवाले स्तर पर पहुँचकर हम लोगों ने एक बार उस पार तिब्बत की ओर देखा। कैसा मनोरम दृश्य था! आँखों के सामने (यद्यपि वहाँ से कुछ दूर था) प्रातःकाल के सूर्य की किरणों से उज्ज्वल और बरफ से ढका

होने के कारण शुभ्र गुरेला मांधाता चित्रपट के समान दूर तक फैला हुआ जान पड़ता था। इस पहाड़ की ऊँचाई समुद्र-तल से प्रायः पचीस हजार फुट है। ऐसा जान पड़ता था कि तुषार की तरंगों में से होता हुआ यह पर्वत मानों कैलासपति की चरण-वंदना करने के लिये आगे बढ़ रहा है। भारत के इस अंतिम प्रांत में पहुँचकर आज मैंने उस निपुण चित्रकार को अभिभूत चित्त से प्रणाम किया। सामने उतराई के रास्ते पर फिर वही बरफीला रास्ता मिला। उस रास्ते में बहुत फिसलन थी। जरा सा असावधान होने पर ही आदमी नीचे गिर सकता था। सभी यात्री धीरे धीरे लाठी और एड़ी पर भार दिए हुए नीचे उतरने लगे। इतनी सावधानी रखने पर भी उस बरफ में कालिकानंदजी का पैर फिसल ही गया और वे आठ-दस हाथ नीचे जा गिरे। यदि उस समय डाक्टरों में से एक सज्जन (नलिन बाबू) न पकड़ लेते तो उन्हें बहुत चोट लगती। अहमदाबादवाले डाक्टर कौशिक की भी यही दशा हुई। पैर फिसलने पर बैठे ही बैठे वे प्रायः बीस हाथ नीचे जा पड़े। यद्यपि अंदर से उनका हृदय धक् धक् कर रहा था, तो भी उनके मुख पर वीरत्व की हँसी आ गई। उन्होंने कहा कि मैं जान-बूझकर ही इस प्रकार बैठकर नीचे उतरा था! दीदी और उनके साथ की स्त्री को दो झब्बू हाँकनेवाले हाथ पकड़कर नीचे उतार ले गए थे। पाठक सहज में ही अनुमान कर सकते हैं कि यहाँ

पहुँच कर उन लोगों की अवस्था कैसी विपत्तिजनक हो गई थी। इस प्रकार यह उतराई समाप्त करके आठ बजे के लगभग हम लोग एक समतल मैदान में पहुँचे। सब लोग बहुत थक गये थे, इसलिये प्रायः दो घंटे तक वहां विश्राम किया गया। पास ही एक झरना बह रहा था जिसमें बरफ का गला हुआ पानी था। थोड़ा सा खाकर सब लोगों ने उस धारा का जल खूब पेट भरकर पीया और तृप्त हुए।

दस बजे के लगभग झरने के किनारे किनारे होते हुए सब लोग चलने लगे और तिब्बत के रास्ते पर धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। यह रास्ता कहीं तो समतल था और कहीं उतराई का था, इसलिये किसी को कोई कष्ट नहीं हुआ। यद्यपि सब लोग जल्दी जल्दी आगे बढ़ जाना चाहते थे, तो भी कोई आगे बढ़ नहीं सकता था। इसका कारण यह था कि धूप और तेज हवा दोनों ही हम लोगों की इस इच्छा में बाधा देती थीं। इस प्रकार तेज धूप और तेज हवा सहने का हम लोगों को पहले ही अवसर पड़ा था। धूप की तेजी से मानों आँखें झुलसी जा रही थीं। इसीलिये इस रास्ते में ऐसे चश्मे (सन गोगल्स) की आवश्यकता होती है जिससे धूप बचाई जा सके।

यहाँ से पहाड़ का दृश्य भी कुछ और ही तरह का दिखाई पड़ता था। यहाँ के पहाड़ों में कहीं वैसी आकाश-

हुई वो भयानक उच्चता देखने में नहीं आती। ये पहाड़ बहुत छोटे जान पड़ते हैं। हिमालय की ऊँची चोटी ने मानों इन पर्वतों का गर्व खर्व कर दिया है। ऐसा जान पड़ता है कि इन्होंने उसके सामने अपनी हार मान ली है और इसी लिये लज्जाके कारण इनका रंग भी कुछ दूसरा ही हो रहा है। कोई पहाड़ हल्दी के रंग का है, कोई गेरुआ है और किसी का रंग कारबोलिक साबुन के रंग के समान है। उनके सिरपर प्रायः बरफ जमा हुआ है। यहाँ सफेद और काले का अपूर्व सम्मिश्रण दिखायी पड़ता है। यह दृश्य देखने में नवीन और विचित्र जान पड़ता है। यह दृश्य देखने में पहाड़ हड्डियों की ठठरी की तरह पड़े हुए हैं। झरने के किनारे किनारे उनका कुछ अंश टूटकर नीचे खिसक गया है जिसके कारण जगह जगह पत्थरों के स्तूप बन गए हैं। इन्हीं स्तूपों के बीच से होकर चलते समय प्रायः हम लोगों का धैर्य छूट जाता था। झरने के उस पारवाले रास्ते पर पहुँचने के लिये उसमें कहीं कहीं घुटने भर पानी देखकर हम लोगों ने एक एक करके रंजन की पीठ पर सवार हो कर उसे पार किया। इस प्रकार प्रायः चार मील रास्ता पार करने पर हम लोग पाला नामक स्थान में पहुँचे। यहाँ पर पत्थर का बना हुआ एक ही मकान है। झरने के किनारे किनारे कुछ दूर तक ऐसी चौड़ी जमीन थी जिस पर घास उगी हुई थी। जन्तुओं और घोड़ों को यहाँ कुछ देर तक घास

चरने का अच्छा अवसर मिल गया था। कुछ यात्रियों ने भी यहाँ विश्राम किया था।

यहाँ से तीन साढ़े तीन मील और आगे चलने पर तकला कोट पड़ता था। इस झरने की धारा ही क्रमशः चौड़ी होती हुई उस गाँव तक पहुँच गई है। दूर से तकला कोट का यह दृश्य बहुत ही सुंदर जान पड़ता था। पहाड़ों के ऊपर बनी हुई छोटी छोटी कोठरियाँ दिखाई पड़ती थीं जो बिलकुल कबूतरों के रहने के दरबों के समान जान पड़ती थीं। दो बजे के लगभग हम लोगों ने पहले तो एक हरा-भरा और लंबा-चौड़ा मैदान पार किया और तब हरी फसल से भरे हुए खेत पार किए। बीच बीच में कृषकों की दो-एक झोंपड़ियाँ भी मिली थीं जिनसे जान पड़ता था कि पास ही कोई गाँव है। पहले हरे मटर का खेत दिखाई पड़ा। पर दुःख की बात यही है कि अभी तक पौधों में फलियाँ नहीं लगी थीं, केवल फूल ही लगे थे। जौ और गेहूँ के खेतों में बालें निकल रही थीं। आजकल हम लोगों के देश में तो ये सब चीजें नहीं होतीं, पर ठंढे देशों में इनके होने का यही समय है। खेतिहर लोग झरने का जल बाँधकर इस प्रकार अपने खेतों में ले गए थे कि खेतों की सिंचाई के लिये उन्हें सहज में ही यथेष्ट जल मिल जाता था।

कुछ दूर और आगे बढ़ने पर गाँव मिला। नए आदमियों को देखकर वहाँ के कुत्ते भूँकने लगे। जिस तरह ये

कुत्ते देखने में बाघों की तरह भीषण होते हैं, उसी तरह इनकी आवाज भी गुरु-गंभीर होती है। ग्रामवासियों की कुतूहलपूर्ण दृष्टि में से होते हुए हम लोग धीरे धीरे करनाली नदी के किनारे जा पहुंचे। मैंने देखा कि यह गाँव नदी के दोनों ओर उसके ऊँचे किनारों पर बसा हुआ है। यद्यपि वह नदी अधिक गहरी या चौड़ी नहीं थी, तो भी उसके प्रवाह में वेग बहुत था। किसी किसी जगह उसका प्रवाह कई भागों में बँट गया है और एक ही ओर दो तीन झरनों के रूप में चलता है। बीच में केवल पत्थरों के ढेर लगे हैं। ग्रामवासियों के पार करने के लिये जगह जगह लकड़ी के पुल बने हैं! हम लोग यह नदी पार करके उसके किनारे एक ऐसी खाली जगह पर पहुँचे जो कुछ लंबी-चौड़ी थी। नदी के इस करारे पर चढ़ने के समय रास्ते में मैंने देखा था कि एक झरने की क्षीण धारा बह रही है। रंजन ने कहा था कि यहीं जल का सुभीता होगा, इसलिये उसके कहने के अनुसार वह खाली जगह ही तंबू लगाने के लिये ठीक समझी गई। संध्या होने से कुछ पहले ही झब्बुओं के दल के साथ साथ और सब यात्री भी वहाँ आ पहुँचे।

मंग् चिग् से यह तकला कोट प्रायः ग्यारह मील होगा। समुद्र-तल से इसकी ऊँचाई पंद्रह हजार फुट है। इसका तिब्बती नाम पूरांग् है। चारों ओर से बरफ से ढके हुए पहाड़ इस गाँव को घेरे हुए हैं। इन पहाड़ों को जरकर

रेंज(Zadskor Range) कहते हैं। सामने सिर के ऊपर एक पहाड़ की चोटी पर एक बड़ा मठ और यहाँ के गवर्नर का दुर्ग-प्रासाद सुशोभित है। गवर्नर को यहाँ जुंपान पूसो कहते हैं हम लोग पहले ही यह सुन चुके थे कि बाहर के यात्री इसी जुंपान पूसो से अनुमति लेकर तिब्बत में प्रवेश करने पाते हैं। साहबी टोपी या हैट पर उनकी कड़ी नजर रहती है। दुःख की बात है कि श्रीमान् नित्यनारायण के सिर पर इस प्रकार की एक टोपी बिलकुल आरंभ से ही चली आ रही थी। आज रंजन के कहने पर वह टोपी उतारकर छिपा दी गई। तीर्थ-यात्री लोग केवल पुण्य संचित करने के लिये कैलास के दर्शन करने के लिये आ रहे थे, राज्य जीतने के उद्देश्य से नहीं आ रहे थे।

तंबू खड़े करने में बहुत परेशानी हुई। पहले तो बहुत तेज़ हवा चल रही थी जिसके कारण तंबू खड़ा करने में सात-आठ आदमी लगे थे। तिस पर इस उपत्यका के छोटे छोटे पत्थरों में रस्सियाँ बाँधने के लिये खूँटे गाड़ने में बहुत कठिनता हुई। यहाँ मिट्टी बहुत कम थी, इसलिये हज़ार चेष्टा करने पर भी जल्दी खूँटे गड़ते ही नहीं थे। लाचार होकर आस-पास से पत्थरों के बड़े बड़े टुकड़े लाए गए और उन्हीं के साथ रस्सियाँ बाँधकर बहुत कठिनता से तंबू खड़े किए गए। यहाँ से प्रायः दो फरलांग की दूरी पर यहाँ की मंडी या बाजार शुरू होता है। सब लोग बहुत थके हुए

थे, इसलिये उस दिन किसी ने वहाँ जाना आवश्यक न समझा। संध्या के समय मुलतान से आए हुए तीन नए यात्री आकर हम लोगों के दल में मिल गए। उनमें से एक सज्जन का नाम था यज्ञदत्त नागपाल। हम लोगों का बहुत बड़ा दल देखकर उन लोगों ने भी हम लोगों के साथ ही कैलास जाना निश्चित किया था। तरह तरह की बातों में उस दिन की रात सुख से बीत गई।

दूसरे दिन सबेरे हम सब लोगों ने अपने अपने झब्बू और घोड़े का भाड़ा चुका दिया। सवारी के दो झब्बुओं और दो घोड़ों का (यद्यपि उनमें से एक घोड़ा केवल लकड़ियाँ ढोकर लाया था) भाड़ा (हर एक का साढ़े चार रुपए के हिसाब से) अठारह रुपए और बोझ ढोनेवाले छः झब्बुओंका भाड़ा फी झब्बू साढ़े चार रुपए के हिसाब से सत्ताइस रुपए, इस प्रकार सब मिलाकर पैंतालिस रुपए उन लोगों को दे दिए गए। इसके सिवा सवारी के झब्बुओं को ले चलनेवाले जो आदमी थे, उनमें से प्रत्येक को ढाई रुपए के हिसाब से कुल पाँच रुपए दिए गए और बोझ ढोनेवाले बीस झब्बुओं को हाँकनेवाले पाँच आदमियों में से प्रत्येक को दो रुपए के हिसाब से कुल दस रुपए दिए गए। ये दस रुपए तीन दलों के संबंध में खर्च हुए थे, इसलिये प्रत्येक दल को तीन रुपए सवा पाँच आने देने पड़े थे। सब मिलाकर आठ रुपए सवा पाँच आने अतिरिक्त व्यय हुए थे। हाँकनेवालों

को साथ लानेकी जो मजदूरी पहले तै हो चुकी थी, वही दी गई। ये सब लोग अपनी अपनी मजदूरी लेकर बिदा हुए।

अब हम लोग मंडी की ओर घूमने निकले। वहाँ देखा कि मंडी के हर एक घर की दीवार पत्थरों और मिट्टी की जोड़ाई से बनी हुई है और इनका ऊपरी भाग पाल की तरह मोटे कपड़े से ढका हुआ है। इन प्रदेशों में वृष्टि बहुत अधिक नहीं होती, इसलिये कपड़े की इन छतों से पानी काफी तौर से रुक जाता है। दूकानों मे कपड़े, ऊनी कंबल, ऊनी टोपियाँ, बकरी के चमड़े, चावल, मसूर की दाल, आटा, सत्तू, बड़ी इलायची-दाना, मिसरी (ओले के आकार में) किशमिश आदि कई तरह की चीजें, सूखे मेवे और यहाँ तक कि बिसातखाने की भी कुछ चीजें मिलती हैं। हम लोगों के देश की तुलना में यहाँ इन सब चीजों का दाम बहुत तेज होता है। फिर भी यहाँ एक दो चीजें अच्छी और किफायत मिलती हैं। बड़े बड़े रोएँ वाला बकरी का मुलायम चमड़ा यहाँ केवल एक रुपए में मिलता है। थुल्मा नाम का ऊनी कंबल जो बहुत मुलायम होता है, नाप के अनुसार दस-बारह रुपए में मिलता है। अलमोड़े में यह कंबल यहाँ से प्रायः दूने दाम में मिलता है। लेकिन यह चीज ठंडे देशों में ही ठीक तरह से रहती है। बंगाल में तो इनमें कीड़े लग जाते हैं जिससे ये नष्ट हो जाते हैं। दूकानें भी यहाँ कम नहीं हैं। चौदह-पंद्रह तो जरूर होंगी। दूकान-

दारों में से कुछ तो गार्बियांग के आस-पास से और कुछ तिब्बत के आस-पास से आए हुए हैं। ये लोग इधर कुछ महीनों तक यहाँ माल बेचेंगे और जाड़ा आने से पहले ही अपने अपने घर लौट जायँगे। हममें से कुछ लोगों ने थोड़ी किशमिश और मिस्री खरीदी और कुछ लोगों ने बकरी के कई चमड़े खरीदे।

डाक्टर कौशिक, मिथू बाबू और अलमोड़े के पेशकार साहब इसी मंडी में एक दूकानदार के घर ठहरे थे। भेंट होने पर उन लोगों ने कहा कि हम लोग आज ही यहाँ से कैलास के लिये रवाना होंगे। उन्होंने कहा था कि हम लोगों को लाचार होकर कुछ जरूरी काम से बहुत जल्दी अलमोड़े लौटना पड़ेगा। हम लोगों का साथ छूटने पर उन्होंने बहुत दुःख प्रकट किया था।

तिब्बत स्वतंत्र देश है, इसी लिये वहाँ के सिक्के भी अलग तरह के हैं। रास्ते के खर्च के लिये हम लोगों को यहाँ से अँगरेजी रुपयों के बदले में यहाँ के कुछ सिक्के लेने पड़े थे। इन सिक्कों को ये लोग तंका कहते हैं। तंका देखने में बहुत कुछ अठन्नी के समान होता है, पर वह जसते का बना हुआ जान पड़ता है। हम लोगों को एक रुपए के सात तंके मिले थे। इसी प्रकार कुछ भिन्न आकार का आधा तंका और चौथाई तंका भी होता है। हम लोगों को सभी प्रकार के थोड़े-बहुत सिक्के अपने साथ लेने पड़े

थे। इसका कारण यही है कि यहाँ विशेषतः दरिद्र-नारायण का ही राज्य है। यहाँ के जीवों से छुटकारा पाने के लिये इसके सिवा और कोई उपाय नहीं था। यहाँ आश्चर्य की बात यह थी कि जब हम लोग शरीर में सरसों का तेल मलते थे, तब लोग चकित होकर हम लोगों की ओर देखा करते थे। जब हम लोग दाँतों में मंजन लगाते थे, तब हम लोगों को देखकर यहाँ की स्त्रियाँ आपस में हँसती थीं। खाने-पीने की चीजों पर इन लोगों की नजर बहुत ज्यादा रहती है। एक दिन भूपसिंह तंबू के बाहर बैठा हुआ भात खा रहा था। उस समय इन भूखे जीवों में से एक ने आगे बढ़कर उसकी थाली में से दो ग्रास अन्न उठाकर जल्दी से अपने मुँह में डाल लिया!

ये लोग शरीर पर आलूखाल्ला नामक वस्त्र पहनते हैं जो सैकड़ों टुकड़ों को जोड़कर बना होता है। इन लोगों के सिर के बाल खड़े और बेहद रूखे होते हैं। ये लोग देखने में बिलकुल दुर्भिक्ष-पीड़ित और मनुष्य का रक्त पीनेवाले राक्षस जान पड़ते हैं।

यहाँ के लामाओं के संबंध में हम लोग अपने मन में बहुत उच्च धारणाएँ लेकर आए थे। परंतु दुःख की बात है कि वैसे शांत-चित्त, सदाचार परायण, उदार, अहिंसा-प्रकृति बौद्ध लामाओं के दर्शनों का सौभाग्य हम लोगों के भाग्य में बिलकुल ही नहीं बदा था। साधारणतः इन

लामाओं के हाथ में एक प्रकार का मुद्रा-यन्त्र रहता है। चंचल चित्त को स्थिर करने और उसे धर्म-मार्ग की ओर ले जाने के लिये ये लोग इस यंत्र का आवर्त्तन करते हुए मुख से अस्पष्ट स्वर में कुछ मंत्रों का उच्चारण करते हैं। हम लोगों ने जहाँ जहाँ गेरुए या लाल वस्त्र पहने और सिर मुँड़ाए हुए लामा देखे, वहाँ वहाँ उनके हाथ में वह मुद्रा-यंत्र भी अवश्य देखा और उन्हें अस्पष्ट स्वर से मंत्रोच्चारण करते हुए भी पाया; परंतु लाल पानी के प्रभाव से इनकी लाल लाल अलस आँखें देखने में विलक्षण हिंसायुक्त जान पड़ती थीं। शिकार तलाश करने में ये लोग बहुत होशियार हैं। सौ को सोधी एक बात यह है कि ये लोग ठीक हमारे यहाँ के तीर्थों के पंडों के समान ही होते हैं। व्यापार और राज्य दोनों में ही इन लामाओं का बहुत दिनों से बराबर प्रभुत्व चला आ रहा है।

एक समय था जब कि यहाँ का आकाश और वायु-मंडल अहिंसा के बीज-मंत्र से गूँजा करता था और उसके निदर्शन-स्वरूप आज भी यहाँ के मठ आदि उसी अतीत के पुरातन धर्म-युग की ही साक्षी देते चले आ रहे हैं। परंतु आजकल तो ये सब प्रदेश उसके बदले में केवल हिंसामूलक बकरों और भेड़ों के रक्त से ही रँगे हुए दिखाई पड़ते हैं! अपेय पान, दस्यु वृत्ति और लूट-मार आदि हिंसा-पूर्ण कार्यों में ही यहाँ के जन-साधारण विशेष रूप से अभ्यस्थ हो रहे हैं। ये लोग कधे पर बंदूक रखे और घोड़े पर सवार

डाकुओं की तरह पहाड़ पहाड़ घूमा करते हैं। यदि आव-श्यकता पड़े तो ये लोग यात्रियों की पीठ में छुरा भोंकने में भी आगा-पीछा न करेंगे।

अब फिर तकला कोट से आगे बढ़ने के लिये यात्रा के आयोजन होने लगे। सब लोग यह जानते थे कि इस बार की यात्रा में कैलास के दर्शन हो ही जायँगे, इसलिये सब लोग नवीन उत्साह से यात्रा के दिन गिनने लगे। हम लोगों के कैलास-दूत रंजन और अनुभवानंदजी को तो मानो बिलकुल छुट्टी ही नहीं मिलती थी। मंडी में जाकर जल्दी जल्दी झब्बू और घोड़े आदि ठीक करने के लिये ये लोग विलक्षण प्रयत्न करते थे। २ श्रावण, १८ जुलाई, बृहस्पति-वार को सवेरे यहाँ से यात्रा करना निश्चित हुआ। बीच में एक दिन पड़ता था और लोग वह दिन खाली बैठकर नहीं बिताना चाहते थे, इसलिये यह निश्चय हुआ कि इस बीच में चलकर खोजरनाथ के दर्शन कर आना चाहिए। कैलास की यात्रा करनेवालों के लिये यह भी एक देखने योग्य स्थान है। यहाँ से खोजरनाथ प्रायः दस-ग्यारह मील का रास्ता होगा। यह स्थान कैलास की ओर नहीं है, इसलिये स्वतंत्र रूप से इतनी दूर पैदल जाना और फिर वहाँ से उसी दिन लौट आना असंभव था, अतः वहाँ जाने के लिये घोड़े की आवश्यकता थी। परंतु इतने थोड़े समय में इतने अधिक यात्रियों में से प्रत्येक के लिये एक एक घोड़े की व्यवस्था

करना कुछ सहज काम नहीं था। इसका कारण यह है कि इन सब पहाड़ी प्रदेशों में झब्बू या घोड़ा कभी अपने मालिक के पास नहीं रहता। वह सदा पहाड़ों में इधर-उधर चरता रहता है। यदि भाड़े पर घोड़ा या झब्बू लेना हो तो पहले से उनके मालिकों को सूचना देनी होती है। नहीं तो पहाड़ से इन पशुओं को ढूँढ़कर लाने में देर लगती है। जो हो, रंजन के प्रयत्न से दूसरे दिन केवल नौ घोड़े इकट्ठे हो सके।

सवेरे साढ़े आठ वजे उत्तरपाड़ावाला दल, डाक्टरों में से दो आदमी, मैं, श्रीमान् नित्यनारायण और दीदी तथा उनके साथ की स्त्री ये सब लोग मिलकर कुल नौ आदमी नौ घोड़ों पर सवार हुए। स्वामीजी के साथ के लोग तथा वाकी और सब यात्री घोड़े न मिलने के कारण लाचार होकर उस दिन घर में ही वैठे रहे। दोनों स्त्रियों के घोड़ों को पकड़कर ले चलने के लिये दो तिब्बती घोड़ेवाले भी साथ थे। इन घोड़ेवालों में से एक आदमी कुछ टूटी-फूटी हिंदी भी जानता था। उस दिन रंजन के बदले वही आदमी हम लोगों को रास्ता दिखलाता हुआ ले चलता था।

जब हम लोग मंडी पार करके कुछ दूर पहुँचे, तब पहले एक उतराई उतरनी पड़ी। करनाली नदी पार करने के लिये वहाँ काठ का एक पुल था। सब लोग अपने अपने घोड़े पर से उतरकर वह पुल पार हुए। उस समय वहाँ भी किनारे पर भेड़ों के ऊन की खूब खरीद-बिक्री हो रही

थी। वहाँ दो-चार व्यापारियों के तंबू लगे हुए थे और ग्राहकों तथा माल बेचनेवालों में खूब लेन-देन और बातें हो रही थीं। उन लोगों के बीच में से होते हुए और उनकी उत्सुक दृष्टियों के निशाने बनते हुए हम लोग करनाली नदी को दाहिनी ओर छोड़कर आगे बढ़े। इसके बाद हम लोग धीरे धीरे एक चौड़े और समतल रास्ते पर जा पहुँचे। उस स्थान पर घोड़े पर चढ़कर चलना सभी लोगों को सहज जान पड़ा।

आपस में बात-चीत करते हुए तीन-चार मील रास्ता कट गया। रास्ते के दोनों ओर केवल विस्तृत हरियाली थी। मटर, सरसों और गेहूँ आदि पदार्थ बोए हुए थे, पर वे सब अभी तक या तो केवल फूले थे और या उनमें बालें पड़ने लगी थीं। आस-पास के झरनों से उन सब खेतों को सींचने का अच्छा सुभीता था। बीच में दो-एक गाँव भी दिखाई पड़े थे। कहीं कहीं दो-चार छोटे छोटे पहाड़ी वृक्ष "जहाँ कोई रूख नहीं, वहाँ रेंड़ ही रूख" की तरह खड़े हुए अपने अस्तित्व का प्रमाण दे रहे थे। रास्ते में बीच बीच में गेरुए रंग से रँगे हुए कुछ पत्थर के टुकड़े भी स्तूप के आकार में पड़े हुए दिखाई पड़े थे। उनमें से अधिकांश पत्थरों पर "ॐ मणिपद्मे हुं" मंत्र लिखा हुआ था। यद्यपि भाषा (लिपि) कुछ और ही तरह की थी, तो भी थोड़ा सा परिश्रम करने से ही पता चल जाता था कि वह क्या लिखा हुआ

है। इस प्रकार गाँव और खेत आदि पार करते हुए हम लोग आगे बढ़ रहे थे। कभी तो झरना और कभी लंबा-चौडा मैदान दिखाई पड़ता था। इस सारे रास्ते में कहीं आदमियों के रहने का कोई मकान या घर नहीं दिखाई पड़ा। यहाँ दिन के समय रास्ता चलने में भी मन में आतंक छाया रहता है। कहीं कहीं एक-दो चरवाहों को केवल भेड़ें हाँक कर ले जाते हुए भी देखा था। इस प्रकार छः सात मील आगे बढ़ने पर हम सब लोग खोजरनाथ के मंदिर के द्वार पर जा पहुँचे।

मंदिर के पुजारी एक लंबे, गोरे और सिर मुँड़ाए हुए लामा थे। उनका चेहरा गोल था, पहनने के कपड़े गेरुए थे और आँखों में कुछ कुछ लाली थी। इतने अधिक नवीन यात्रियों को एक साथ देखकर तीर्थ-क्षेत्रों के पंडों की तरह वे पहले ही दरवाजा बंद करके बीच में खड़े हो गए और हाथ फैला कर कुछ देने के लिए इशारा करना भी नहीं भूले। यद्यपि हम नौ आदमियों ने उनके हाथ में नौ तंके रख दिए थे, तो भी उन्होंने अनिच्छापूर्वक (मानों वे बिलकुल ही संतुष्ट नहीं हुए थे) ही किसी तरह द्वार खोला। मंदिर में सामने ही नाट्य-मंदिर की तरह एक छोटा आँगन था। उसमें लामाओं के बैठने के लिये एक ऊँचा आसन बना हुआ था। पास ही दीवार में काठ का एक बड़ा तख्त जड़ा हुआ था जिस पर पाली भाषा में लिखी हुई थाक की

थाक पुस्तकें सजी हुई थीं। सुना कि धर्म-पुस्तकों का यह एक अच्छा पुस्तकालय है। आँगन के पास कुछ अंदर की ओर एक वेदी पर तीन बड़ी बड़ी मूर्तियाँ शोभा पा रही थीं। पहले तो अँधेरे के कारण वे मूर्त्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दीं। पर सौभाग्य से उस समय श्रीमान् नित्यनारायण के हाथ में एक बड़ी टार्च लाइट या बिजली की दस्ती बत्ती थी। उसके जलते ही सब लोगों की दृष्टि एक साथ ही उन मूर्त्तियों की ओर गई। हम लोगों ने देखा कि वे मूर्त्तियाँ बहुत ही उत्तम धातु की बनी हुई हैं। यद्यपि वे आकार में बहुत बड़ी (प्रायः साढ़े चार हाथ ऊँची) थी, तो भी देखने में सुंदर थीं। बीच में विष्णु की मूर्ति थीं, और दाहिने बाएँ उपयुक्त रूप से लक्ष्मी और सरस्वती की प्रतिमाएँ विराज रही थीं जो अपेक्षाकृत कुछ छोटी थीं। उनके शरीर स्वर्णाभ थे और प्रत्येक मूर्त्ति के मस्तक पर अलंकारों से शोभित मुकुट थे। उन मूर्त्तियों को देखकर यही ध्यान हुआ कि इस बीसवीं शताब्दी का शिल्प, धातु और अलंकार आदि सभी चीजें उस युग के शिल्प, धातु और अलंकारों आदि के सामने बिलकुल परास्त हो रहे थे। उन तीनों प्रतिमाओं के रूप की ऐसी छटा थी कि मानों वे स्वयं ही देव रूप धारण करके अपने सौंदर्य का विकास कर रही हैं। हम लोगों ने बहुत से स्थानों की देव-मूर्त्तियाँ देखी हैं, पर धातु की बनी हुई ऐसी उत्कृष्ट मूर्त्तियाँ शायद पहले कभी

नहीं देखी थीं। हो सकता है कि उन मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा बौद्धयुग से पहले ही हुई हो। तीन शतदल पद्मों पर ये मूर्तियाँ विराज रही थीं और उन तीनों के नीचे श्रीहरि की अनंतशय्या थी। साथ ही पास में महाकाल आदि की भी मूर्त्तियाँ दिखाई पड़ीं। किसी समय तिब्बत देश में सनातन हिंदू धर्म का ही पूरा पूरा प्रचार था। बाद में जब बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ा, तब उस धर्म का रूपांतर हो गया होगा और बौद्ध मूर्तियों का विशेष प्रचार हुआ होगा। खोजरनाथ के मंदिर की इन मूर्त्तियों के संबंध में किसी किसी लेखक ने कुछ और ही प्रकार का मत प्रकट किया है। लेकिन इस विषय में हम उनके साथ सहमत नहीं हो सकते।

यहाँ साधारणतः धूप-दीप जलाकर ही पूजा, आरती और वंदना आदि की जाती है। लामा महाशय ने धूप-बत्ती देने के बदले में फिर भी यात्रियों से कुछ कुछ दक्षिणा पुजा ही ली।

जब तक टार्च लाइट की सहायता से हम लोग ध्यान-पूर्वक उन मूर्तियों को देखते रहे, तब तक पुजारी महाशय की तीव्र दृष्टि केवल उस बिजली की रोशनी पर ही जमी रही। जब हम लोगों ने मूर्तियों के संबंध में उनसे कुछ पूछा तो उसका हम लोगों को कोई उत्तर नहीं मिला। और विशेषतः संकेत या इशारे को छोड़कर उनकी भाषा समझने की शक्ति भी हम लोगों में से किसी में नहीं थी।

चे हतबुद्धि की तरह केवल वह विद्युत का प्रकाश ही देख रहे थे। अंत में उन्होंने हाथ बढ़ाकर वह टार्च लाइट माँग ली और दो-एक बार देखकर समझ लिया कि उसका बटन कहाँ है और कैसे दबाया जाता है; और तब वे हम लोगों को मंदिर के और और स्थान दिखलाने के लिये ले चले। हम लोग उनके पीछे पीछे चलते हुए, मंदिर के साथ सटी हुई अँधेरी गली और सीढ़ियाँ पार करके, एक और कोठरी में पहुँचे। वहाँ बुद्धदेव की बड़ी बड़ी पत्थर की मूर्त्तियों के सिवा और कोई चीज देखने योग्य नहीं थी। लामा महाशय हर एक मूर्त्ति दिखलाकर तंका वसूल करना चाहते थे, इसी लिये मंदिर के आस-पास के सभी अँधेरे कमरों में वे यात्रियों को ले जा रहे थे। पर यात्री उस अँधेरे में अधिक नहीं ठहरना चाहते थे और रोशनी में जाने के लिये घबरा रहे थे। हम लोगों ने इशारे से उन्हें जतलाया कि अब हम लोग और कुछ नहीं देखना चाहते और बड़ी कठिनता से मंदिर से बाहर निकलकर हम लोगों ने साँस लिया। लामा के सुदृढ़ हाथों से वह टार्च लाइट लौटाने में उस दिन श्रीमान् को बहुत जोर लगाना पड़ा था।

मंदिर के आस-पास पाँच-सात घरों की बस्ती भी देखने में आई। उनमें भिखारियों की ही संख्या अधिक थी। सबेरे यात्रा के समय सभी लोगों ने अखरोट, मिसरी, किशमिश आदि कुछ सूखे खाद्य पदार्थ अपने साथ ले लिए थे।

नदी के किनारे पहुँचकर वहीं सब लोगों ने कुछ जलपान किया और अनेक अनेक भिखारियों की विनयपूर्ण बातें सुनकर उन्हें कुछ दान दिया और तब सब लोग अपने अपने घोड़े पर सवार हुए।

देव-दर्शन कर चुकने के उपरांत बाहर आते आते प्रायः ढाई बज गए थे। संध्या के पहले ही सब लोगों को फिर लौटकर ग्यारह मील जाना था। अंधकार में निर्जन पहाड़ी रास्ते पर हमारे जैसे अनभ्यस्त घोड़-सवारों के लिये, तिस पर साथ में दो स्त्रियों के रहते हुए, पग पग पर विपत्ति की आशंका थी, इसी लिये सब लोग उद्विग्न थे और चुपचाप घोड़े बढ़ाए हुए चले आ रहे थे। उस समय एक कहावत याद आई—"जहाँ बाघ का भय, वहीं संध्या होती है।" यह कहावत झूठ नहीं है। जब हम लोग इस निर्जन रास्ते पर तीन-चार मील बढ़ आए, तब हम लोगों को सामने दो तिब्बती घोड़-सवार जाते हुए दिखाई पड़े। पहले हम लोगों ने उन्हें साधारण यात्री ही समझा था। जब हम लोग आपस में बात-चीत करते थे, तब बीच बीच में सब लोगों की नजर उन्हीं लोगों की ओर पड़ती थी। अचानक हम लोगों ने देखा कि घोड़े पर सवारी की अवस्था में ही वे आपस में एक दूसरे के गले में बाँहें डाले हुए चले जा रहे हैं। अब हम लोगों में से किसी को इस विषय में संदेह नहीं रह गया कि वे लोग शराब पीए हुए हैं।

श्रीमान् नित्यनारायण के जेब में रिवाल्वर थी। यद्यपि हम लोगों के लिये भय करने का कोई कारण नहीं था तो भी अभी बहुत कुछ रास्ता चलना बाकी था। इसी लिये हम लोग उनको पीछे छोड़कर उनके आगे निकल जाना चाहते थे। जब हम लोग उन शराबियों के पास पहुंचे, तब उन लोगों का भी ध्यान हम लोगों की ओर आकृष्ट हुआ। हम नौ यात्रियों में से सभी एक दूसरे से कुछ दूरी पर थे और सबसे आगे मेरा ही घोड़ा था। ऐसी अवस्था में जब कुछ चौड़ा रास्ता मिला, तब मैंने सोचा कि यहाँ बगल से आगे निकल जाना ठीक होगा। अतः मैंने ही सबसे पहले उनसे आगे निकलने की चेष्टा की। उस समय उनमें से एक ने बहुत ही रूखी और तीखी नजर से मेरी ओर देखा और अपनी किची-मिर्चीवाली भाषा में शायद मुझे कोई गाली ही दी और वह मेरे घोड़े के बराबर ही अपना घोड़ा भी ले चलने लगा। मैं कुछ और तेज़ी से आगे बढ़ा। लेकिन सामने नाले की तरह एक सँकरा ढालुआँ रास्ता आ पड़ा और मैं (अनाड़ी होने के कारण) घोड़े की लगाम ठीक तरह से अपने हाथ में न रख सका। शायद उस समय दूसरे यात्री पीछे से यह सब तमाशा ही देख रहे थे। मैंने देखा कि उन शराबियों की अवस्था कम नहीं है, दोनों ही प्रौढ़ हैं। लाल पानी (मदिरा) के प्रभाव से दोनों की ही आँखें लाल हैं और वे क्षण क्षण पर अपने घोड़े

पर गिरे पड़ते हैं। यद्यपि दोनों घोड़े काफी मजबूत थे, तो भी मुझे इस बात की कोई आशंका नहीं हुई कि वे अपने घोड़ों पर से नीचे गिर पड़ेंगे (यदि वे गिर पड़ते तो मैं निश्चिंत हो जाता)। मैंने अपने घोड़े की लगाम खींची। प्रसन्नता की बात यह हुई कि दोनों शराबियों ने नशे में अपने घोड़ों की लगामें ढोली ही रखीं और वे उसी अवस्था में नालेवाले रास्ते से पार हुए।

उसी समय मेरे साथ के और यात्री भी पास आ पहुंचे। कुछ दूर आगे जाने पर फिर उन्हीं दोनों शराबियों से सामना पड़ा। उस समय सब लोग मेरे पास थे, इसलिये मेरा साहस कुछ अधिक हो गया था, भय कुछ कुछ दूर हो गया था और उसके बदले में मन में कुछ क्रोध भी आ गया था। अबकी बार जब तिब्बती गाइड को आगे रखकर मैंने फिर उन दोनों शराबियों के पास से होकर आगे बढ़ना चाहा, तब उन शराबियों के साथ गाइड की कुछ बात-चीत हुई। इसके बाद ही (हम लोगों को बगल से निकालकर आगे ले जाना तो दूर रहा) मैंने देखा कि गाइड साहब खुद ही एक शराबी के पीछे उसी के घोड़े पर सवार हो गए। लेकिन घोड़ा दो दो सवारों को अपनी पीठ पर रखना पसंद नहीं करता था, इसलिये वह अपने पिछले दोनों पैरों पर खड़ा हो गया और उसके साथ ही हमारे गाइड साहब धड़ाम से नीचे गिर पड़े।

यह देखकर सब लोग हँस पड़े और मन ही मन यह समझकर संतुष्ट हुए कि हम लोगों का गाइड हमारी ओर न देखकर अपने स्वजातीय शराबी की बात मानकर क्यों उसके घोड़े पर उसके साथ ही सवार होने गया। ठीक उसी समय मैंने बुद्धिमानों की तरह उस शराबी के खड़े हुए घोड़ों को पीछे से कसकर चाबुक जमा दी।

चाबुक खाते ही वह तिब्बती घोड़ा अपने शराबी मालिक को लिए हुए बेतहाशा दौड़ा। उसे देखकर उसके साथी ने भी उसी के पीछे पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया। इस प्रकार उस यात्रा में हम सब लोग किसी तरह बचे। इसके बाद जब हम लोग प्रायः एक मील और आगे बढ़े, तब हमने उन दोनों शराबियों को एक झरने के किनारे सोए हुए पाया। उस समय दोनों घोड़े खुले हुए थे। यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि वह झरना पार करने के समय हम सभी लोग जल्दी जल्दी चले आ रहे थे।

संध्या होते होते जब हम लोग फिर उस गाँव और हरे-भरे खेतों के पास पहुँचे, उस समय निर्जनता का भय दूर हो गया था। हम लोग धीरे-धीरे चलते हुए फिर तकला कोट लौट आए। अपने तंबू में पहुँचने पर रंजन के कहने के अनुसार घोड़ों के आने-जाने का भाड़ा फी घोड़ा एक रुपए के हिसाब से और दोनों घोड़ेवालों को फी आदमी नौ आने के हिसाब से दे दिया।

उस दिन से मैंने अपने मन में प्रतिज्ञा की कि अब मैं कभी रंजन को छोड़कर और किसी दूसरे अनजान गाइड को साथ लेकर कहीं न जाऊँगा।

खाने-पीने की चीजों में से तकला कोट में दूध बहुत सुभीते से मिलता था। तिब्बती स्त्रियाँ हम लोगों के तंबू के पास नित्य ही आकर दूध दे जातीं और तंका ले जाती थीं। हाँ, जलाने की लकड़ियों का बहुत कष्ट था; और यह कष्ट बराबर पहले से ही होता आया था। हम लोग गार्बियांग के पास से अपने साथ काफी लकड़ी नहीं ले आए थे, इसलिये हम लोगों को बहुत दुर्दशा भोगनी पड़ी थी। खेतों में आस-पास मटर बोए हुए थे। यद्यपि अभी तक उनमें अच्छी तरह फलियाँ नहीं आई थीं, तो भी उनके अभाव में कुछ न कुछ शाक-तरकारी प्राप्त करने के लिये रंजन के द्वारा चेष्टा की थी, पर दुःख की बात है कि उसमें सफलता नहीं हुई। उसने कहा कि इन खेतों के मालिक लामा लोग हैं, खेतिहर नहीं हैं। हाय रे बंगाली! बंगाल छोड़ने पर आज रुचि-परिवर्तन के लिये शाक को भी कंगाल हैं।

इतने अधिक यात्रियों के दल में केवल हम लोगों के भंडार में ही अभी तक कुछ आलू मौजूद थे। और लोगों के पास आलू नहीं थे, इसलिये तरकारी न होने के कारण उन्हें बहुत कठिनता होती थी। विशेषतः निरामिषाशी पत्रना के राय महाशय और उत्तरपाड़ा के गंगाधर घोष के कष्ट

की तो सीमा ही नहीं थी। राय महाशय दिन-रात में केवल एक बार पूरियाँ खाते थे और तरकारी के नाम पर उन्हें केवल सेंधा नमक मिलता था। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि उनकी सहिष्णुता असीम थी और केवल यही भोजन करके उन्होंने पैदल कैलास की यात्रा की थी और वे स्वस्थ शरीर से अपने घर लौटे थे। स्वामीजी और एक डाक्टर को छोड़कर उनके दल में और सभी लोग मांसाहारी थे, अतः उनके वास्ते इस यात्रा में अरुचि का कोई कारण ही नहीं उपस्थित हुआ था। वे सभी जगह थोड़े दाम में अपना प्रिय खाद्य पदार्थ पा जाते थे। और खासकर इस विषय में उनका अलमोड़ेवाला रसोईदार पानसिंह बहुत होशियार था। एक दिन रंजन के परिचित किसी दूकानदार से बड़े कष्ट से कुछ काले रंग के सूखे मटर मिल गए थे और वही सब लोगों ने थोड़े थोड़े बाँट लिए थे। तेल में उन्हीं की घुँघनी बना ली गई थी और इस प्रकार यहाँ तीन-चार दिन यात्रियों को रुचि-परिवर्त्तन करने का कुछ सुयोग मिल गया था।

—:o:—

छठा पर्व

तकला कोट से मानस सरोवर

२ श्रावण को सबेरे नौ बजे भोजन आदि समाप्त करके सब लोगों ने यात्रा आरंभ की। यहाँ से कैलास केवल चार दिन का रास्ता है। पुराणों को देखने से जाना जाता है कि नंदी पुराण में जहाँ कैलास जाने के रास्तों का वर्णन है, वहाँ कहा गया है कि केदार से कुछ दूर जाने पर तीन रास्ते मिलते हैं। एक विष्णुपर (बदरिकाश्रम) को, दूसरा ब्रह्मपुर और तीसरा कैलास को गया है।

एकं विष्णुपुरं याति द्वितीयं ब्रह्मवेश्मनि।
कैलासमार्गं तृतीयं त्रिधा मार्गस्य लक्षणम्॥

—केदारकल्प, ४, ६४ श्लोक।

परंतु उस रास्ते से जाने में अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं, इसलिये आज-कल के युग में अधिकांश यात्री (यद्यपि ऐसे यात्री बहुत थोड़े होते हैं) उस रास्ते से कैलास जाने का साहस नहीं करते। उन दिनों कैलास-यात्रा का केवल रास्ता ही अलग नहीं था, बल्कि यात्रा का समय भी आज-कल से भिन्न था। कहा है—

आश्विने मासे संप्राप्ते गन्तव्यं शंकरालयम्।—४, १०।

जो हो, यदि इस बात का विचार किया जाय कि उस समय के कैलास के यात्रियों और कलियुग के कैलास के यात्रियों में कितना अधिक भेद है, तो भी उक्त ग्रंथ देखने से यह बात स्पष्ट रूप से जान पड़ती है कि कैलास की यात्रा के लिये चाहे जो पथ निर्दिष्ट हो, दोनों ही कालों में इस तीर्थ के दर्शन करना कोई सहज काम नहीं था—

बिना रुद्रप्रसादेन न लभन्ते महापथम् ।१—१८ ।

यात्रा के प्रसंग में इस बात का उल्लेख करना पुराण भी नहीं भूले। तो भी हम लोग तो यही समझते हैं कि तकला कोट से कैलास की ओर जानेवाला रास्ता उस युग के रास्ते की अपेक्षा अधिक सुगम है।

यहाँ से हम लोगों की यात्रा के वाहन हुए घोड़े और झब्बू। सवारी और बोझ लादने के लिये हम लोगों ने सब मिलाकर चार घोड़े और अठारह झब्बू लिए थे। यात्री थे सब मिलाकर तेइस। उनमें से कई पैदल ही चलते थे। उनके सिवा सात झब्बूवाले थे और एक गाइड रंजन था। यद्यपि हम लोगों के साथ दो आग्नेयास्त्र (एक रिवाल्वर और दूसरी बंदूक) थे, तो भी रंजन ने अपने एक परिचित व्यापारी से एक और बंदूक ले ली थी। इस प्रकार कुछ लोग पैदल, कुछ लोग झब्बुओं पर और कुछ लोग घोड़ों पर सवार होकर, बिलकुल सेना की तरह, तकला कोट से आगे बढ़े। उस समय इन नए यात्रियों को देखकर आस-पास

के प्रायः सभी तिब्बती अवाक् होकर देखते थे। यहाँ तकला कोट से कैलास जाने और वहाँ से फिर लौटकर तकला कोट आने का प्रत्येक झब्बू और प्रत्येक घोड़े का किराया बारह रुपया ठीक हुआ था। मानस-दर्शन और कैलास-परिक्रमा करके तकला कोट तक वापस आने में साधारणतः दस-बारह दिन लगते हैं।

यद्यपि मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी, तो भी सब लोगों का आग्रह देखकर सबसे पहले मैं ही डरता हुआ झब्बू पर सवार हुआ। ऐसा जान पड़ता था कि उस भद्दे जीव ने बुद्धिमानों के समान मेरे हृदय की व्यग्रता समझ ली थी; इसी लिये मेरे सवार होते ही उसने एक ऐसी दौड़ लगाई कि ऊँचे करारे के (जहाँ हम लोगों के तंबू गड़े थे) ठीक किनारे पर जा पहुँचा। उस समय मुझे यह चिंता हुई कि कहीं यह मुझे नीचे न गिरा दे; इसलिये सब लोगों के कहने के अनुसार मैंने उसकी नाक में पड़ी हुई रस्सी जोर से खींची। लेकिन झब्बू किसी तरह मानता ही न था। अंत में झब्बूवाले ने किसी तरह उसे पकड़ा और तब कहीं जाकर मेरा छुटकारा हुआ। मैंने सोचा कि यद्यपि भाड़ा दिया जा चुका है, तो भी मैं पैदल ही आगे चलूँगा। लेकिन स्वामीजी ने अनुग्रह करके अपने चार घोड़ों में से एक घोड़ा मुझे देकर कृतार्थ किया। श्रीमान् नित्यनारायण, दोनों स्त्रियाँ और मैं ये चार आदमी घोड़े पर सवार हुए। भूपसिंह,

उत्तरपाड़ावाले दल के दो आदमी और डाक्टरों के दल के कुछ लोग झब्बुओं पर ही सवार होकर चल रहे थे।

यहाँ मैं एक बात बतला देना चाहता हूं। वह यह कि हम लोगों ने अपनी कैलास-यात्रा के लिये जुंपान पूसो से अनुमति लेने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। हमारे व्यवस्थापकों ने शायद यह समझ लिया था कि तीर्थ-यात्रा के सिवा हम लोगों का और कोई उद्देश्य नहीं है।

बोझ ढोनेवाले झब्बुओं को करनाली नदी के पुल से पार कराने के लिये झब्बूवालों ने प्रायः आध घटे तक बहुत सिर पटका; पर बोझ लेकर झब्बू किसी तरह पुल पर जाना ही नहीं चाहते थे। इसलिये इस पार उनकी पीठ पर से बोझ उतार लिया गया और बहुत कठिनता से उन्हें पुल के उस पार ले जाकर फिर उन पर बोझ लादा गया। अब हम लोग करनाली नदी को बाईं ओर रखकर आगे बढ़े। पहले हम लोगों को कई छोटे छोटे गाँव और उनके आस-पास जौ तथा मटर के कुछ खेत मिले। इसके बाद एक लंबा-चौड़ा मैदान सामने आया। वहाँ का दृश्य कुछ और ही तरह का था। बिलकुल शस्यहीन और सूखी जमीन थी। उस जमीन पर केवल टूटे हुए पत्थर ही अस्थि-कंकाल की तरह बिछे हुए थे। बीच में कहीं कहीं एक तरह के कँटीले तृणों के झुरमुट भी दिखाई पड़ते थे। वे सब तृण बहुत ही कड़े थे और हाथ लगाते ही सूई की तरह

चुभते थे। इस मार्ग में झब्बुओं का केवल यही आहार था। इस मैदान के बीच बीच में नंगे पहाड़ भी खड़े थे और ऊँचे पहाड़ों की तरह उनके अंग आपस में एक दूसरे से विभक्त थे। जगह जगह पर यात्रियों को मार्ग दिखलाने के लिये तिब्बतियों के गेरुए रंग से रँगे हुए पत्थरों के टुकड़े रखे हुए थे। चारों ओर जिधर दृष्टि जाती थी, जस्कर पर्वत-माला (Zadaskar Range) श्रेणीबद्ध होकर खड़ी थी। वे पर्वत ठीक मौनी साधकों के दल के समान जान पड़ते थे। उनकी नंगी चोटियाँ बरफ से ढकी हुई थीं और उज्ज्वल विभूति की तरह प्रकाशमान थीं। इसी प्रकार के विचित्र दृश्य देखते हुए साढ़े चार बजे के लगभग हम लोग सात मील दूर रुंगांग् नामक स्थान पर जा पहुँचे। वहाँ कोई गाँव या बस्ती नहीं थी, केवल एक बड़ा झरना था। उसी के किनारे एक जगह रहकर हम लोगों ने रात बिताना निश्चित किया। बोझ ढोनेवाले झब्बुओं के साथ साथ और सब लोग भी एक एक करके वहाँ आ पहुँचे। रात को भोजन बनाने के लिये कहीं लकड़ी तो मिल ही नहीं सकती थी, इसलिये एक स्टोव ही हम लोगों का सहारा रह गया। हम लोग ज्यों ज्यों आगे बढ़ते थे, त्यों त्यों अधिक जाड़ा जान पड़ता था।

दूसरे दिन सवेरे नौ बजे के अंदर ही भोजन आदि कृत्य समाप्त कर लिए गए। सब झब्बू बोझ और सवारियाँ

लेकर यहाँ के चौड़े झरने को पार कर गए। इन सब झरनों का स्रोत तो बहुत प्रबल होता है, पर इनकी गहराई बहुत ही कम होती है। झरना पार करने पर फिर वही लंबा-चौड़ा मैदान मिला। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, वहाँ तक वही तृण-विहीन अस्थि-कंकाल के समान दृश्य दिखाई पड़ता था। उस समय वह दृश्य देखकर यही जान पड़ता था कि भोग तथा ऐश्वर्य से विहीन कैलासपति के चरणों के नीचे पृथ्वी देवी भी मानों अपनी समस्त संपद्-गरिमा का परित्याग कर बैठी हैं।

प्रायः पाँच मील चलने के उपरांत हम लोग बल्डके नामक स्थान में पहुँचे। इस स्थान की ऊँचाई समुद्र-तल से पंद्रह हजार फुट है। यहाँ भी एक झरना बह रहा था। रंजन के कहने पर सब लोगों ने अँजुली भर भरकर उस झरने का पानी पी लिया। उस समय उसकी बातों से यही मालूम हुआ था कि अब आगे और कोई झरना नहीं मिलेगा। लेकिन जब वहाँ से प्रायः दो मील आगे बढ़ने पर एक और झरना मिला, तब रंजन को यह प्रकट करने में जरा भी संकोच नहीं हुआ कि यह झरना बिलकुल नया निकला है।

अब हम लोगों को दक्षिण की ओर फिर वही तुषार-शोभित गुरेला मांधाता पर्वत दिखाई दिया। इस प्रकार प्रायः चार मील और आगे जाने पर देखा कि सामने एक पहाड़ की चढ़ाई है। इस चढ़ाई का रास्ता खूब चौड़ा

था। जिस समय हम लोगों के बहुत से झब्बू और घोड़े एक साथ ही इस चढ़ाई पर चढ़ने लगे, उस समय सब लोगों को यही जान पड़ता था कि आगे चलकर फिर कुछ नीची भूमि दिखाई पड़ेगी। हम लोगों का यह अनुमान ठीक ही निकला। यह चढ़ाई समाप्त होने पर सामने कुछ बाएँ कोने पर दूर से रावण ह्रद का कुछ नीला जल ही सबसे पहले दिखाई दिया।

गार्वियांग से यहाँ तक हम लोग बराबर केवल नंगे पहाड़ और सफेद बरफ ही देखते चले आ रहे थे। उसके बाद जब हम लोगों ने तिब्बत में प्रवेश किया, तब इस दृश्य के साथ बहुत कड़ी धूप भी मिल गई जिसने हम लोगों की आँखों को एक प्रकार से निस्तेज सा कर दिया था। ऐसी अवस्था में बहुत दिनों के बाद जब अचानक नीला स्वच्छ जल दिखाई पड़ा, तब सभी लोग जल्दी जल्दी उसके तट पर पहुँचने के लिये व्यग्र हुए। रंजन ने दूर से हम लोगों को दिखलाया कि वह सामने ह्रद के उस पार कैलास है। उसकी वह अपूर्व बरफीली चोटी कुछ अस्पष्ट रूप से (उस समय वह बहुत कुछ मेघों से आवृत थी) दिखाई पड़ी। सब लोग कुछ देर तक तृषित नेत्रों से वह दृश्य देखते रहे और तब वहाँ से आगे बढ़े। चार बजे के लगभग हम लोग ह्रद के बहुत कुछ पास पहुँच गए और उसका दृश्य स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगा। वह दृश्य कैसा सुंदर और स्निग्ध था!

हे चित्रकार! तुम्हारा रूप हम लोगों ने कभी आँखों से नहीं देखा। लेकिन फिर भी हम कह सकते हैं कि इस चित्रभूमि ने अवश्य ही तुम्हारा प्रकृति चित्र उपस्थित किया है। अथवा ऐसा जान पड़ता है कि पृथ्वी के अनंत चित्र वैचित्र्य के बीच में जब तुम यह चित्र अंकित करने लगे थे, तब तुम इसे देखकर स्वयं इतने अधिक मोहित हो गए थे कि अपना अस्तित्व पूरी तरह से इसी के बीच में छिपाने के लिये विवश हुए थे। यदि यह बात नहीं थी तो क्या कारण है कि उस समय वह दृश्य देखकर हम सभी लोगों की टकटकी लग गई थी और एक क्षण के लिये भी पलक नहीं झपकी थी? नीले आकाश से भी बढ़कर गहरी, नीली, स्वच्छ और विलक्षण प्रशस्त जल राशि टेढ़ी-मेढ़ी होकर किस प्रकार अनंत की गोद में मिली हुई थी! हवा चलने के कारण उसमें जो लहरें उठती थीं, उन्हें देखकर यही जान पड़ता था कि यह चरम सीमा का सौंदर्य आपसे आप उद्वेलित हो रहा है। इस नीले जल के ऊपर विभिन्न रंगों के दो छोटे छोटे पहाड़ द्वीप की तरह उठते हुए उसके बीच में चले गए थे। ऐसा जान पड़ता था कि किसी ने विचित्र रंगों से भरे हुए दो गलीचे बिछा दिए हैं। उनमें से एक पहाड़ बहुत कुछ सिंदूर के रंग से रँगा हुआ था और दूसरा बाघ के चमड़े की तरह था। यदि मेरा हृदय भी इसी ह्रद के समान निर्मल होता तो मैं अवश्य ही समझ

सकता कि नीलकांत मणि के समान चमकते हुए इस ह्रद में इस प्रकार के दो विचित्र पर्वतासन प्रकृति के इस सुरम्य मंदिर में किसने और किसके लिये बिछा रखे हैं। उस समय क्षण भर के लिये मेरे अभिभूत मन में यह विचार उत्पन्न हुआ था कि इस व्याघ्र-चर्म की तरह दिखाई पड़नेवाले आसन पर केवल व्याघ्रकृत्तिवसानं गौरीपति महादेव और उसके पास ही सिंदूर वर्ण से रंजित आसन पर उन्हीं की अंकलक्ष्मी सिंदूर-वर्ण-प्रभा गौरी देवी ही विराजती हैं। उन्हें छोड़कर इस लीला-क्षेत्र कैलास के पास ऐसे मधुर सौंदर्य का उपभोग करने की शक्ति और किसमें हो सकती है! रंजन ने हम लोगों को हिंदी में इस ह्रद का नाम "राक्षस ताल" बतलाया। स्वामी अनुभवानंदजी ने कहा कि इस ह्रद के संबंध में यह प्रवाद है कि जिस समय दुष्टमति रावण कुछ क्रुद्ध होकर कैलास पर्वत को उठाने के लिये आगे बढ़ा था, उस समय उसे जो पसीना निकला था, उसी से इस ह्रद की सृष्टि हुई थी। इस संबंध में वाल्मीकि-रामायण में रावण ने कहा है—

> पुष्पकस्य गतिश्छिन्ना यत्कृते मम गच्छतः।
> तमिमं शैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते॥

—उत्तरकांड, १६वाँ सर्ग

जिस समय कुबेर को जीतकर रावण पुष्पक विमान पर चढ़ा चला जा रहा था, उस समय यहीं उसकी गति रुकी

थी। उस समय रावण ने अपने सामने नंदीश्वर को देखकर उससे इस गति रुकने का कारण पूछा। उस समय उसने रावण से कहा था—"रावण, तुम अपना यह विचार छोड़ दो। इस समय इस पर्वत पर देवादिदेव शंकर क्रीड़ा कर रहे हैं। इस समय इस पर जाने का किसी को अधिकार नहीं है।" यह सुनकर दशमुख रावण बहुत क्रुद्ध हुआ और वह अपनी बीसों भुजाओं से यह पर्वत उठाने के लिये आगे बढ़ा।

एवमुक्त्वा ततो राम, भुजान् विक्षिप्य पर्व्वते।
तोलयामास तं शीघ्रं स शैलः समकम्पत॥

यह देखकर प्रथम लोग डर गए। पार्वती देवी ने भी भय से महादेव का आलिंगन कर लिया। इस पर महादेवजी ने अपने पैर के अँगूठे से इस पर्वत को दबाया जिससे रावण को भार के कारण बहुत कष्ट होने लगा।

ततो राम महादेवो देवानां प्रवरो हरः।
पादांगुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया।
पीडितस्तु ततस्तस्य शैलस्तम्भोपमाभुजा॥

यदि ऐसे समय बहुत अधिक थक जाने के कारण रावण के शरीर से पसीना निकल आया हो तो उस युग में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं हो सकती। पर यदि रामायण में इसके आगे के कुछ और श्लोक पढ़े जायँ तो उनसे पता चलता है कि ऐसी अवस्था में रावण वहाँ एक हजार बरस तक रोता रहा।

संवत्सरसहस्त्रन्तु रुदतो रक्षसो गतम् ।

इसके बाद रावण वहीं रहकर तपस्या करने लगा।

रावण ह्रद के विस्तार और स्वच्छता को देखते हुए यदि यह मान लिया जाय कि रामायण में जो कुछ कहा गया है, वह ठीक है तो मैं समझता हूँ कि यह भी माना जा सकता है कि यदि रावण के पसीने से ऐसे निर्मल ह्रद की सृष्टि न हुई हो तो इसके एक हजार वर्ष तक रोने के फल-स्वरूप भी इसकी सृष्टि हो सकती है। इस प्रकार का विचार आश्चर्य-जनक और अस्वाभाविक नहीं हो सकता। अवश्य ही रामायण में रावण ह्रद का कोई उल्लेख नहीं है।

जो हो; ऐसे भीषण और अद्भुत ह्रद के पास पहुँचकर हम लोगों ने यही निश्चय किया कि हम लोग नीचे उतरकर इसके तट पर ही तंबू खड़े करें। वहाँ से उसका तट बहुत ही पास जान पड़ा। परंतु घोड़े के साथ उसके किनारे तक पहुँचने में प्रायः आध घंटे का समय लगा। कोई साढ़े पाँच बजे के लगभग हम लोग उस ह्रद के दक्षिण-पूर्ववाले कोने पर पहुँचे। बल्डक से यह ह्रद प्रायः छः मील दूर होगा। यहाँ आस-पास कोई झरना नहीं था, इसलिये भोजन के उप-रांत सब लोगों ने इसी ह्रद का जल पीया था। जल ठंढा और हलका था।

उस दिन शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी थी। संध्या के कुछ बाद ही नीले आकाश में पूर्ण चंद्रमा के दर्शन हुए। चंद्रमा

की स्निग्ध किरणें इस स्निग्ध ह्रद के जल में मिल कर उसके साथ झिलमिलाती हुई खेलने लगीं। वह दृश्य भी देखने ही योग्य था। यद्यपि वहाँ बहुत जाड़ा पड़ता था, तो भी हम लोग अपने अपने तंबू से निकलकर रात को प्रायः साढ़े दस बजे तक टक लगाए वह अपूर्व शोभा देखते रहे। चंद्रमा के प्रकाश में उस जल में दो चार चंचल सारस पक्षी (हमारे ही देश की तरह) इधर उधर उड़ते हुए छोटी छोटी मछलियों का शिकार कर रहे थे। इधर गुरेला मांधाता का तुषार-शोभित विस्तृत शरीर ज्योत्स्ना के प्रकाश में सफेद रंग की फेन-राशि के समान ह्रद की गोद में पड़ा हुआ था। मानों मांधाता की अनंतकाल-व्यापिनी तपस्या का अभी तक अंत नहीं हुआ था। स्वप्नपुरी के अमृत के झरने के समान हम लोगों ने उस दिन उसके तट पर नीली धारा को टकराते हुए देखा था। यात्रियों में से कोई कोई धीमे स्वर में कुछ गुनगुनाने लगे। कुछ लोग अधिक जाड़ा लगने के कारण उस लंबे तट पर बालकों की तरह दौड़ लगाने लगे। सब लोग समझते थे कि तंबू के अंदर जाते ही यह दृश्य सदा के लिये हमारी आँखों के सामने से हट जायगा। सभी लोग शरीर में स्वेटर, सिरपर टोपी, गले में कंफर्टर, हाथ में दस्ताने और पैर में मोजे समेत जूते पहने हुए थे। मतलब यह कि सिर से पैर तक सभी अंग ढके हुए थे। केवल दोनों आँखें पागलों के समान उस सुरम्य ह्रद के चारों ओर घूम घूम कर

देखती थीं, पर वे भी तृप्त नहीं हो सकीं। अंत में थक-कर सभी लोग अपने अपने तंबू में लौट आने के लिये विवश हुए।

नित्य-निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर झब्बूवाले झब्बुओं को चरने-खाने के लिये आस-पास में छोड़ दिया करते थे। दूसरे दिन यात्रा आरंभ करने से पहले वे फिर पकड़ लिये जाते थे। यहाँ पहुँचने पर भी रोज की तरह उन्हें इसी प्रकार छोड़ दिया गया था। रात के पिछले पहर में एक बार पानी भी बरस गया। इससे जाड़ा बहुत बढ़ गया और तड़के ही सब लोगों की नींद खुल गई।

आज हम लोग मानस सरोवर पहुँचने को थे। पहले दिन सब लोगों ने यही संकल्प कर लिया था कि हम लोग शुद्ध-चित्त होकर बिना कुछ खाए पीए वहाँ पहुँचेंगे और वहाँ स्नान आदि करने के उपरांत भोजन की व्यवस्था करेंगे। इसी लिए सब लोग हाथ-मुँह धो कर झब्बुओं की पीठ पर बोझ लादने की फिक्र करने लगे। लेकिन संयोग से उस दिन झब्बू कहीं आस-पास नहीं मिले। दो-तीन झब्बूवाले उन्हें ढूँढ़ने के लिये दो-तीन ओर गए। धीरे धीरे दिन चढ़ने लगा। जब तक वहाँ से सब सामान रवाना न हो जाता तब तक हम लोग भी वहाँ से आगे नहीं बढ़ सकते थे। मानस सरोवर यहाँ से केवल तीन मील का रास्ता था। हम लोग समझते थे कि यदि दस बजे तक भी झब्बू

मिल जायँगे तो हम लोग यहाँ से रवाना होकर एक बजे तक वहाँ पहुँच जायँगे। इसी लिये सब लोग झब्बुओं के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी बीच में शंकर स्वामीजी आदि कई आदमी रावण ह्रद में उतरकर स्नान करके निश्चिंत हो गए। उस ह्रद का जल ऊपर से देखने में जितना स्वच्छ था, उसका तल-देश भी कीचड़ आदि से उतना ही साफ था। उसमें केवल रंग-विरंगे पत्थरों के टुकड़े ही थे। बहुत देर बाद प्रायः साढ़े दस बजे दूरबीन से देखा गया कि गुरेला मांधाता पर से झब्बुओं का दल उतरा चला आ रहा है। उस समय सब लोगों की जान में जान आई।

अब हम लोग रावण ह्रद को बाईं ओर छोड़ उसके किनारे किनारे पूर्व को ओर बढ़ने लगे। एक के बाद एक इस प्रकार प्रायः तीन-चार चढ़ाइयाँ मिलीं। वे सब चढ़ाइयाँ समाप्त होने पर सामने मानस सरोवर की अनंत विस्तृत जल-राशि दिखाई पड़ी। उस समय कोई साढ़े बारह बजे होंगे। सबकी समझ में आ गया कि इस ह्रद का किनारा इस ऊँचाई से कितने नीचे है। मैं घोड़े को बढ़ाता हुआ जल्दी जल्दी उतर गया। प्रायः डेढ़ बजे के करीब हम लोग ह्रद के किनारे पर पहुँच गए।

ज्यों ज्यों दिन चढ़ता जाता था, त्यों त्यों हवा हू हू करती हुई और भी तेजी के साथ बहती थी। कुछ अँगरेज यात्रियों ने भ्रमण करते हुए यहाँ पहुँचकर इस स्थान को Play-

ground of Storms अर्थात् आँधियों का लीला-क्षेत्र कहा है। यह बात है भी बहुत ठीक। तेज हवा के साथ साथ समुद्र के समान उस महान् ह्रद के स्वच्छ नीले जल में एक पर एक उठती हुई लहरें अनंत का स्वर सुनाती हैं। उस स्वर में केवल मिष्टता और श्रुति-मधुरता है, समुद्र की तरह कठोर गर्जन नहीं है। वह मानों अपने लहरें लेते हुए 'हृदय में से भारत की समस्त तीर्थ-सम्पदा एकत्र करके पापी-तापी यात्रियों को कोमल स्वर से बुलाकर कह रहा है—"हे सुदूर के यात्रियो, यदि तुम लोग संसार की भोगासक्ति का परित्याग करके ऐसे दुर्गम रास्तों से होते हुए हमारे तट तक पहुँचने में समर्थ हुए हो, तब आओ, एक बार मेरे इस चिर-निर्मल पुण्य सलिल में उतर आओ। मुझमें स्नान करना तो दूर रहा, मेरा स्पर्श करते ही तुम्हारा शरीर और मन दोनों ही पवित्र हो जायँगे। हे मार्ग चलने से थके हुए यात्रियो, तुम्हारी केवल मार्ग की थकावट ही नहीं दूर होगी, बल्कि रोग, शोक, ताप आदि मन के जो कुछ विकार और क्लेश होंगे, वे सब एक पल में ही दूर हो जायँगे।" न जाने कितने युग-युगांतरों से मानस का यह प्रवाह एक समान चला आ रहा है। इस जल से न जाने कितने नदों और कितनी नदियों की उत्पत्ति हुई है। इसी जल के प्रभाव से उन सब नदियों के आस-पास की भूमि तक तीर्थ-क्षेत्रों में परिणत हो गई है।

यक्ष, गंधर्व, किन्नर, कुबेर आदि जिसमें नित्य स्नान करते हैं, ब्रह्मा के बनाए हुए उसी मानस सरोवर में उस शुभ दिन (४ श्रावण, सं० १३३६ फसली) हम मनुष्य लोग अभिभूत चित्त से स्नान करके उसके तट पर खड़े हुए। उसका जल बहुत ही ठंढा था। दो-तीन गोते लगाते ही शरीर सुन्न होने लगा था। संध्या-वंदन आदि समाप्त करके मैं पागलों की तरह चारों ओर देखने लगा। केवल पहाड़ दिखाई पड़ते थे और उन पहाड़ों पर तुषार का अपूर्व विस्तार था। प्रचंड मार्त्तंड की किरणें अनंत काल में भी उस तुषार को गलाकर उसका अंत नहीं कर सकतीं। एक एक करके उस दिन सभी लोगों ने उस ह्रद में स्नान किया। उसके किनारों पर कहीं पेड़-पौधों का नाम-निशान तक नहीं था। लेकिन फिर भी आश्चर्य की एक यह बात थी कि कहीं कहीं आपसे आप तिल के कुछ पौधे उगे हुए थे। उस समय उन पौधों में यथेष्ट तिल थे। न जाने कब किस ऋषि ने इस सिद्ध-सेवित मानस सरोवर में तर्पण करने के लिये आकर इसके तट पर तिल छिड़क दिए थे जिसके फल से ये पौधे अब भी उसकी साक्षी दे रहे हैं। हम लोगों ने उन्हीं पौधों से ताजे तिल इकट्ठे किए और मानस सरोवर के जल से अपने पितरों का तर्पण किया। इसके बाद हम लोगों में से किसी ने सत्तू, किसी ने अखरोट, किशमिश और मिस्री और किसी ने घी, आटा तथा चीनी मिलाकर खाया और वह दिन बिताया।

पुण्यभूमि भारत में तीर्थक्षेत्रों का कोई अभाव नहीं है। सुदूरवर्ती वदरिकाश्रम और केदारनाथ से आरंभ करके प्रायः प्रत्येक तीर्थ में प्रति वर्ष हजारों यात्री स्वच्छंद रूप से यात्रा करके लौट आते हैं। परंतु हिमालय की चोटी पर सुशोभित रहनेवाले दुर्गम कैलास या मानस तीर्थ के दर्शन करना कोई सहज काम नहीं है। इसी लिये अन्यान्य तीर्थों की तुलना में इस तीर्थ में यात्रियों की संख्या बहुत ही कम होती है। इसी लिये अधिकांश लोग इसके संबंध में केवल कल्पनाएँ ही करके रह जाते हैं। कोई इस विषय की छान-बीन करने की आवश्यकता नहीं समझता कि वस्तुतः इसका अस्तित्व कहाँ है और हिंदू धर्मशास्त्रों में इसका कितना उल्लेख मिलता है। सबसे पहले वाल्मीकि-रामायण में विश्वामित्र ऋषि रामचंद्र से कहते हैं—

> कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं परम्।
> ब्रह्मणा नरशार्दूल ! तेनेदं मानसं सरः॥
>
> —बालकांड, २४ वाँ सर्ग

अर्थात्—हे राम, ब्रह्मा के मानस से कैलास पर्वत पर जिस सरोवर की उत्पत्ति हुई है, वही मानस सरोवर के नाम से प्रसिद्ध है। मानस सरोवर की उत्पत्ति के संबंध में रामायण में बस इतना ही कहा गया है। महाभारत देखने से पता चलता है कि वदरिकाश्रम से द्रौपदी के प्रार्थनानुसार सौगंधिक (सोने के रंग का विशेष सुगंधि-युक्त) पद्म हरण

कर लाने के लिये भीमसेन ने कुबेर के घर के पास जिस प्राकृतिक सरोवर में अवगाहन आदि किया था, उसे मानस सरोवर के सिवा और कोई सरोवर समझने का कोई कारण नहीं है।

कैलासशिखराभ्यासे ददर्श शुभकाननाम्।
कुबेरभवनाभ्यासे जातां पर्वतनिर्झरे॥

... ...

तत्रामृतरसं शीतं लघु कुन्तीसुतः शुभम्।
ददर्श विमलं तोयं पिबंश्च बहु पाण्डवः॥

—वनपर्व, १५३वाँ अध्याय

अन्यान्य शास्त्र-ग्रंथों को देखने से भी यही पता चलता है कि कुबेर के घर के पास जो सरोवर है, वही मानस सरोवर है।

हंसयोर्दम्पती पूर्वं मानसाख्ये सरोवरे।
स्थितौ परस्परं प्रेम्णा विहरन्तौ निरन्तरम्॥
कुबेरस्तत्र वै नित्यं विहर्त्तुं याति साबलः।
चिरं विहृत्य संस्नाय वटमूले समाश्रयत्॥

—केदारमाहात्म्य, २६वाँ अध्याय

अर्थात् मानस नामक सरोवर में हंस-दंपति परस्पर सुख और प्रेम से निरंतर विहार करते हैं और वहाँ नित्य कुबेर स्त्रियों के साथ आकर स्नान और विहार आदि करके वट के नीचे आश्रय लेते हैं।

अवश्य ही काल के प्रवाह में पड़कर अब वह वट वृक्ष नष्ट हो गया है।

वायुपुराण और मत्स्यपुराण में तो यहाँ तक बतला दिया गया है कि मानस तीर्थ किस ओर है।

कैलासाद्दक्षिणे पार्श्वे क्रूरसत्त्वौषधं गिरिम्।
वृत्रकायात् किलोत्पन्नमञ्जनं त्रिककुद् प्रति॥
सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान् वैद्युतो गिरिः।
तस्य पादे सरः पुण्यं मानसं सिद्धसेवितम्॥

—वायुपुराण, ४७वाँ अध्याय और
मत्स्यपुराण, १२१वाँ अध्याय

अर्थात् यह मानस सरोवर कैलास के दक्षिण में वैद्युत नामक पर्वत के नीचे अवस्थित है। वास्तविक कैलास पर्वत के ठीक दक्षिण में एक और पर्वत है जिसके नीचे यह मानस सरोवर है और उसी के तट पर आज हम लोगों के तंबू लगे हुए हैं। इसी लिये मानस सरोवर के संबंध में सत्य या मिथ्या होने का संदेह करना प्रत्यक्षदर्शी के लिये किसी प्रकार संभव नहीं है। महाकवि कालिदास ने भी अपने मेघदूत नामक काव्य में जो वर्णन किया है, उससे भी यही पता चलता है कि कुबेरालय के पास कैलास और मानस सरोवर दोनों हैं। अवश्य ही हम लोगों को यह देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता कि मानस सरोवर के उस पार कुबेरालय कहाँ छिपा हुआ है। यदि हम लोगों

को ऐसा सौभाग्य प्राप्त होता तो उसके वर्णन के साथ उसका मिलान करके हम सब कुछ देख सकते। "हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्य" अर्थात् स्वर्णपद्मों के आकर मानस-सलिल में स्वर्णपद्म देख सकते। फिर कुछ लोग मानस के नीले जल में नील पद्म ढूँढ़ते हैं। उस दशा में वे नील पद्म भी अप्राप्य न होते। इस अवसर पर एक बात अवश्य कही जा सकती है; और वह यह कि यद्यपि काशी स्वर्णपुरी कही गई है, तो भी कितने आदमी ऐसे हैं जिन्होंने उसे स्वर्ण के समान उज्ज्वल देखा है? यह मानस सरोवर और कैलास केवल हम लोगों का ही प्राचीन तीर्थ नहीं है, तिब्बती लोग भी आवहमान काल से इसे परम तीर्थक्षेत्र मानते चले आए हैं। मानस सरोवर को वे लोग सो मा वांग (Tso-ma-vang) कहते हैं। इस प्रशान्त ह्रद के चारों ओर तिब्बती धर्मगुरुओं अर्थात लामाओं के सब मिलाकर आठ मठ (Monasteries) हैं। यांगू (Yangoo), टोगू (Tugu), गोसल (Gossul), चिऊ (Chiu) आदि मठ इन्हीं आठ मठों के अंतर्गत हैं। इनमें से टोगू मठ पर जो शिलालेख खुदा हुआ है, उसके अनुवाद (स्वेन हेडिन के किए हुए अनुवाद) के कुछ अंश का आशय हम यहाँ देते हैं जिसे देखकर पाठक समझ लेंगे कि तिब्बती लोग इस ह्रद को कितना पवित्र तीर्थ मानते हैं और इस पर कितनी अधिक श्रद्धा रखते हैं। उस शिलालेख में लिखा है —

"सो मा वांग (मानस) संसार के सभी तीर्थों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और पवित्र है।

"इस ह्रद के केंद्रस्थल में मनुष्य की आकृति में भगवान् एक हजार लामाओं से घिरे हुए विराज रहे हैं।

"सब लामा लोग एक स्वर से उनके भजन गाते हैं।

"इस ह्रद से करनाली, ब्रह्मपुत्र, सिंधु और शतद्रु ये चार बड़ी नदियाँ और चार छोटी नदियाँ निकलती हैं।

"बड़ी नदियों में से पहली नदी का जल किंचित उष्ण (warm) है, दूसरी नदी का जल कुछ ठंडा (cool) है, तीसरी नदी का जल गरम (hot) है और चौथी नदी का जल शीतल (cold) है।

"यदि इस ह्रद में कोई एक बार भी स्नान कर ले तो उसके तथा उसके पितरों के समस्त पाप और मलिनता दूर हो जाती है और वे मुक्त होकर सद्गति प्राप्त करते हैं।" इत्यादि

इस प्रशान्त नीलाभ ह्रद की परिधि के संबंध में भिन्न भिन्न मुनियों के अनेक मत हैं। पर इतना अवश्य है कि तिब्बती लोग पाँच-छः दिन में इस ह्रद की परिक्रमा समाप्त कर लेते हैं। परिक्रमा का मार्ग चलना सब जगह सहज नहीं है। कोई कोई स्थान रस्सी की सहायता से भी पार करना पड़ता है। ऐसी अवस्था में हम लोगों का अनुमान है कि इसकी परिधि साठ मील से अधिक या कम न होगी।

संसार में जहाँ कहीं सौंदर्य है, वहाँ मधुरता भी अवश्य है। उस जगह सभी लोगों की दृष्टि सदा आकृष्ट हुआ करती है। इसी लिये उन जगहों के संबंध में पग पग पर इस प्रकार का वर्णन मिलता है कि वहाँ देवताओं का अस्तित्व या निवास है। सौंदर्य को इस स्थान पर केवल भारतवासी और तिब्बती ही मुग्ध नहीं हैं, बल्कि दूसरे देश के निवासी युरोपियन यात्री स्वेन हेडिन ने भी इस पर मुग्ध होकर इस स्थान पर इसके संबंध में लिखा है—

"I could live and die on this heavenly lake without ever growing weary of the wonderful spectacle always presenting fresh surprises."

अर्थात्—"इसके अद्भुत दृश्य मनुष्य की दृष्टि के समक्ष सदा नए नए कुतूहल तथा आश्चर्य उपस्थित करते हैं और उन्हें देखकर मनुष्य का मन कभी नहीं भरता। मैं तो इस स्वर्गीय ह्रद के इन अद्भुत दृश्यों को देखने में ही अपना सारा जीवन बिना ऊबे बिता सकता हूँ और इसी में अपने प्राण तक दे सकता हूँ।"

उन्होंने अपने जीवन की कुछ भी परवाह न करके कनवास की बनी हुई एक नाव में बैठकर प्रायः एक मास से अधिक समय तक इस प्रशान्त ह्रद के चारों ओर घूम घूमकर अनुसंधान किया है और इस बात का पता लगाया है कि

शतद्रु, सिंधु और ब्रह्मपुत्र के उद्गम-स्थान कहाँ हैं, तिब्बती लामाओं की कितनी गुफाएँ और कहाँ कहाँ हैं और किस जगह इस ह्रद की कितनी गहराई है, इत्यादि। उन्होंने इस ह्रद के संबंध में बहुत ही मर्मस्पर्शिनी बातें कही हैं। इस अवसर पर हम उनके हृदय से निकली हुई दो-एक बातें पाठकों को बतलाए बिना नहीं रह सकते। एक अवसर पर उन्होंने लिखा है—

Wonderful, attractive, enchanting lake! Theme of story and legend, playground of storms and changes of colour, apple of the eye of gods and men, goal of weary, yearning pilgrims, holiest of the holiest of all the lakes of the world, art thou, Tsomavang, lake of all lakes. Navel of old Asia, where four of the most famous rivers of the world, the Brahmaputra, the Indus, the Sutlej; and the Ganges, rise among gigantic peaks, surrounded by a world of mountains, among which is Kailas, the most famous in the world."

—Trans-Himalayas, Vol. II., page 151.

अर्थात—"अद्भुत, आकर्षक तथा मनोमुग्धकारी ह्रद! हे सो मा वांग! तू अनेक कथानकों तथा परंपरागत प्रवादों

का विषय है, तू आँधियों और वर्ण-परिवर्तनों का लीला-क्षेत्र है, तू देवताओं तथा मनुष्यों के नेत्रों का तारा है, तू श्रांत तथा शांति के लिये उत्सुक यात्रियों का उद्दिष्ट स्थान है, तू संसार के समस्त पवित्र ह्रदों से कहीं अधिक पवित्र है, तू समस्त ह्रदों का अधिराज है। तू प्राचीन एशिया की नाभि है, जहाँ से संसार की सबसे अधिक प्रसिद्ध चार नदियाँ, ब्रह्मपुत्र, सिंधु, सतलज और गंगा विशालकाय पर्वत-शृंगों के बीच से निकलती हैं। तू चारों ओर बड़े बड़े पर्वतों से घिरा हुआ है जिनमें से एक पर्वत कैलास भी है जो संसार के सब पर्वतों से अधिक पवित्र है।"

यहाँ उनके तैयार किए हुए मानचित्र का कुछ अंश (जिससे हम लोगों की यात्रा का संबंध है) देते हैं। उससे यात्री लोग स्थूल रूप से समझ लेंगे कि यहाँ जानेका कौन-सा मार्ग है; और साथ ही यह देखकर भी प्रसन्न होंगे कि चारों बड़ी बड़ी नदियों के उद्गम कहाँ हैं।

यह मानस सरोवर समुद्र-तट से पंद्रह हजार अट्ठानबे फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है और इसकी सबसे अधिक गहराई प्रायः दो सौ अड़सठ फुट है। जाड़े के दिनों में इस विशाल ह्रद के पानी के ऊपर प्रायः बीस इंच मोटा बरफ जम जाता है। मैंने वहाँ देखा था कि जब इसके नीले जल पर बराबर मेघों की छाया पड़ती थी, तब क्षण क्षण पर उस जल में नए नए रंग प्रतिबिंबित होते थे; परंतु जाड़े के दिनों में वह

दृश्य मनुष्यों के चर्म-चक्षुओं को तृप्त करने के लिये नहीं होता, वह केवल देवताओं के उपभोग के लिये ही होता है।

जिस समय हम सब लोग नीले दर्पण के समान स्वच्छ इस ह्रद के तट पर बैठे हुए अन्यमनस्क भाव से चिंतामग्न थे, उस समय अचानक कहीं से तीन तिब्बती हम लोगों के पास आ रहे थे। सब लोगों की दृष्टि उन्हीं की ओर आकृष्ट हुई। उन तीनों आदमियों ने संकेत से कुछ खाने की चीजें माँगी! अभी तक संध्या का अंधकार नहीं हुआ था। मैंने देखा कि उनमें से प्रत्येक के शरीर पर पश्मीने का आलखल्ला है, कमर में भुजाली है और पीठ पर एक एक बंदूक शोभा पा रही है। हमारे साथ की स्त्रियाँ दया के वशीभूत होकर इन नए ढंग के भिखारियों के लिये कुछ सूखा खाद्य पदार्थ लाने को तंबू के अंदर जा रही थीं, पर हमारे गाइड रंजन ने संकेत से उन लोगों को तंबू के अंदर जाने से रोका। भूतों का उपद्रव भूत ही समझ सकते हैं और विशेषतः महादेव के लीला-क्षेत्र कैलास के आस-पास नए यात्रियों को देखकर भूत, प्रेत और पिशाच की तरह ये सब जीव बीच बीच में आकर दिक किया ही करते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसी लिये श्रीमान् नित्यनारायण उस समय कुछ अधीर हो गए। उन्होंने अपने जेब से रिवाल्वर निकाल ली। किसी कवि की एक उक्ति है कि "बाएँ हाथ से दाहिने हाथ में और दाहिने हाथ से बाएँ हाथ में ले"। वे

अन्यमनस्क भाव से यह समझने के लिये उद्यत हुए कि इस रिवाल्वर के साथ इस उक्ति की कोई सार्थकता हो सकती है या नहीं। भूपसिंह ने भी अवसर देखकर बंदूक हाथ में लिये हुए तंबू से बाहर निकलकर उसे दो-चार बार इधर-उधर किया। अंत में रंजन ने उसी किचमिची भाषा में उन पहाड़ियों को दो-चार बातें समझा दीं और तब वे कुछ दुखी होकर वहाँ से अदृश्य हो गए।

वह रात सभी लोगों ने जागकर बिताई थी, इसी लिये बेचारे भूपसिंह को भी बिलकुल नींद नहीं आई थी। पहर पहर भर बंदूक की आवाज करने के लिये उसे उठकर परेशान होना पड़ता था।

दूसरे दिन तड़के ही सब लोगों की नींद टूट गई। उस समय मानस सरोवर का जल धीर और स्थिर देखकर सब लोगों ने हाथ मुँह धोया और तब स्नान किया। यदि अधिक दिन चढ़ जाय तो बहुत तेज हवा चलने लगती है और जल में खूब लहरें उठने लगती हैं जिसके कारण किनारे पर बैठकर संध्या-वंदन आदि समाप्त करने में कठिनता होती है। इसके सिवा आज हम लोगों को यथासाध्य शीघ्र भोजन आदि करके आगे भी बढ़ना था। इसलिये सभी लोग अपने अपने काम में लगे हुए थे। जब हम लोगों ने सुना कि लौटकर हम लोग इस रास्ते से नहीं आवेंगे, तब सब लोगों ने अपने अपने पात्रों में इस पवित्र तीर्थ का जल भर लिया।

इस प्रकार उस दिन हम लोग वहाँ से दोपहर को डेढ़ बजे के लगभग आगे बढ़े। उस दिन यहाँ एक और ऐसी घटना हुई थी जिसका उल्लेख कर देना उचित जान पड़ता है। आशा है कि इसके लिये पाठक हमें क्षमा करेंगे। आजकल दुर्गम मार्गों की यात्रा के संबंध में यदि किसी अलौकिक घटना का वर्णन न किया जाय तो पाठकों को संतोष नहीं होता। परंतु मैं इस प्रकार पाठकों का मनोरंजन करने का जरा भी पक्षपाती नहीं हूँ; और यदि मैं यह कहूँ कि मुझमें ऐसा करने का जरा भी साहस या सामर्थ्य नहीं है तो इसमें भी कोई अत्युक्ति नहीं है। जिस समय हम लोगों ने अपना सब असबाब और तंबू आदि झब्बुओं की पीठ पर लाद दिए, उस समय कुछ लोग यह देखने के लिये इधर-उधर घूमने लगे कि वहाँ कहीं किसी की कोई चीज छूट तो नहीं गई है। उस समय दीदी की नजर अचानक एक जगह एक उज्ज्वल सूक्ष्म वस्तु पर पड़ी। उन्होंने तुरंत वह चीज हाथ में उठा ली और देखा कि वह उन्हीं के कान का हीरे का एक टप या फूल है। कोई सात-आठ मास पहले लाभपुर में स्वयं उन्हीं के मकान में यह टप खो गया था और उन्होंने अपने मन में समझ लिया था कि अब वह टप किसी प्रकार नहीं मिल सकता। जब एक टप उनके हाथ में आ गया, तब वे आस-पास और भी ढूँढ़ने लगीं। उसी समय उन्हें पास ही दूसरा टप भी मिल गया। हीरे के इन दोनों टपों का मूल्य

भी कुछ कम नहीं था, करीब दो सौ साठ रुपयों के होगा। श्रीमान् नित्यनारायण से पूछने पर मालूम हुआ कि मानस-यात्रा के समय वे घर से एसेंस या विलायती सुगंधि का एक बक्स अपने साथ लाए थे। कल जब वे उस बक्स में एसेंस रखने लगे थे, उस समय उन्होंने कागज का एक मोड़ा हुआ टुकड़ा या पुड़िया वहीं इधर-उधर फेंक दी थी। जो हो, जब इतने दिनों के बाद इस पवित्र ह्रद के किनारे आने पर यह सूक्ष्म मूल्यवान् वस्तु फिर से मिल गई तो इसे लाभ के सिवा और क्या समझा जा सकता है। यदि हम लोग वहाँ से एक मिनट और पहले ही चल पड़ते तो यह सूक्ष्म पदार्थ सदा के लिये अदृश्य ही रहता। उस समय सब लोगों को बहुत अधिक आनंद हुआ और सब लोगों ने फिर से एक बार मानस के जल का स्पर्श किया और तब वहाँ से आगे बढ़े।

— —*— —

सातवाँ पर्व

श्री कैलास

मानस के पश्चिम तट से हम लोग नीचे नीचे उत्तर की ओर आगे बढ़े। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक स्थान पर एक अस्थि-कंकाल (शायद वह झब्बू का ही अस्थि-कंकाल था) पड़ा हुआ देखकर मैंने रंजन से पूछा कि क्या यहाँ पास में कोई श्मशान है। इस पर उसने हँसते हुए उत्तर दिया—बरफ पड़ने से ही यहाँ जीव-जंतुओं की परिणति से इस प्रकार श्मशान-क्षेत्र बन जाता है। संभव है कि जाड़े के आरंभ में कुछ झब्बू दल बाँधकर एक साथ चरने के लिये निकले हों। अकस्मात जोरों से बरफ पड़ा हो और वे निश्चल हो गए हों। ऐसी अवस्था में और कोई उपाय ही नहीं रह जाता। प्रायः दो-तीन मील और आगे बढ़ने पर बाईं ओर के तट पर गोसल् गुफा दिखाई पड़ी। यह ह्रद के जल से प्रायः एक सौ तीस फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है। ऊपर से एक लामा उँगली के इशारे से हम लोगों को मठ के दर्शन करने के लिये बुला रहे थे। दुःख की बात है कि हम लोगों ने उनकी बात नहीं मानी और तीर छोड़कर ऊपर नहीं गए।

प्रायः पाँच छः मील और आगे बढ़ने पर हम लोग इस ह्रद के उत्तर-पश्चिमवाले कोने के सामने जा पहुँचे। वहाँ तट पर कुछ दूर तक बालू था। उस पर कई हंसों और बगलों को चरते हुए देखकर सभी यात्रियों में मानस सरोवर के हंसों के संबंध में बात-चीत होने लगी। किसी ने कहा—लोग कहते हैं कि मानस सरोवर के हंस पानी मिले हुए दूध में से असल चीज अर्थात् दूध अलग कर सकते हैं। इसके उत्तर में एक दूसरे यात्री ने कहा—इस प्रकार तो सभी हंस पानी में से दूध अलग कर सकते हैं। लेकिन मानस सरोवर के हंसों में यह विशेषता है कि ये आकार में राजहंसों से कुछ बड़े होते हैं। यह सुनकर एक और आदमी बोल उठा—ये हंस बड़े तो होते ही हैं; पर इनमें एक और विशेषता यह है कि ये बड़े साधक अर्थात् बिलकुल निर्लोभ और जितेंद्रिय होते हैं। यह बात-चीत होने पर बहुत से लोग ध्यान लगाकर यह देखने लगे कि इन जलचरों के दल में असल हंस भी अवश्य मिल सकते हैं। पर दुःख है कि उस प्रकार का एक भी हंस वहाँ दिखाई नहीं पड़ा। अंत में यात्रियों में से एक आदमी ने बहुत दृढ़तापूर्वक कहा—असल हंस इस समय यहाँ नहीं रहते। वे जाड़े के दिनों में लोगों की दृष्टि से अगोचर होकर इस ह्रद के तट पर घूमते हैं। उस समय सब लोग उसकी यह बात सुनकर कुछ संतुष्ट और आश्वस्त हुए। लेकिन मेरे मन में उस समय साहित्य-दर्पण का केवल यही श्लोक था—

जलधरसमये मानसं यान्ति हंसाः।

जिस समय हम लोग अपना देश, अपनी जन्मभूमि, अपने आत्मीय और स्वजन और यहाँ तक कि भारतवर्ष का भी परित्याग करके तुषार का किरीट धारण करनेवाले हिमालय पर्वत को पार करके यहाँ आए थे, उस समय सभी लोगों के मन में इस बात की बहुत बड़ी आशा थी कि मानस के तट पर पहुँचकर हम लोगों को कुछ साधुओं के दर्शन अवश्य होंगे। परंतु हम अपने दुःख की बात क्या कहें! यहाँ आने पर साधुओं के दर्शन होना तो दूर रहा, हम अपने इन चर्म-चक्षुओं से साधक रूपी हंस तक न देख सके। क्या कोई हमें बतला सकता है कि इतने बड़े अपार ह्रद के किस किनारे पर इस समय वे सब छिपे हुए हैं? जिस समय स्वेन हेडिन रावण ह्रद के आस-पास घूम रहे थे, उस समय उन्होंने यह जानने का प्रयत्न किया था कि यहाँ जंगली हंसों का अड्डा कहाँ है। इस संबंध में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—

At the north-eastern foot of the elevation is a rather flat pebbly plateau. Here the wild geese breed in spring and here lay still several thousand eggs in twos, threes or fours in a nest of stones and sand."

—Trans-Himalayas, Vol. II, page 175.

अर्थात--"उत्तर-पूर्ववाली ऊँचाई (या पर्वत) के नीचे एक कुछ चौड़ी और पथरीली उपत्यका है। वसंत ऋतु में यहाँ जंगली हंस बच्चे देते हैं और अब तक यहाँ पत्थर और बालू के घोसलों में दो दो, तीन तीन और चार चार करके हजारों अंडे पड़े हुए हैं।"—ट्रांस हिमालय, दूसरा खंड, पृ० १७५।

इस प्रकार हम लोग जानते थे कि रावण ह्रद के उत्तर पूर्व की ओर किसी प्रशस्त स्थान में जंगली हंसों के घोंसले हैं, इसी लिए यहाँ मानस सरोवर के उत्तर-पश्चिमी तट पर हम लोगों ने इन सब जंगली हंसों को चुगते हुए देखा था। यही तट रावण ह्रद के उत्तर-पूर्व में है। उनकी पुस्तक देखने से इस बात का अच्छी तरह पता लगता है कि उन्हें भी यहाँ असल हंस (जो आकार में बड़े होते हैं) नहीं दिखाई पड़े थे। जो हो, यहाँ से कुछ आगे बढ़ने पर चढ़ाई के रास्ते पर हमें एक लंबा-चौड़ा मैदान मिला। वहाँ से कुछ और आगे बढ़ने पर हम लोगों ने देखा कि सामने से बंदूकें लिए हुए तीन तिब्बती घुड़-सवार हम लोगों के पास से होते हुए मानस की ओर चले जा रहे हैं। प्रायः हम सभी लोग एक साथ चले आ रहे थे। केवल रंजन असबाब वगैरह के साथ झब्बुओं को लिए हुए हम लोगों के बहुत पीछे था। वे तीनों सवार आगे बढ़कर अचानक उन्हीं झब्बुओं की ओर मुड़े। हमारे दल के बहुत से लोगों की दृष्टि उधर गई। उस समय दूर से ऐसा जान पड़ता था कि वे तीनों सवार

खड़े होकर झब्बूवालों के साथ कुछ बात-चीत कर रहे हैं। उस समय स्वामीजी और डाक्टरों से न रहा गया। हम लोगों का जो कुछ सामान था, वह सब झब्बुओं पर ही था, इसलिये सब लोग सोचने लगे कि तीनों तिब्बती सवार उन झब्बुओं के पास क्यों खड़े हुए हैं। मन में कुछ संदेह करके हम लोगों में से प्रायः सात-आठ यात्री एक साथ ही पीछे की ओर दौड़े। जब वे लोग झब्बुओं के पास पहुँचे, तब वे सवार अपने घोड़ों को मोड़कर दूसरी तरफ चले गए। रंजन से पूछने पर पता चला कि वे लोग पूछ रहे थे कि हम लोग कहाँ जा रहे हैं और किस रास्ते से लौटेंगे, आदि आदि। पाठक यह सुनकर आश्चर्य न करें कि मानस के तट पर साधुओं के दर्शन की जो उच्च आशा या अभिलाषा थी, उसे हम लोगों के भाग्य से दो दो बार इस प्रकार के साधुओं के दलों ने अयाचित रूप से पूरा कर दिया था। कोई चार बजे के करीब हम लोग एक खाल या नीची जगह के पास उसके ऊपरी करारे पर पहुँचे। नीचे जल देखकर यही निश्चय हुआ कि आज यहीं तंबू खड़े किए जायँ और रात बिताई जाय।

यद्यपि उस गड्ढे में जल थोड़ा ही था, तो भी वह मानस सरोवर और रावण ह्रद से मिला हुआ था और रावण ह्रद की ओर बह रहा था। रंजन ने हम लोगों को बतलाया कि इस खाल को शतद्रु कहते हैं। इसका जल

रावण ह्रद में मिलकर वहाँ से तीर्थपुरी की ओर गया है। तिब्बत का मानचित्र देखने से पता चलता है कि मानस सरोवर समुद्र-तल से १५ हजार ९८ फुट ऊँचा है और रावण ह्रद की ऊँचाई १५ हजार ५६ फुट है। इस प्रकार मानस सरोवर की अपेक्षा रावण ह्रद ४२ फुट नीचे है।

हम लोगों ने जिस जगह तंबू खड़े किए थे, उसके पूरब-वाले कोने में एक ऊँचे पर्वत-स्तंभ पर 'चू' (Chiu) नामक गुफा सुशोभित थी। इतने नए यात्रियों को देखकर वहाँ से बाघ की तरह के एक कुत्ते ने खूब जोर जोर से भूँककर हम लोगों की अभ्यर्थना की। समय के अभाव के कारण हम लोग उस गुफा के दर्शन न कर सके। उस गुफा से कुछ दूरी पर गरम पानी का एक झरना था। हमारे कुछ साथी वहाँ जाकर घूम-फिर आए। हम लोग अपने भोजन आदि की व्यवस्था करने लगे। उस दिन उस खाल के पानी ने ही हम लोगों की प्यास दूर की थी।

दूसरे दिन अर्थात् ६ श्रावण सोमवार को सवेरे नौ बजे भोजन आदि से निवृत्त होकर हम लोग फिर आगे बढ़े। रावण ह्रद को बाईं ओर छोड़कर जब हम लोग आगे बढ़े, तब सामने फिर एक लंबा-चौड़ा मैदान मिला।

आज हम लोग कैलास के सामनेवाले भाग में पहुँचने को थे। सभी लोग बड़ी प्रसन्नता और नवीन उत्साह से आगे बढ़ रहे थे। कुछ लोग पैदल थे और कुछ लोग

झब्बुओं पर सवार थे। हम लोगों के चारों घोड़ों ने भी खुला मैदान देखकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की। वृक्षों और लताओं से हीन इस लंबे-चौड़े और खुले मैदान में हम लोगों ने एक चिड़िया तक उड़ती हुई न देखी। चारों ओर निःस्तब्धता छाई हुई थी। केवल हम लोगों के साथ के बोझ ढोने वाले झब्बुओं के गले में बँधे हुए घंटे ही एक साथ मिल कर घननन शब्द कर रहे थे और मानों आरती के घंटे की तरह विश्व-प्रकृति को हार्दिक आराधना का परिचय दे रहे थे। ये झब्बू एक साथ दल बांधकर चलने में बहुत प्रसन्न रहते हैं। वे पारस्परिक प्रेम की अधिकता के कारण एक दूसरे के साथ सटकर इस प्रकार चलते हैं कि बीच बीच में उन पर सवार यात्रियों के पैरों के आपस में रगड़ खाने की यथेष्ट आशंका रहती है।

प्रायः साढ़े बारह बजे हम लोगों को एक नदी पार करनी पड़ी। प्रसन्नता की बात यही थी कि उस नदी में जगह जगह जल बहुत कम था और वहाँ पहले झब्बू ही एक एक करके पार हुए थे। जल देखते ही झब्बू जल-जंतुओं की तरह उसमें उतरने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। उनकी पीठ पर जो बड़े बड़े बोझ बँधे रहते हैं, उनका और उनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता। परंतु घोड़ा जल्दी जल में नहीं उतरना चाहता। जो लोग झब्बुओं पर सवार थे; उनमें से कुछ लोगों के पैर घुटनों तक भीग गए थे। उत्तरपाड़ा के

चट्टोपाध्याय महाशय झब्बू पर ही सवार थे। जब उनका झब्बू जल में से उछलकर किनारे पर जाने लगा, उस समय स्थूल शरीरवाले चट्टोपाध्याय महाशय अचानक उसकी पीठ पर से गिरकर उस बरफ की तरह ठंढे पानी में जा गिरे। यह देखकर सब यात्री हाय हाय करने लगे। रंजन ने तुरंत उन्हें पानी में से निकाल लिया। उनकी गीली धोती और कपड़े आदि उतार दिए गए और दूसरे यात्रियों से कुछ कपड़े आदि लेकर उनको दिए गए। तब कहीं जाकर चट्टोपाध्याय महाशय को कुछ आराम मालूम हुआ। कुछ देर तक विश्राम करने के उपरांत फिर सब लोग आगे बढ़े। प्रायः पाँच मील आगे बढ़ने पर परखा नाम का एक छोटा गाँव मिला। उसे बाईं ओर छोड़कर जब हम लोग कुछ और आगे बढ़े, तब आकाश में बहुत से बादल छा गए। थोड़ी देर बाद वे बादल गरजने लगे और वर्षा भी आरंभ हो गई जिससे हम लोगों को बहुत कष्ट हुआ।

हम लोग सिर पर छाता लगाए हुए कुछ देर तक इस खुले मैदान में अपनी अपनी सवारी पर बैठे रहे। दस-पाँच मिनट तक वर्षा होने के उपरांत एक नया उपद्रव आरंभ हुआ। खूब जोरों से पत्थर पड़ने लगे। ओले पड़ने के कारण हम लोगों के लिये अपने अपने घोड़े और झब्बू को स्थिर तथा शांत रखना बहुत कठिन हो गया। थोड़ी ही देर में वह सारा मैदान लाखों ओलों से भर गया। जब

वर्षा कुछ कम हुई, तब हम लोग फिर आगे बढ़े। इस बार रास्ते में दो-तीन नाले पड़े। उन नालों के आस-पास बहुत दूर तक रास्ता ठीक वैसा ही हो गया था जैसा बंगाल में प्रायः ऐसे स्थानों पर हुआ करता है। वहाँ इतना अधिक कीचड़ था कि झब्बुओं और घोड़ों के पैर प्रायः हाथ हाथ भर उसमें धँस जाते थे। लाचार होकर हम लोगों को पैदल ही वह दलदल पार करनी पड़ी। चार बजे के लगभग हम लोग फुदू नामक स्थान में पहुँचे। आज हम लोग दस ग्यारह मील चले थे।

तब तक आसमान साफ नहीं हुआ था। हम लोगों ने जिस जगह तंबू खड़े किए थे, उसके आस-पास तिब्बत की राजधानी लासा से आए हुए तिब्बती व्यापारी भी बहुत से तंबू लगाए हुए पड़े थे। वे लोग यहाँ व्यापार करने के लिए आए थे। उनके साथ असंख्य भेड़ों का दल था और कुछ कुत्ते भी इधर-उधर घूम रहे थे जो देखने में बहुत ही भीषण जान पड़ते थे।

तंबू खड़े करने के बाद रंजन जाकर एक बार उस दल में घूम आया। तब तक आसमान खूब साफ हो गया था। जब फिर चारों ओर सूर्य की किरणें फैलीं, तब पूर्व की ओर इस मैदान के अंतिम भाग में हमें कैलास के दर्शन हुए। कैलास की उज्ज्वल बरफीली चोटी चाँदी के समान सफेद गोल स्तूप की भाँति दिखाई पड़ रही थी।

यही वह कैलास है जिसके दर्शन करने की आशा से इतने यात्री परम उत्सुक होकर इतने दिनों से आतुरों की भाँति ढूँढ़ते हुए चले आ रहे हैं। कहाँ है वह जटा-जूटधारी विभूति-भूषण योगिश्रेष्ठ की महिम सुंदर ज्योतिर्मय मूर्त्ति, जिसके पास कोटिचंद्रप्रभा अनेक प्रकार के रत्नों और अलंकारों से विभूषित दिव्यांगना पार्वती बैठी हुई हैं! भला कौन बतला सकता है कि सिद्धों द्वारा सेवित इस पर्वत के शिखर पर किस छिपी हुई रत्न-शिलापर उनका दिव्यासन सुसज्जित है! अनेक युगों से इस कैलास का हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों में अनेक प्रकार से वर्णन होता चला आ रहा है।

उस समय यह स्थान ताल-तमाल की वन-राजि से घिरा हुआ था। यहाँ वृक्षों, लताओं, फलों और फूलों से सुशोभित सुरभित सुरम्य उपवन था। आर्ष्टिषेण मुनि सरीखे असंख्य योगियों और ऋषियों के साधनाश्रम यहाँ दिखाई पड़ते थे। उस समय देवों और गंधर्वों के सैकड़ों भक्त नित्य ही "हर हर महादेव" किया करते थे और देवादिदेव महादेव के स्तुति-गान से यहाँ का आकाश गूँजा करता था। उन दिनों आशुतोष की बहुत ही शीघ्र होनेवाली प्रसन्नता प्राप्त करना कुछ भी कठिन नहीं जान पड़ता था। पर आज अनेक युग बीत जाने पर उस स्थान पर हम लोगों ने देखा कि सभी जगह केवल पत्थर ही पत्थर हैं। केवल पत्थरों की ही अस्थि कंकाल-विशिष्ट नग्न मूर्ति उत्तर-दक्षिण में बहुत दूर तक फैली

हुई है। बीच में बाणलिंग की तरह बहुत दिनों से बरफ से ढका हुआ चाँदी के समान उज्ज्वल एक स्तूप उस स्थान पर खड़ा हुआ प्राचीन काल की महिमा आज भी लोगों को सुना रहा है। इस स्तूप के दोनों ओर की श्रेणियाँ बरफ से पूरी तरह से ढकी हुई नहीं हैं। पर उनके बीचमें बरफ का यह बहुत ऊँचा स्तूप है जो देवलोक के मंदिर की तरह उस दिन आँखों के सामने जगमगा रहा था। यदि हमारे पाठकों में से कोई सज्जन अपनी इच्छा अथवा अनिच्छा से किसी दिन अपने चर्म-चक्षुओं से यह दृश्य देखने का सुयोग प्राप्त करें तो उनसे हमारा इतना ही निवेदन है कि वे जीवन के नित्य-प्रति के घात-प्रतिघात को तुच्छ समझकर एक बार इस अप-रूप श्री कैलास को देखकर अपने नेत्र सार्थक करना कभी न भूलें। दिगंत तक फैले हुए इस पर्वत के सामने खड़े होकर समझेंगे कि मनुष्य यहाँ आकर अपनी भोग-वास-नाओं आदि की तुच्छ प्रवृत्तियों का बिलकुल विसर्जन कर देता है। संसार का सुख, शोक, आशा, माया सभी मानों पल भर के लिये योगिश्रेष्ठ के निर्वाण के समाधि-स्तूप के नीचे आप से आप लोटने लगते हैं।

हमारे यहाँ के धर्मशास्त्रों को देखने से जाना जाता है कि उस समय के युग के तीर्थ क्षेत्रों का जिस जगह पूरा पूरा वर्णन दिया गया है, उसकी अपेक्षा युग-युगांतरों के बाद उसी क्षेत्र में आज अनेक प्रकार के परिवर्तन हो गए हैं। किसी

समय हिमालय की सबसे ऊँची चोटी के आस-पास का सारा स्थान समुद्र के पानी में डूबा हुआ था।

जिस समय वैवस्वत मनु बदरिकाश्रम में तपस्या कर रहे थे, उस समय चीरिणी नदी के जल की एक मछली ने उनसे आश्रय माँगा। राजर्षि का आश्रय पाते ही उस मछली का आकार बढ़ता बढ़ता इतना अधिक हो गया कि अंत में उन्होंने लाचार होकर उस मछली को समुद्र में छोड़ दिया। उस समय उस कृतज्ञ मछली ने राजर्षि को बतलाया था कि थोड़े ही दिनों में सारा स्थल पानी में डूब जायगा। उस समय आप एक नाव पर सवार होकर मेरी (उसी मछली की) प्रतीक्षा कीजिएगा। यथासमय हिमालय के आस-पास का सारा स्थान समुद्र के जल में डूब गया। उस मछली के कहने के अनुसार राजर्षिप्रवर ने सप्तर्षि-मंडल को अपने साथ लेकर सृष्टि की रक्षा के लिये सब प्रकार के बीज इकट्ठे कर लिये और तब एक नाव पर सवार हो गए।

बीजान्यादाय सर्वाणि सागरं पुप्लुवे तदा।
नौकया शुभया वीर महोर्म्मिणमरिन्दम्॥

—महाभारत, वनपर्व, १८७ वाँ अध्याय

इसके बाद उसी मछली की सहायता से उसके सींग के साथ रस्सी से नाव बाँधकर वे अपनी नाव हिमालय की सबसे ऊँची चोटी के पास ले गए जो नौबंधन के नाम से प्रसिद्ध है और उसी चोटी के साथ अपनी नाव बाँधकर छोड़ दी।

अस्मिन् हिमवतः शृंङ्गे नावं वध्नीत मा चिरम् ।
सा वद्‌धा तत्र तैस्तूर्णमृषिभिर्भरतर्षभ ॥
—वनपर्व, १८७ वाँ अध्याय

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जहाँ आज बरफ से ढकी हुई सफेद पर्वत माला दिखाई पड़ती है, वहाँ किसी समय समुद्र की ऊँची ऊँची लहरें उठती थीं। इसलिये यदि आज कैलास के नीचे वनस्पतिहीन भूमि हो तो उसके माहात्म्य के संबंध में संदेह करने का कोई कारण नहीं है। शास्त्रकार सहस्र मुख से कह गए हैं—"कलौ स्थानानि पूज्यन्ते।" किसी युग में वृंदावन-विहारी नंद-नंदन श्रीकृष्ण अपने प्रिय वृंदावन में ईश्वरी लीला में प्रमत्त हुए थे। परंतु दुःख की वात है कि उस समय के वृंदावन का जो वर्णन है, उस वर्णन से मिलान करने पर हमें आज वहाँ की वह दशा नहीं दिखाई पड़ती। आजकल के वैज्ञानिकों ने तिब्बत और उसके आस-पास के प्रदेशों से बड़े वड़े जंतुओं की ठठरियाँ ढूँढ़कर यह प्रमाणित किया है कि वहाँ किसी समय वहुत वड़े वड़े जंगल थे। इस खुले मैदान का विस्तार देखने से ही सहज में यह अनुमान किया जा सकता है कि यह किसी समय एक बहुत वड़े जलाशय में परिणत हुआ था। इस कैलास के दृश्य का वर्णन करते हुए कालिदास ने कहा है—

गत्वा चोद्‌र्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्‌वासितप्रस्थसंधेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।

शृंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं

राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥

—मेघदूत, पूर्वमेघ, ५८ वाँ श्लोक

अर्थात् मेघ को संबोधन करके कवि ने कहा है—

रहि हूँ श्री कैलासहिं जइयो ।

अतिथि वा गिरि को बनि रहियो ॥

है दर्पण वह सुर-वनितन को ।

उकसायो लंकेश-भुजन को ॥

तुंग शिखर जो नभ में राजत ।

सितता तासु कुमुद लखि लाजत ॥

मनु शिव अट्टहास इक ठौरे ।

करत प्रकाश दिगन चित चोरे ॥

—राजा लक्ष्मणसिंह-कृत अनुवाद

युग-युगांतर का जमा हुआ शिव का वह अट्टहास हम लोगों ने आज सचमुच ही तृषित नेत्रों से प्रत्यक्ष देखा। बार बार देखने पर भी हृदय और मन मानों किसी प्रकार तृप्त नहीं होता था। उस समय यही जान पड़ता था कि इतने दिनों की यह दुर्गम यात्रा आज सफल हो गई और क्षण भर के लिये मुझे एक वर्णन स्मरण हो आया जिसका आशय इस प्रकार है—

"पर्वतों के राजा हिमालय पर स्थित कैलास में सदाशिव सदा विराजते हैं। वहाँ सूर्य और चंद्र भी डरते हुए चलते हैं और

हवा भी चलने में भयभीत होती है। वहाँ सुर और असुर की दशा एक सी है। वहाँ के पक्षी भी शिव का ही गीत गाते हैं, नदी का जल भी कलकल-ध्वनि से प्रवाहित होता है और लताएँ भी हिलते समय शिव शिव करती हैं। सब सुर-बालाएँ मिलकर फूलों से डालियाँ भरती हैं और मालाएँ गूथकर गिरींद्र-बाला के गले में डालती हैं।"

—हरकुमार शास्त्री-रचित शंकराचार्य

महाभारत में कैलास के आस-पास किंपुरुषों (कुत्सित के अर्थ में "किं" आया है) का बहुत कुछ उल्लेख मिलता है। हम लोगों के तंबुओं के पास एक एक करके बहुत से किं-पुरुषों का आविर्भाव हुआ। कोई किंपुरुष घुटनों तक आलूखाल्ला पहने हुए था और बीसवीं शताब्दी की रोशनी देखनेवाले भव्य आदमियों को तिरछी नजरों से देखता था। कोई तंबू का कपड़ा हटाकर संध्या के अंधकार में भूत की तरह अचानक तंबू के अंदर झांकता था। हरिकेन लालटेन के प्रकाश के सामने अज्ञात देश की स्त्रियों को विह्वलों की तरह सिर से पैर तक देखकर तुरंत ही हो हो शब्द करके हँस पड़ता था। उनके मन में इस बात की कोई धारणा ही नहीं थी कि संसार में सभ्यता नाम की भी कोई सीमाबद्ध वस्तु है। पागल और भोले भूतनाथ के राज्य में इस प्रकार के जीव यात्रियों के मन में बहुत बड़ा आतंक उत्पन्न करते हैं। उस दिन एक भूत को अपने सामने

देखकर हम लोग अपनी हँसी किसी तरह न रोक सके। उस भूत की पीठ पर लहू से भरी हुई ऐसी बकरी का अस्थि-मांस झूल रहा था जिसके ऊपर की खाल खींच ली गई थी। एक तो वह योंही लंबा-चौड़ा और देखने में भयानक था; तिस पर उसके हाथ की उँगलियों में बहुत बड़े बड़े नाखून थे। तिस पर पिंगल वर्ण की गहरी और रूखी जटा थी; और सबसे विलक्षण बात यह थी कि एक मैले और दुर्गंध-युक्त लंबे आच्छादन से उसका सारा शरीर ढका हुआ था। इस 'किंभूत किमाकार' मूर्त्ति को देखकर आदमी बिना चौंके नहीं रह सकता था। यदि इस खुले हुए मैदान में कोई अकेला आदमी इस मूर्त्ति के सामने पड जाता तो इसमें संदेह नहीं कि एक बार उसके साहस की अच्छी परीक्षा हो जाती। मैंने सुना कि उसकी पीठ पर बकरी की जो लोथ लटक रही थी, उसका कच्चा मांस खाकर ही वह इधर कुछ दिनों तक निर्वाह करेगा। भूख लगने पर ऐसे लोग रोज उसी मांस में से कुछ अंश काट लेते हैं और उसे अध-भुनी अवस्था में ही (क्योंकि यहाँ ईंधन का बहुत अभाव रहता है) खा जाते हैं।

इस नए स्थान में आकर जब तक हम लोग इन सब बातों की आलोचना कर रहे थे, तब तक रंजन तारचिन से होकर लौट आया था। यह तारचिन यहाँ से प्रायः दो मील की दूरी पर पूर्व की ओर कैलास के नीचे है। आते समय उसने बुद्धिमानी का एक यह काम किया था कि वहाँ

के तीन-चार पहाड़ियों से वह पाँच-छः सेर दूध खरीदकर अपने साथ लेता आया था। यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि यात्रियों के सुख और सुभीते की ओर उसका विशेष ध्यान रहता था।

जब कैलास पहुँचते ही पहले दिन एक साथ इतना दूध मिल गया, तब सब यात्रियों ने यही स्थिर किया कि आज कैलासपति के लिये इसी दूध की खीर बनाई जाय और उसी का उन्हें भोग लगाया जाय। लेकिन पाठक यह न समझें कि यह दूध गौ का था। यह सब पहाड़ी बकरियों का दूध था। इस निश्चय के अनुसार खीर बनाने का भार दीदी को ही अर्पित किया गया। लेकिन खीर बनाने के लिये काफी ईंधन की जरूरत थी। बड़ी कठिनता से एक तिब्बती से एक प्रकार का थोड़ा सा कँटीला तृण खरीदा गया। इसके बाद उस दूध में चावल मिलाकर उसे खीर के रूप में परिणत करना उस दिन एक विराट् उद्योगपर्व ही जान पड़ता था। पहले तो वह तृण जलाने के लिये पूरा एक बोतल मिट्टी का तेल नष्ट हुआ। इसके बाद जब उन तृणों में अग्निदेव ने किसी प्रकार दर्शन दिए, तब शीत के प्रताप के कारण वे शिखा उठाने में बिलकुल असमर्थ दिखाई दिए। अंत में इतने यात्रियों का संतोष करने के लिये अग्नि के साथ उस अस्त्र (भाथी) का प्रयोग किया गया जिसका व्यवहार लोहार लोहा गलाने के लिये करते हैं। मैंने और श्रीमान् नित्य-

नारायण ने प्रायः ढाई घंटे तक उस अस्त्र के द्वारा अग्नि की सहायता की, तब कहीं जाकर चावल तो पका, पर दूध फिर भी किसी तरह गाढ़ा न हुआ। यदि पहले से यह बात मालूम होती तो शायद कोई ऐसी दुर्दशा भोगना मंजूर न करता। इस प्रकार उस दिन यही दूध-भात या तथाकथित खीर-ही कैलासपति को भोग लगाकर सब लोग तृप्त हुए थे। उस दिन जितने अधिक परिमाण में प्रत्येक यात्री ने वह खीर खाई थी, उसी से स्पष्ट जान पड़ता था कि अरुचिवाले मुँहों को उस दिन वह रुचि की वस्तु (ठीक तरह से तैयार न होने पर भी) कितनी अधिक स्वादिष्ट और मधुर जान पड़ी थी।

दूसरे दिन अर्थात् ७ श्रावण को सवेरे ही जहाँ तक जल्दी हो सका, सब लोग भोजन आदि से निवृत्त होकर साढ़े आठ बजे के लगभग आगे बढ़े। यहाँ से चलने के पहले बोझ ढोनेवाले पशुओं के सुभीते के विचार से रंजन ने अपने एक परिचित व्यापारी के तंबू में यात्रियों की कुछ चीजें (जिनके बिना रास्ते में काम चल सकता था) अमानत के तौर पर रख दी थीं। आज से कैलास की परिक्रमा आरंभ होने को थी। परिक्रमा का मार्ग प्रायः तीस मील था। कष्ट-सहिष्णु यात्री लोग इस रास्ते पर साधारणतः पैदल ही चलते हैं। हमारे साथ के इतने यात्रियों में से केवल सात-आठ आदमियों को छोड़कर बाकी सभी इच्छा न होने पर भी वाहनों पर ही चलने को विवश हुए थे। इसका कारण यह था कि हम लोग देख रहे थे

कि समुद्र-तल से प्रायः सोलह हजार फुट ऊँचे इस प्रदेश का यह समतल मैदान पार करने में ही हममें से बहुतों को साँस लेने में कठिनता हो रही थी। तिस पर हम लोगों ने रंजन के मुँह से सुना था कि परिक्रमा के अंतिम दिन गौरी-कुंड की ऊँची चढ़ाई चढ़ना अभी बाकी ही है। यदि हम लोग उस चढ़ाई पर चढ़ जायँगे, तो हम लोगों की चढ़ाई चढ़ने की परीक्षा का अंत हो जायगा। अस्तु, आज की इस यात्रा में तारचिन को हम लोगों ने अपनी दाहिनी ओर छोड़ा। यहाँ गांगडा नामक एक मठ है। वहीं से सदा बरफ से ढके रहनेवाले उस स्तूप को केंद्र मानकर और वामावर्त्त होकर हम लोगों ने प्रदक्षिणा आरंभ की। वह रास्ता कुछ तो उत्तर और कुछ पूर्व की ओर मुड़ता हुआ गया है। सब जगह वही तृण-विहीन नंगे पहाड़ों के अस्थि-कंकाल दिखाई पड़ते थे; उसके सिवा कहीं हरे रंग का नाम भी न दिखाई पड़ता था। रास्ते के बीच बीच में केवल विचित्र वर्णों में असंख्य पत्थरों पर तिब्बतियों का लिखा हुआ वही "ॐ मणि-पद्मे हुं" मंत्र स्पष्ट रूप से समझ में आता था। उसकी लिपि बहुत कुछ देवनागरी अक्षरों के समान थी। इस प्रकार कुछ दूर आगे जाने पर एक नदी मिली। यद्यपि वह नदी बहुत चौड़ी थी, पर फिर भी उसकी गहराई बहुत ही कम थी। वह जगह जगह पर बीच में से विभक्त होकर एक ही ओर बड़े वेग से वह रही थी। उसके आस-पास बालू और छोटे

छोटे कंकड़ों से मिला हुआ उसका तट था। हम लोग इस नदी को अपनी बाईं ओर रखते हुए कुछ दक्षिण की ओर आगे बढ़े। उस समय कैलास का स्तूप एक पहाड़ की आड़ में पड़ जाने के कारण कुछ देर के लिये हम लोगों की आँखों से ओझल हो गया था। एक जगह कुछ ढालू रास्ता था और बहुत से पत्थर पड़े हुए थे। वह रास्ता पार करते समय दीदी का घोड़ा उछला था। उस समय दीदी अपने आपको सँभाल नहीं सकीं जिस कारण उन्हें कुछ चोट आ गई थी। इसलिये लाचार होकर आज हम लोग ज्यादा दूर नहीं जा सके थे। केवल छः-सात मील चलकर ही हम लोगों ने उसी नदी के किनारे एक स्थान पर तंबू खड़े किए। उस समय दोपहर के कोई ढाई बजे थे। नदी के दूसरे पार पहाड़ में एक और गुफा दिखाई पड़ी। सुना कि उसका नाम नियांदि था। दक्षिण की ओर आँखों के सामने फिर वही तुषार-सुंदर स्तूप था। इस समय हम लोग उसके बहुत ही पास (बल्कि कह सकते हैं कि बिलकुल उसके नीचे ही) थे।

हम लोग कुछ दिन रहते ही इस स्थान पर पहुँच गए थे, इसलिये सब लोग कैलास के संबंध में तरह तरह की आलोचनाएँ और तर्क-वितर्क करने लगे। मैं मन ही मन सोचने लगा कि क्या यह वही कैलास है जिसके संबंध में किसी युग में महाभारत में लिखा गया था—

ऐसा जान पड़ता था कि एक विराट् निःस्तब्धता हम लोगों को क्षण क्षण पर स्तंभित कर रही थी। यह कैसा मुक्ति का राज्य था जिसके खुले हुए नील आकाश में क्षण भर के लिये भी एक पक्षी तक उड़ता हुआ नहीं दिखाई देता था! सब लोग चकित होकर सामनेवाले पर्वत-प्रासाद पर स्थित ऊँचे तुषार-स्तूप की ओर विह्वल दृष्टि से देख रहे थे। उन्हें देखते देखते आँखें मानों थक गईं। ऐसा जान पड़ता था कि किसी अदृश्य स्थान से कोई मूक भाषा में कह रहा था—"अरे भ्रांत, यह वृंदावन-विहारी गोपियों के मनोमोहन श्री राधा-रंजन का मधुर लीला-क्षेत्र नहीं है, जहाँ वंशी के स्वर से आज भी पुष्प-वनों के कुंज मुकुलित होते हैं और भौंरे गूँजते हुए इधर-उधर उड़ते फिरते हैं। यह तो सदा मौन रहनेवाले जटाजूटधारी, सर्वत्यागी, योगिश्रेष्ठ का समाधि-मंदिर है, महानिर्वाण का बहुत पुराना मुक्तिक्षेत्र है। यहाँ त्याग की महिमामयी मूर्त्ति के चरणों में संसार की भोग-लालसा ने अपने अस्तित्व का पूर्ण रूप से विसर्जन कर दिया है। यह तो महाप्रस्थान का मार्ग और ऋषियों तथा मुनियों की अंतिम आकांक्षा की वस्तु है। यहाँ की संपत्ति केवल विभूति है; और उस विभूति के सिवा यहाँ और कुछ भी नहीं है। यह चिर-शीतल उज्ज्वल तुषार-किरीटी है। भक्ति-गद्गद् चित्त से मन भरकर यदि उसकी तुरंत की द्रवीभूत दूध के समान धारा एक बार पान कर ली जाय, तो हृदय और मन परितृप्त हो जायगा।

और इस चिर-शुभ्र समाधि के नीचे कठोर पत्थरों की वेदी पर जिसका पंचभूत-मिश्रित शरीर एक बार लोटा है, उसका नर-देह का जीवन सार्थक हो गया है, उसे फिर कभी शरीर धारण न करना पड़ेगा।"

तिब्बती लोग इस कैलास को कांग्रिंपो (Kang-Rin-Poche) कहते हैं। जिस प्रकार हमारे देश के साधु-संन्यासी तीर्थ क्षेत्रों में हर बारह बरस पर कुंभ का उत्सव और समारोह करते हैं, उसी प्रकार यहाँ के लामा लोग भी श्री कैलास में उसी प्रकार के कुंभ का समारोह करते हैं। उस समय यहाँ भी लद्दाख आदि दूर दूर के स्थानों से बहुत से लामा और यात्री आकर इकट्ठे होते हैं। जिस वर्ष यह कुंभ होता है, उस वर्ष को ये लोग घोटक वत्सर (Horse Year) कहते हैं। मैंने वहाँ सुना था कि अगले साल (सन् १९३० ईसवी) यह कुंभ होगा।

तिब्बती लोग भी बहुत दिनों से इस कैलास को सर्वश्रेष्ठ तीर्थ समझते हैं और बहुत दिनों से इसकी पूजा करते आए हैं। उस दिन हम लोगों ने अपनी परिक्रमा के मार्ग में कई तिब्बती यात्रियों को भी परिक्रमा करते हुए देखा था। यात्री लोग साधारणतः दो-तीन दिन में इसकी परिक्रमा समाप्त करते हैं। उनमें से कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपनी कोई मन्नत पूरी करने के लिये इस परिक्रमा का तीस मील का रास्ता साष्टांग दंडवत् करते हुए अर्थात् दोनों हाथ

सामने की ओर लंबे करते हुए और जमीन पर लेटते हुए पार करते हैं; और इस प्रकार मानों अपने शरीर से यह सारा रास्ता नापकर परिक्रमा पूरी करते हैं। इस प्रकार परिक्रमा करने में प्राय: बीस दिनों तक कष्ट सहना पड़ता है।

यदि केवल दृश्य के विचार से इस कैलास को देखा जाय तो उसका सौंदर्य भी वास्तव में बहुत ही चमत्कारपूर्ण है। विदेशी यात्री स्वेन हेडिन ने एक दिन मुग्ध दृष्टि से इस कैलास को देखकर इसके संबंध में लिखा था—

"It is incomparably the most famous mountain in the world. Mount Everest and Mount Blanc cannot vie with it."

अर्थात—'यह पर्वत संसार में सबसे अधिक प्रसिद्ध है और प्रसिद्धि में कोई पर्वत इसकी तुलना नहीं कर सकता। यहाँ तक कि एवरेस्ट पर्वत और ब्लैंक पर्वत भी इसकी बराबरी नहीं कर सकते।" अर्थात् उनके मत से इटली के सबसे ऊँचे पर्वत माउंट ब्लैंक या हिमालय की सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट की भी इसके साथ तुलना नहीं की जा सकती।

यद्यपि उस दिन हम लोगों के पास समय था, पर फिर भी किसी ने उस पार जाकर नियांदी गुफा का दर्शन करना नहीं चाहा। इसका कारण यही था कि हम लोग यही समझते थे कि उस गुफा में कोई नवीनता नहीं है। हम लोगों ने सोचा कि वहाँ या तो बुद्ध अथवा तारा की मूर्ति होगी

और उसके सिवा सिर मुँड़ाए हुए पीले कपड़े पहने लामाओं के मदिरा-विह्वल लाल लाल नेत्र दिखाई पड़ेंगे। और इन सब बातों को देखने के लिये किसो यात्री के मन में कोई श्रद्धा नहीं थी। यदि वहाँ जानने योग्य कोई चीज थी तो वह पत्थरों पर खोदी हुई लिपि थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उस भाषा से हम लोग नितांत अनभिज्ञ थे। और तिस पर से दुःख की बात यह थी कि हम लोगों का गाइड भी इस विषय में हम्हीं लोगों के समान बुद्धिमान् था। इस-लिये गुफा के दर्शनों की इच्छा करके ही हम लोग शांत हो गए थे।

साधारणतः चीन और तिब्बत प्रदेशों के निवासी बौद्ध मतावलंबी और तारादेवी के उपासक हैं। इस बात के प्रमाण बहुत से ग्रंथों में दिखाई पड़ते हैं। केवल चीनाचार तंत्र नामक ग्रंथ में ही इस बात के यथेष्ट प्रमाण भरे हुए हैं। एक बार ब्रह्मर्षि वशिष्ठदेव अपनी उपासना में सिद्धि प्राप्त करने के लिये कामाख्या तीर्थ में गए थे, पर वहाँ भी उन्हें सफलता नहीं हुई। अन्त में वे क्रुद्ध होकर तारादेवी को ही शाप देने को तैयार हुए। उस समय तारादेवी ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया था—"चीनाचार के सिवा मैं और किसी पर प्रसन्न नहीं होती। मेरी आराधना का आचार बुद्धि-रूपी विष्णु ही जानते हैं। तुम उन्हीं के पास जाओ और उन्हीं के बतलाए हुए आचार से मेरा भजन

करो ।" इत्यादि । यह सुनकर वे हिमालय के पासवाले महाचीन देश में गए थे और वहाँ उन्होंने बुद्धदेव के दर्शन किए थे—

ततो गत्वा महाचीने देशे स मुनिपुंगवः ।
ददर्श हिमवत्पार्श्वे साधकेश्वरसेवितम् ॥

—चीनाचार तंत्र, द्वितीय पटल

अर्थात् उन दिनों भी वहाँ बौद्ध मत की ही प्रधानता थी । वहाँ के उपासकों की, मदिरा-पान के कारण होनेवाली, लाल लाल आँखें देखकर पहले वशिष्ठदेव ने भी मन में संदेह करते हुए सोचा था—

किमिदं क्रियते कर्म्म विष्णुना बुद्धरूपिणा ।
वेदवादविरुद्धोऽयं नाचारः सम्मतो मम ॥

उस समय यह आकाशवाणी हुई थी—

............................नैवं चिन्तय सुव्रत ।
आचारः परमो योगस्तारिणीसाधने मुने ॥

मतलब यह कि चीन और तिब्बत में तारा की उपासना बहुत दिनों से चली आ रही है । अस्तु । हम लोगों ने उस दिन सदा बरफ से ढकी रहनेवाली इस निर्वाण-समाधि के नीचे ही मन के आनंद में दिन बिताया । संध्या समय सब लोगों ने अभिभूतों की तरह सदा मौन रहनेवाली नग्न मूर्त्ति के चरणों में यथाशक्ति अपने अपने हृदय की श्रद्धा और भक्ति निवेदित की और सदा के लिये अपने मार्ग के

संवलस्वरूप उनके चरणों की रज यहीं से एकत्र कर ली। इसके बाद उस दिन संध्या हो जाने पर सभी लोग अपने अनभ्यस्त कंठ से कुछ भजन और गीत गाने लगे। यद्यपि उन स्वरों में मिठास नहीं थी, तो भी उनमें विलक्षण मादकता थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय और स्थान पर सब लोगों का आग्रह देखकर मेरे समान भाव-विहीन और अकवि को भी क्षण भर के लिये कवियों की भाषा में कैलासपति के उद्देश्य से एक गीत बनाना पड़ा था।

वैसे आनंद के दिन फिर कभी इस जन्म में मिलना संभव नहीं। वह एक ऐसे स्वप्न के समान था जो जागते रहने की दशा में देखा जाता है; और उस रात्रि की स्मृति अब भी कभी कभी मन को चंचल कर देती है।

दूसरे दिन अर्थात् ८ श्रावण बुधवार को सवेरे सब लोगों ने उठकर नौ बजे के पहले ही भोजन आदि कार्य समाप्त कर लिए। यहाँ भोजन से मतलब बिना तरकारी के भात से ही है। हम लोग अपने साथ जो आलू लाए थे, वह सब खतम हो गया था। मैं अपने साथ आने के समय बनारस की कचौड़ी गली के कुछ पापड़ लेता आया था। उन्हीं को टुकड़े टुकड़े करके और कुछ मसालों के साथ खाते थे। लेकिन वह पापड़ भला कितने दिन चल सकते थे! अंत में रोग की औषध के रूप में जो पुरानी इमली लाए थे, वही तरकारी के रूप में क्षुधा को निवृत्ति करने लगी। वह इमली

कुछ चीनी और नमक के साथ मिलाकर पानी में घोल दी जाती थी और वही खट्टे रसे के रूप में नित्य काम में लाई जाती थी। वह खाई क्या जाती थी, बल्कि यों कहना चाहिए कि किसी तरह गले के नीचे उतारी जाती थी।

यद्यपि खाने-पीने, सोने और नित्य बराबर पहाड़ी रास्तों पर चलने में इतना अधिक कष्ट होता था, तो भी मन में इस बात का संतोष था कि हम लोग इतने दुर्गम कैलास पर्वत की यह परिक्रमा कर रहे हैं। दाहिनी ओर तो कैलास पर्वत को उन्नत पर्वत-प्रासाद था ही, उधर बाईं ओर बहुत तेज बहने-वाले झरने के उस पार भी एक ऊँचा पर्वत सुशोभित था। इन दो बड़े बड़े पहाड़ों के बीच में झरने के किनारे किनारे जो थोड़े से यात्री चुपचाप चले जा रहे थे, उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था कि वे साधन-मार्ग में धीरे धीरे अग्रसर हो रहे हैं। वहाँ जीव-जंतुओं और मनुष्यों का भीषण कोलाहल नहीं था, प्रशांत नीले आकाश में किसी पक्षी के भी चंचल पर फड़फड़ाकर उड़ने की सामर्थ्य नहीं थी। चारों ओर केवल निःस्तब्धता थी। इस प्रकांड समाधि-स्तूप के चारों ओर एक महान् मौन आकृष्ट होकर स्तब्ध हो रहा था। इस मार्ग को अतिक्रमण करते समय हम लोग बीच बीच में देखते थे कि उस चाँदी के समान उज्ज्वल स्तूप से शीतल तुषार-धारा आकाश-भेदी पर्वत-प्रासाद को नंगा करती हुई बह रही थी और दूध की धारा की तरह नीचे चली आ रही थी।

ऐसा जान पड़ता था कि इस प्रासाद के अंदर ही लोगों को दृष्टि से अदृश्य होकर सदा मौन रहनेवाले तपस्वी अनंत काल से योग की साधना में लगे हुए हैं। एक जगह पर प्रायः आठ सौ फुट की ऊँचाई से हम लोगों ने देखा था कि इकट्ठी की हुई फेन-राशि के समान ही उज्ज्वल श्वेत धारा धीरे धीरे नीचे चली जा रही है। सभी लोग विस्मित और मुग्ध होकर उसकी ओर देखने लगे। यहाँ आकर किसी किसी स्थान पर आँखों की पलकें भी बिलकुल स्थिर हो जाना चाहती थीं। इस प्रकार के विचित्र दृश्य देखते देखते प्राय: पाँच मील आगे बढ़ने पर हम लोग एक मोड़के सामने पहुँचे। वहाँ से वह बड़ा झरना भी पश्चिम की ओर गया था इस झरने को बाईं ओर रखकर हम लोग भी बराबर पश्चिम की ओर झुकते हुए आगे बढ़ने लगे। प्रायः दो मील चलने पर झरने के उस पार बाएँ कोने पर एक और गुफा दिखाई पड़ी। इस तीसरी का नाम डिरीपू था। यहाँ से कैलास का रजत-स्तूप अधिकतर स्थूल गोलाकार के रूप में दिखाई पड़ने लगता है।

पहाड़ के नीचे नीचे हम लोगों का यह रास्ता प्रायः समतल क्षेत्र के ऊपर से ही होता हुआ चला आ रहा था। अब चढ़ाई के मुहाने पर हम लोगों के दाहिने भाग के रजत-स्तूप से एक बड़ा झरना आकर बाईं ओर के झरने में मिल गया था। उसी को पार करके हम लोगों को चढ़ाई

पर चढ़ना था। उस झरने में केवल ढेर के ढेर पत्थरों के ही टुकड़े थे। जिन लोगों ने घोड़े या झब्बू पर सवार होकर यह झरना पार किया था, वे ठोकरें लगने के कारण अपने आपको सँभाल नहीं सके थे और उन्हें कई बार झटके लगे थे। लेकिन फिर भी उस बरफ के ठंढे जल में अपने पैर डुबाने के लिये कोई तैयार न हुआ। यह झरना पार करते ही सब लोग चढ़ाई पर चढ़ने लगे। इधर-उधर बड़े बड़े पत्थरों के टुकड़े बिखरे हुए थे और उन्हीं पर से होकर चढ़ाई पार करनी पड़ती थी। वह चढ़ाई चढ़ने में सभी लोगों को बहुत अधिक कष्ट हुआ था। पाँच-सात मिनट चलने पर ही विश्राम करने की आवश्यकता होती थी। श्वास लेने में बहुत अधिक कष्ट होता था और सभी यात्री उस कष्ट से विकल हो गए थे। खैरियत यही थी कि लिपूलेक की चढ़ाई की तरह इस रास्ते में हम लोगों को उस समय बरफ पर नहीं चलना पड़ा था। जिस साल हम लोगों ने यात्रा की थी, उसके दूसरे साल (बंगला संवत् १३३७ में) जो यात्री कैलास गए थे, उन्हें गौरी कुंड के रास्ते में प्रायः चार मील तक बरफ पर चलना पड़ा था। उनमें कुछ लोगों की तो ऐसी अवस्था हो गई थी कि मानों वे मारे जाड़े के बरफ की तरह जम गए थे। पता लगाने पर मालूम हुआ था कि जिस समय हम लोग इस स्थान पर पहुँचे थे, उससे प्रायः दो सप्ताह पहले ही वे लोग वहाँ पहुँच गए थे।

बेचारा भूपसिंह झब्बू पर ही चला आ रहा था। एक स्थान पर जब उसका झब्बू खड़ा होकर विश्राम कर रहा था, उस समय सिंहजी सहसा उसकी पीठ पर से नीचे गिर पड़े थे। उसकी पीठ पर जो बंदूक लटक रही थी, उसी से स्वयं उसको चोट लगी थी। सब लोगों के सामने उसकी बंदूक ने उसके साथ जो सद्व्यवहार किया था और झब्बू के खड़े रहने पर भी जो वह नीचे गिर पड़ा था, वे दोनों ही बातें बहुत हास्यजनक हो गई थीं; और इसी लिये उस समय सब लोगों की दृष्टि उसकी ओर आकृष्ट हो गई थी। जब उससे पूछा गया कि तुम कैसे गिर पड़े, तब उसने जो उत्तर दिया था उसे सुनकर फिर एक बार सब यात्री ठठाकर हँस पड़े। उसने कहा कि झब्बू की पीठ पर जो बड़े बड़े रोएँ हैं, उन पर बैठे बैठे चढ़ाई चढ़ने में जो झोंके लगते थे, उन्हीं के कारण मुझे नींद आ गई थी और यह दुर्दशा भोगनी पड़ी। पर उस समय भी उसके मन में इस बात का ध्यान नहीं हुआ कि यदि किसी ऐसी वैसी जगह इस प्रकार की असावधानी के कारण वह वहाँ गिरता तो सत्तू से पुष्ट उसका शरीर बिलकुल चूर चूर हो जाता। इधर जिस समय हम लोग यह चढ़ाई चढ़ने में प्राणांत करनेवाला परिश्रम कर रहे थे, उस समय दाहिनी ओर के रजत-स्तूप का आकार कुछ और ही रूप धारण कर रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि उसके गोलाकार अंश के बीचवाले भाग में से कुछ थोड़ा पहाड़ मानों

अपनी काया का विस्तार करके उत्तर की ओर कुछ दूर तक आयतन की वृद्धि कर रहा है। शूलपाणि की पिनाक की तरह वह विस्तार हिंदू उपासकों की दृष्टि में कैसा पवित्र था! उस पिनाक के ऊपर टेढ़े-मेढ़े तुषार का उज्ज्वल विस्तार स्फटिक की माला की तरह आँखों के सामने कैसा चमक रहा था! इस निर्जन बरफीले पहाड़ के कंदर में इस प्रकार की पूजा की मूर्त्ति के प्रत्यक्ष दर्शन इस नश्वर संसार में एक अचिंतनीय आविष्कार के समान थे। सब लोग विस्मित नेत्रों से उस विराट ज्योतिर्मय मूर्त्ति की ओर देखते हुए क्षण भर के लिये मानों अपने आप को बिलकुल भूल गए थे। कौन बतला सकता है कि उस समय हम लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति भक्तिपूर्ण हृदय से किस अनिर्दिष्ट महापुरुष के चरणों पर झुक रहा था!

अंगरेज यात्री हेडिन ने इस दृश्य को Splendid view या अद्भुत और विशाल दृश्य कहा है। तिब्बती लोग इस स्थान को गैल्पो नोरजिंगी फोपरांग (Gyalpo Norjingi Phoprang) अर्थात् धनाधिपति कुबेर का निवास-स्थान कहते हैं। जापानी परिव्राजक काउआगुची का ग्रंथ देखने से यह बात जानी जाती है। उसने लिखा है—

"On ascending the hill (Dolmala) one sees to the right a snowy range of the northern parts of Mount Kailasa, named in Tibetian

Gyalpo Norjingi Phoprang which means the 'residence of King Kuvera, the god of wealth.' "

—Three Years in Tibet, page 174.

अर्थात्—"पहाड़ी (डोलमा-ला) पर चढ़ने से कैलास पर्वत के उत्तरी अंशों की एक बरफीली माला दिखाई पड़ती है जिसे तिब्बती लोग गैल्पो नोरजिंगी फोपरांग कहते हैं और जिसका अर्थ है—धन के स्वामी कुबेरका निवास-स्थान।"

हम नहीं कह सकते कि चित्र में यह दृश्य देख कर पाठकों का कहाँ तक मनोरंजन हो सकेगा; तो भी हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि जो लोग अपने घर बैठ कर मिट्टी का शिवलिंग बना कर उसकी पूजा करने की श्रद्धा और भक्ति रखते हैं, उनकी बात ही जाने दीजिए, सुंदर दृश्य देखने की इच्छा रखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति, जहां तक हो सके, एक बार इस निर्जन हिमालय पर की पवित्र मूर्त्ति का जाग्रत रूप देखना कभी न भूले। यहाँ आने पर वे देखेंगे कि हृदय में चरम सौंदर्य का प्रकाश करनेवाली मूर्त्ति लोगों के रहने के स्थान से इतनी दूर आकर उज्ज्वल रूपसे आत्म-प्रकाश कर रही है। प्रकृति के कर्तृत्व में कैलास की अनुपम दिव्य मूर्त्ति ही एक मात्र विशेषतावाली है।

समुद्र-तल से कैलास की ऊँचाई के संबंध में भिन्न भिन्न विद्वानों के अनेक मत हैं। कोई इसे इक्कीस हजार आठ

सौ अठारह फुट ऊँचा बतलाता है. कोई बाइस हजार अट्ठाइस फुट बतलाता है और कोई बाइस हजार तीन सौ फुट ऊँचा बतलाता है।

परिश्रांत चित्त से प्रायः चार मील की चढ़ाई समाप्त करके जब हम लोग पहाड़ की चोटी पर पहुँचे, तब तीसरे पहर के चार बज गए थे। कैलास यात्रा के मार्ग-भ्रमण में यात्रियों के लिये यही सबसे ऊँची चढ़ाई है। इसकी ऊँचाई समुद्र-तल से प्रायः अठारह हजार पाँच सौ निन्यानबे फुट है। तिब्बती लोग इस स्थान को डोलमा ला और हिन्दू लोग गौरी कुंड का पहाड़ कहते। इस सबसे ऊँचे शिखर पर तिब्बती लोगों ने एक सूखे हुए वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं में अनेक रंगों के कपड़ों के बहुत से टुकड़े, दो-तीन टूटे हुए सींग (जो शायद भैंसों के होंगे) और भेड़ों के बहुत से बाल बाँध रखे हैं। यह मानों इस स्थान का जय-चिह्न है। हमारे साथ के तिब्बती झब्बूवालों ने अव्यक्त रूप से कुछ मंत्रों का उच्चारण करते हुए उस स्थान की प्रदक्षिणा की थी। उस समय तिब्बती यात्रियों का एक दल भी इसकी प्रदक्षिणा करके आगे चला गया था।

एक तो समय बहुत कम था और दूसरे रात के समय यहाँ असह्य जाड़ा पड़ता था, इसलिये यहाँ रहना असंभव समझकर यात्री लोग जल्दी जल्दी गौरी कुंड के स्थान देखने लगे। यहाँ से कुछ नीचे हम लोगों के दाहिने भाग में यह

कुंड बिलकुल बरफ से भरी हुई अवस्था में शोभा पा रहा था। इसकी परिधि प्रायः चार फरलांग होगी। जिस समय हम लोग नीचे उतरकर इसका जल स्पर्श करने गए थे, उस समय प्रायः एक फुट मोटी बरफ की तह लकड़ी से तोड़नी पड़ी थी। यह बरफ अनंत काल से इस जल के ऊपर जमा हुआ तैर रहा है। कैलास का पिनाक से ढका हुआ तुषार बराबर यहाँ तक आकर इस कुंड से मिला है।

कैसे अपूर्व और शुभ्र सौंदर्य का विस्तार था! इतनी ऊँचाई पर चढ़ने के बाद पिनाक से मिला हुआ और तुषार से ढका हुआ सुंदर गौरी कुंड देखकर इसकी चिर-सुंदर उज्ज्वलता से आँखें मानों चौंधिया जाती हैं। इस लौकिक जीवन का पाप से भरा हुआ हृदय इस तुषार-कुंड के निर्मल जल के स्पर्श से पल भर में ही उज्ज्वल और सुंदर हो जाता है। उस दिन सब लोगों को मंत्र-मुग्ध के समान उस रजत-गिरि पर सदाशिव त्रिलोचन के उज्ज्वल अंक में दिव्य आभूषणों से भूषित गौरी देवी की अनुपम और दिव्य मूर्त्ति वास्तव में चित्र के समान जान पड़ती थी। वह दृश्य कभी भूलने योग्य नहीं है। अपना देश, बंधु-बांधव, आत्मीय और स्वजन आदि सब कुछ छोड़कर जाने-वाले यात्रियों के हृदय में उस दिन मानों सचमुच शिव-लोक का सान्निध्य आ उपस्थित हुआ था। वह कैसा मधुर जाग्रत-स्वप्न था!

रंजन की घबराहट से सब लोग चौंक पड़े। उस समय वरफ गिरने की आशंका हो रही थी, इसलिये वहाँ हम लोग अधिक न ठहर सके। इसके सिवा अभी हम लोगों को कम से कम दो मील उतराई उतरकर आगे पहुँचना था। दीदी और उनके साथ की स्त्री ने उस पवित्र कुंड में पंचरत्न डाले थे। कुछ लोगों ने शीशियों में वहाँ का जल भी भर लिया। इसके वाद इस सुंदर और शुभ दृश्य को छोड़कर हम लोग धीरे धीरे उतराई उतरने लगे।

घोड़े या झब्बू पर सवार होकर यह उतराई उतरना किसी प्रकार सम्भव नहीं। इसलिये सब लोग पैदल ही बड़ी सावधानी से और जहाँ तक हो सकता था जल्दी जल्दी यह रास्ता पार करके प्रायः दो मील आगे बढ़ गए। संध्या होने के कारण अंधकार हो गया था, इसलिये हम लोग और आगे न जा सके। एक झरने के किनारे सब लोग तंबू खड़े करने लगे। बड़े बड़े पत्थरों पर से होकर यहाँ आने में दीदी को बहुत कष्ट हुआ था। अंत में बाकी बचा हुआ थोड़ा सा रास्ता पार करने के लिये वे घोड़े पर बैठ गईं। कहाँ तो वे अपनी थकावट दूर करना चाहती थीं, और कहाँ उसके बदले में घोडे के कूदने-फाँदने के कारण दोबारा चोट लगी! पर इस संबंध में उनके साथ की स्त्री की सहिष्णुता और साहस सचमुच असाधारण था। कैलास-यात्रा के उस कठिन और ऊबड़-खाबड़ रास्ते में (अवस्था इकसठ वर्ष से

अधिक होने पर भी) घोड़े की पीठ पर सवारी करने पर भी उन्हें कहीं कोई जख्म नहीं लगा था।

हमारे तंबुओं के पास ही जमीन पर इधर-उधर बरफ जमा हुआ पड़ा था और जमीन बिलकुल भींगी हुई और गीली थी; और अंधकार होने के कारण हम लोग यहाँ से आगे भी नहीं जा सकते थे। यही सब बातें सोचकर वह रात हम सब लोगों ने एक प्रकार से जल पर कंबल बिछाकर ही बिताई थी। प्रायः बात-चीत में लोग कहा करते हैं कि यहाँ तो कैलास का सा जाड़ा पड़ता है। कदाचित पाठकों को बतलाना न पड़ेगा कि उस कैलास के जाड़े का हम लोगों ने उस दिन प्रत्यक्ष अनुभव किया था।

परिक्रमा की दूसरी रात यहीं बिता कर तीसरे दिन सबेरे नौ बजे के अंदर ही हम लोग फिर रवाना हुए। उस दिन आकाश में खूब बादल छाये हुए थे। रास्ते में कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर पानी बरसने लगा। यह कहना व्यर्थ ही है कि इन सब स्थानों में जरा सा पानी बरसने पर भी ओले पड़ने लगते हैं। इस संबंध में प्राचीन महाभारत में भी यथेष्ट उल्लेख है। यथा —

ततोऽश्वसहिता धाराः संवृण्वन्त्यः संमततः।
प्रपेतुरनिशं तत्र शीघ्रवातसमीरिताः॥

—वनपर्व, १४३वाँ अध्याय

इस अश्व-सहित धारा अर्थात् शिलावृष्टि में से ही होकर कुछ लोग घोड़ों पर, कुछ लोग झब्बुओं पर और कुछ लोग पैदल ही परिक्रमा-कार्य समाप्त करके आगे बढ़े। रास्ते में हम लोगों को दाहिने हाथ चौथी गुफा और एक मठ दिखलाई पड़ा। यद्यपि इस मठ से कई लामाओं ने हम लोगों को उँगली के इशारे से अपनी ओर बुलाया था, लेकिन हम लोग उनके पास नहीं गए। निर्दिष्ट मार्ग से होते हुए कोई चार बजे के करीब फिर उसी लंबे-चौड़े मैदान में पूर्व-निर्दिष्ट स्थान पर आ पहुँचे। यात्रियों का जो सामान यहाँ रंजन की मारफत एक आदमी के पास रखा हुआ था, वह सब फिर आ गया। वह रात थोड़ी थोड़ी वृष्टि और विलक्षण तेज हवा में तंबुओं में ही बिताई गई।

—:※:—

आठवाँ पर्व

प्रत्यावर्त्तन

इतने दिनों के बाद आज इस फुटू नामक स्थान से हम लोगों का वापसी सफर शुरू हुआ। पहाड़ के बाद पहाड़ लाँघते हुए और बराबर रास्ते के अनेक प्रकार के कष्ट सहते हुए तथा उन सब कष्टों को सार्थक समझते हुए दूसरे दिन साढ़े नौ बजे क लगभग हम लोग वहाँ से रवाना हुए। हम लोगों ` साथ चारों पंजाबी यात्रियों ने यहाँ से दूसरा रास्ता पकड़ा। वे लोग लिपूलेक के पास से न जाकर जोहार के रास्ते होते हुए ज्ञानिमा मंडी से आलमोड़े जाना चाहते थे। मैंने सुना कि हम लोग जिस रास्ते से जाना चाहते हैं, उसकी अपेक्षा इस रास्ते से अलमोड़े पहुँचने में कम दिन लगते हैं। पर उस रास्ते में लिपूलेक की तरह दो-तीन दुर्गम स्थान पड़ते हैं, जैसे कुंगरी बिंगरी का दर्रा, उटाधुई का दर्रा, जयंती का दर्रा आदि। हम लोग उसी रास्ते से लौटना चाहते थे जिस रास्ते से गए थे, इसलिये इन लोगों को विदा करते समय हम लोगों को यह देखकर मन में दुःख होता था कि हम लोगों की संख्या धीरे धीरे कम होती जा रही है। इन पंजाबी यात्रियों में से एक का मैं विशेष रूप से उपकृत था। उनका

नाम यज्ञदत्त नागपाल था और वे मुलतान शहर के रहनेवाले थे। कैलास-यात्रा के दुर्गम रास्तों के अधिकांश चित्र मैं इन्हीं की कृपा से प्रकाशित करने में समर्थ हुआ हूँ। अस्तु। इस दिन प्रायः बारह-तेरह मील रास्ता पार करके संध्या छः बजे के लगभग हम लोग फिर रावण ह्रद के पास पहुँचे। पर उस समय हम लोग मानसवाले रास्ते से नहीं गए। कोई ग्यारह बजे के करीब परखा को बाईं ओर छोड़ते हुए और उस लंबे-चौड़े मैदान को धीरे धीरे पार करते हुए तीन बजे चढ़ाई चढ़ने लगे। इसके बाद संध्या को पाँच बजे के करीब रावण ह्रद के उत्तर-पूर्ववाले कोने से होते हुए दक्षिण-पूर्व की ओर आकर तंबू खड़े किए गए। आते समय चढ़ाई पर से हम लोगों को बाईं ओर मानस सरोवर के नीले जल का कुछ अंश एक बार फिर दिखलाई पड़ा था। यदि हम यह कहें कि प्रकृति के राज्य में ये दो रम-णीय ह्रद बहुत पास ही पास विराज रहे हैं तो कोई अत्युक्ति न होगी। जापानी पर्यटक कावागुची ने इस संबंध में कहा है—

"A mountain, some two and a half miles round at the base, stands like a wall of partition between the two lakes and where this mountain slopes into a ravine it looks, for all the world, as though there were a

channel of communication for the water from one lake to the other,"

—Three Years in Tibet, page 147.

अर्थात्—"एक पर्वत, जिसका तल प्रायः ढ़ाई मील का है, इन दो भीलों के बीच में विभाग करनेवाली दीवार की तरह खड़ा है; और वहाँ यह पर्वत बराबर ढालुआँ होता हुआ एक ऐसे नाले के रूप में हो गया है जिसे देखने से जान पड़ता है कि यह एक भील को दूसरी भील से जोड़नेवाली प्रणाली है।"

—तिब्बत में तीन वर्ष पृ० १४७

आगे चलकर उन्होंने यह भी कहा है— The relations between the two lakes are those of husband and wife" अर्थात्—"इन दोनों ह्रदों में पति और पत्नी का संबंध है।" रावण ह्रद के आस-पास घूमने के समय आपने अपनी पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि गंगाजी की उत्पत्ति यहीं से हुई है—

"Keeping lake Lakgal (Rakshas Tal) in view, I now proceeded easily downhill for some thirteen miles or so until I arrived at a plain through which I found a large river flowing, The river was over sixty feet

wide and was known as the Mabcha Khanbab, one of the tributary sources of the Ganga."

—Three Years in Tibet., page 147.

अर्थात् —"लकगल ह्रद (राक्षस ताल) को अपनी दृष्टि के सामने रखता हुआ मैं करीब तेरह मील तक पहाड़ से सहज में नीचे उतर गया और तब मैं एक ऐसे मैदान में पहुँचा जिसमें मुझे एक बड़ी नदी बहती हुई मिली। यह नदी साठ फुट से अधिक चौड़ी थी और मबचा खनबब के नाम से प्रसिद्ध है जो गंगा की आरंभिक सहायक नदियों में से एक है।"

—तिब्बत में तीन वर्ष, पृ० १४७

परंतु मुझे यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। यह बात ठीक भी हो सकती है और गलत भी। अस्तु। तीर्थ-यात्रियों की तरह हम लोगों ने इस रावण ह्रद के किनारे फिर एक और रात बिताई थी।

दूसरे दिन अर्थात् ११ श्रावण को प्रायः दस बजे सब लोग इस ह्रद को पीछे छोड़कर आगे बढ़े। उस दिन कोई दस-ग्यारह मील रास्ता चलकर एक झरने के किनारे हम लोगों ने रात बिताई। इसके बाद दूसरे दिन उसी पुराने रास्ते से होते हुए जब हम लोग संध्या से कुछ पहले ही तकला कोट गाँव में पहुँचे, तब वहाँ की मंडी या बाजार का काम खूब जोरों से चल रहा था। कर्णाली नदी के दोनों

किनारों पर बहुत से तंबू लगे हुए थे। रोजगारियों और खरीददारों की खूब चहल-पहल थी। बड़े बड़े रोओंवाली असंख्य भेड़ें और बकरियाँ खूब चिल्ला रही थीं। जब उनका मिमियाना सुनते हुए हम लोग फिर अपने उसी पुराने स्थान पर पहुँचे, तब अकस्मात् हम लोगों को ऐसा जान पड़ा कि अब हम लोग लौट कर फिर संसार में आये हैं।

यहाँ पहुँचने पर क्षण भर भी हम लोगों का मन नहीं लगा। रंजन के साथ यही परामर्श होने लगा कि जिस प्रकार हो, यहाँ से जल्दी ही आगे बढ़ना चाहिए। हम लोगों ने निश्चय किया कि तकला कोट के जो झब्बूवाले हम लोगों के साथ कैलास गए थे और वहाँ से वापस आए हैं, वही यदि हम लोगों को गार्बियांग तक पहुँचा सकें तो हम लोग कल सवेरे ही यहाँ से रवाना हो जायँ। यही समझ-कर रंजन ने इस संबंध में झब्बूवालों से सब बात-चीत पक्की कर ली।

गार्बियांग तक प्रत्येक घोड़े और झब्बू का भाड़ा सवा चार रुपए के हिसाब से तै हुआ था। इसके बाद उन घोड़ों और झब्बुओं का हिसाब चुकाया गया जो हम लोगों के साथ कैलास गये थे और वहाँ से वापस आए थे। प्रत्येक पशु का भाड़ा बारह रुपए के हिसाब से और संग ले जानेवाले प्रत्येक आदमी को तीन रुपए के हिसाब से मजदूरी दी गई और तब उन सबको विदा करके हम लोग निश्चिंत हुए।

दूसरे दिन सवेरे ठीक समय पर हम लोगों के लिये आठ घोड़े और आठ झब्बू आ पहुँचे। पंजाबी यात्री पहले ही दूसरे रास्ते से चले गए थे, इसलिये हम लोगों के दल में आदमी कम हो गए थे। इसके सिवा खाने-पीने की बहुत सी चीजें खर्च हो गई थीं जिससे बोझ भी घट गया था। इसके सिवा इस बार कई आदमी खुशी से पैदल ही चलना चाहते थे। कैलास हो आने के कारण उनके मन में बहुत कुछ साहस आ गया था। यद्यपि बारह-तेरह दिनों तक सब लोगों को रोज बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ा था और तिब्बत के जाड़े तथा पत्थर मिली हुई वर्षा में यात्रा करने के कारण सब लोगों की केवल नाक, मुँह और होठ ही नहीं फटे थे, वल्कि रंग भी बिलकुल काला पड़ गया था, तो भी घर लौटने की चिंता और उत्साह से सब लोग कितने प्रसन्न थे, यह कम से कम उन बंगालियों को बतलाने की आवश्यकता न होगी जिनकी घर जाने के समय की प्रसन्नता बहुत प्रसिद्ध है और विशेषतः जिन्होंने कुछ दिनों तक अपना देश बंगाल छोड़कर पर्वत-राज में प्रवेश किया है। पाठक-वर्ग स्वयं ही एक बार हम लोगों की अवस्था का अपने मन में अनुमान कर देखें। पहली बात तो यह थी कि प्रायः एक मास से अधिक हुआ था कि किसी को ठीक तरह से खाने को नहीं मिला था और सबको जीभ रुचि-परिवर्त्तन के लिये बिलकुल ही लुपलुपा रही थी। तिस पर से शरीर भी बिलकुल

तिब्बतियों की तरह एक दम से सूखा और रूखा हो गया था और तेल न मलने के कारण बिलकुल चरचरा रहा था। जो लोग बंगाल की समतल भूमि में रहते हैं, भला वे लोग ऐसी अवस्था कितने दिनों तक सहन कर सकते हैं! अतः अब लौटकर जल्दी घर पहुँचने के लिये प्रत्येक यात्री का अंतः-करण विलक्षण रूप से चंचल हो रहा था।

जहाँ तक हो सका जल्दी ही, अर्थात् नौ बजे से कुछ पहले ही, हम लोग यहाँ से रवाना हो गए। पाला से कोई छः सात मील दूर आगे निकल जाने पर हम लोग तंबू लगाने के लिये विवश हुए। उस दिन झब्बूवाले और आगे नहीं बढ़ना चाहते थे। इसका कारण यही था कि यदि कुछ दूर आगे बढ़ते तो रात लिपूलेक के पास ऐसी जगह बितानी पड़ती जहाँ बरफ पड़ने के कारण बहुत अधिक सरदी होती थी। एक तो वहाँ इतना अधिक जाड़ा पड़ता था जिसे सहन करना बहुत ही कठिन था। तिस पर वे लोग इस बार अपने साथ तंबू आदि भी नहीं लाए थे। लाचार होकर लिपू से दो मील पहले ही रुककर रात बिताई गई।

दूसरे दिन लिपूलेक पार करने की बारी थी। सबेरे ही सब लोगों ने अपना अपना असबाब झब्बुओं पर लाद दिया और रवाना हुए। स्वामीजी यह कहकर जल्दी जल्दी आगे बढ़े कि धूप निकलने से पहले ही लिपूलेक पार कर लेना आवश्यक है। जब हम लोग घोड़े पर सवार

होकर कुछ दूर आगे बढ़े, तब दूर से ही बरफ से ढके हुए लिपू के शुभ्र शृंग आदि दिखाई पड़ने लगे। आज वे शृंग हम लोगों के मन में आतंक उत्पन्न कर रहे थे। क्या यह रास्ता इतने ही अनर्थों का मूल था? स्वामीजी के साथ के कुछ लोग उस चढ़ाई पर चढ़ने लगे थे। हम लोग सोचने लगे कि क्या हम भी इसी प्रकार यह चढ़ाई चढ़ने में समर्थ न होंगे? प्रायः उन्नीस हजार फुट ऊँचा गौरी कुंड पहाड़ हम लोग पार कर आए थे और लिपू की ऊँचाई उसके सामने बहुत कम थी। तो फिर हम लोगों के इतने चिंतित होने का क्या कारण था? अवश्य ही इसका कारण है। हम लोगों को इतना अधिक भय इसी लिये था कि इतने अधिक जाड़े में इस ऊँचे-नीचे रास्ते में बरफ पर चलना पड़ेगा। गौरी कुंड की चढ़ाई के रास्ते में हम लोगों को कहीं बरफ पर नहीं चलना पड़ा था; इसी लिये वह रास्ता हम लोगों को उतना अधिक दुर्गम नहीं जान पड़ा था।

हम लोग लिपू के जितना ही अधिक पास पहुँचकर उस चढ़ाई के रास्ते पर आगे बढ़ते थे, उतना ही अधिक जाड़ा जान पड़ता था। घोड़े की पीठ पर बैठे बैठे हम लोगों के हाथ-पैर धीरे धीरे सुन्न होने लगे थे। प्रायः दो मील आगे बढ़ने पर हम लोग बरफ के सामने पहुँचे। उस समय धूप का कहीं नाम नहीं था (यदि धूप होती तो शरीर कुछ गरम रहता), तो भी दिन अधिक चढ़ आया था। ऐसा

जान पड़ता था कि मौका देखकर सूर्यदेव आज कहीं छिप गए हैं। सिर के ऊपर केवल घने बादल थे जो मानों उसी जाड़े में वहीं जम गए थे। ऐसे अवसर पर एक ऊँचे स्थान पर से कूदते समय मेरे घोड़े ने मुझे साज समेत अपनी पीठ पर से नीचे गिरा दिया।

वहीं मैं पहले-पहल घोड़े की पीठ पर से नीचे गिरा था। जो श्रीमान् नित्यनारायण अपने घर रोज घोड़े पर सवार हुआ करते थे, वे भी अब तक इस यात्रा में दो-तीन बार घोड़े पर से नीचे गिर चुके थे। लेकिन मैं कुछ अभिमान के साथ कह सकता हूं कि यात्रियों ने मेरे जैसे अनभ्यस्त घुड़-सवार को एक बार भी घोड़े की पीठ से नीचे गिरते नहीं देखा था। लेकिन आज लौटते समय लिपू की चढ़ाई चढ़ने की अवस्था में कैलास-पति ने मेरा वह अभिमान बिलकुल दूर कर दिया था। ऐसे कठिन समय में भी अन्यान्य यात्रियों के मुख पर उस समय हँसी देखकर मैं बहुत ही लज्जित हुआ। यद्यपि मेरे घुटनों और हाथों में कई जगह चोट आई थी और थोड़ा-बहुत खून भी निकला था, पर उससे मुझे जो कष्ट हुआ था, वह उस कष्ट की अपेक्षा मुझे बहुत कम जान पड़ा जो उस समय इतने दिनों का अभिमान चूर्ण होने के कारण मुझे अचानक हुआ था। अस्तु। मैंने जेब में से जंबक निकालकर उसी समय घावों पर लगा लिया और फिर वीरों की तरह आगे बढ़ना आरंभ

किया। पर इस बार मैं घोड़े पर सवार नहीं हुआ—पैदल ही चलने लगा।

घोड़ेवाले (तिब्बती) ने मेरी दुर्दशा दूर से ही देख ली थी उसके पास पहुँचने पर मैंने उसको इस बात के लिये बहुत फटकारा कि उसने घोड़े का साज अच्छी तरह क्यों नहीं कसा था। पर दुःख की बात है कि उसने मेरी डाँट-फटकार की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। बल्कि इसके प्रति-वाद स्वरूप वह स्वयं ही उस समय घोड़े पर सवार हो गया। कदाचित् यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि जिस चढ़ाई पर घोड़ा लेकर चलना कोई सहज काम नहीं है, उसी रास्ते पर वह घोड़े पर सवार होकर अनायास ही बरफ के पास तक पहुँच गया था। उस समय और यात्रियों के साथ मैं भी पैदल ही धीरे धीरे वह बरफ का रास्ता पार करने लगा। मैंने देखा कि जाने के समय इस रास्ते में जितना अधिक बरफ था, उसकी अपेक्षा इस समय कुछ भी कम नहीं हुआ था। यदि इस बरफीले रास्ते पर चलने के समय साहस, धैर्य और सावधानी न रखी जाय तो पग पग पर पैर फिसलता है। उस दिन कई आदमी इस बरफ पर फिसलकर गिर पड़े थे। वहाँ स्त्रियों की जो दुर्दशा हुई, उसका तो जिक्र न करना ही अच्छा है। जब वे एक बार पहला पैर उठाकर आगे बरफ पर रखती थीं, तब उस पैर पर शरीर का सारा जोर देकर ऊँचाई पर चढ़ने के लिये वे दूसरा पैर उठा ही

नहीं सकती थीं। बरफ पर ऊँचे-नीचे रास्ते में चलने से यही दुर्दशा होती है। एक आदमी तो आगे से उनका हाथ पकड़ता था और दूसरा आदमी उन्हें पीछे से सहारा देता था, तब कहीं वे आगे बढ़ सकती थीं। हम लोग भी किसी तरह चलकर सबसे ऊँचे स्तर पर पहुँचे। इतनी देर के बाद यात्रियों में से उत्तरपाड़ा के श्रीयुक्त चट्टोपाध्याय के मुँह से एक बात निकली। उन्होंने कहा—"इतनी देर बाद अब कहीं जाकर हम लोगों के पापों का प्रायश्चित्त समाप्त हुआ है।" उन्होंने यह बात बहुत ही दुखी होकर मुँह से निकाली थी। पर इससे भी बढ़कर दुःख की बात यह थी कि यात्रियों में से कोई अभी तक यह नहीं जानता था कि वह प्रायश्चित्त उस समय भी पूरा नहीं हुआ था। अभी उसका कुछ अंश बाकी था। इसका विवरण पाठकों को समय आने पर फिर मालूम होगा।

जिस समय हम लोग अपने मन में अभिमान करते हुए लिपू की उतराई उतर रहे थे, उस समय एक अभावनीय दृश्य ने हम सब लोगों का दर्प चूर्ण कर दिया। हम लोगों ने देखा कि पाँच बरस का एक भोटिया बालक अपने कुछ संबंधियों के साथ इस दुर्गम बरफीली चोटी पर पैदल ही हँसता हुआ चढ़ता चला आ रहा है। उस वीर बालक का साहसपूर्वक उस प्रकार चलना हम लोगों के स्मृति-पट पर सदा अंकित रहेगा।

प्रायः दो घंटे तक उस तुषार-समुद्र को मथन करने के उपरांत ढाई बजे के लगभग हम लोग उस पहाड़ से नीचे उतरे और घोड़े पर सवार होकर पाँच-छः मील रास्ता पार करके संध्या होने से कुछ पहले ही काला पानी नामक स्थान में जा पहुँचे। उस दिन सारे रास्ते यात्रियों को वर्षा के जल में भींगना पड़ा था। रास्ते के आस-पास सारी जगह बिलकुल गीली थी, इसलिये उस दिन हम लोगों ने तंबू खड़े करने का विचार छोड़ दिया। एक भोटिया महाजन (कल्याणसिंह) का एक दो मंजिला मकान बिलकुल खाली पड़ा था और उसकी रखवाली के लिये एक स्त्री नियुक्त थी। उसी को कुछ बख्शीश देकर हम लोगों ने वह रात उसी मकान में बिताई।

दूसरे दिन साढ़े आठ बजे से कुछ पहले ही हम लोग वहाँ से रवाना हो गए। हम लोगों में से तीन यात्रियों के तीन घोड़े लिपू के रास्ते में चोट खा गए थे और इसलिये यहाँ से आगे चलने में असमर्थ हो गए थे। उनका आधा भाड़ा, अर्थात् प्रत्येक को दो रुपए के हिसाब से, चुकता करके उन लोगों को वहाँ से बिदा किया। गार्वियांग यहां से प्रायः ग्यारह-बारह मील का रास्ता होगा। हम लोगों ने पैदल ही चलकर जल्दी जल्दी वह रास्ता पार किया और प्रायः डेढ़ बजे गार्वियांग पहुँचे। अब फिर वही काली नदी पार करनी पड़ी। ठीक वर्षा ऋतु थी, इसलिये उसका

विस्तार प्रायः दूना हो गया था। उस समय उस पर छोटा पुल नहीं था, बल्कि उसके बदले में बड़े बड़े चीड़ के पेड़ों के तनों का बना हुआ एक दूसरा बड़ा पुल था। उसे पार करते समय उस नदी का भीषण गर्जन सुनाई पड़ता था। हम लोग तो कुछ आगे पहुँच गए थे, पर दूसरे सवार यात्रियों और झब्बूवालों को उस दिन गार्बियांग पहुँचने में बहुत देर हुई थी। हम लोगों ने वहाँ के पटवारी से आज्ञा लेकर वहाँ के डाक-बँगले में डेरा डाला। वह बँगला बहुत अच्छा था और उसका ठाट-बाट बिलकुल अँगरेजी था। पक्की इमारत थी और उसमें सोने के लिये दो-तीन कमरे थे। सब कमरे बहुत ही साफ और अच्छे थे। एक ओर थोड़ी दूर पर तीन-चार छोटी छोटी कोठरियाँ थीं। यात्री लोग उन्हीं में रसोई बनाया करते थे। सामने चारदीवारी से घिरा हुआ एक लंबा-चौड़ा आंगन था। मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि गाँव के रहनेवालों ने इधर-उधर चारों तरफ मल-मूत्र त्याग करके सारा स्थान दुर्गंधमय कर रखा था। लेकिन गाँव से कुछ दूर पर का यह स्थान बिलकुल साफ और सारी दुर्गंध से रहित था। इतने दिनों के बाद रहने योग्य एक अच्छा स्थान पाकर सभी लोग निश्चिंत और प्रसन्न हुए।

रंजन अपने गाँव में पहुँचते ही यात्रियों को आराम पहुँचाने की चिंता में लग गया। इधर कई दिनों से हमारे साथ के यात्रियों के पास की कई चीजें कम हो रही थीं।

उन लोगों ने यहाँ पहुँचकर चावल खरीदा। लेकिन तरकारी के लिये अभी तक सबको चिंता लगी ही हुई थी। बड़ी कठिनता से हम लोगों के नौकर पानसिंह ने चार आने में फूल गोभी के कुछ फूल खरीदे थे जिनमें शायद आधी भी गोभा न थी। उस दिन बहुत अधिक भूख लगने के कारण प्रायः लोगों ने मठे के साथ ही चावल आदि खाया। अनुभवानंदजी ने उस दिन पोस्ट मास्टर के पास जाकर और हम सब लोगों की चिट्ठियाँ लाकर हम लोगों को अनुगृहीत किया था।

यहाँ पहुँचते ही सब यात्रियों को अपना अपना घर याद आने लगा। लेकिन बोझ ढोने के लिये वहाँ कोई कुली न मिलता था। कैलास जाने से पहले ही स्वामीजी महाराज ने तकला कोट से गार्वियांग के रहनेवाले-एक भोटिया बनिए की मारफत पत्र के द्वारा धारचूला में खबर भेज दी थी। उस पत्र में लिखा था कि गार्वियांग से कुली लोग आकर दो या तीन अगस्त को वहाँ पहुँच जायँ और हम लोगों की प्रतीक्षा करें। पाठकों को स्मरण होगा कि धारचूला में पहले से ही कुलियों की मजदूरी ठीक करके उन्हें एक रुपया पेशगी दिया गया था। पर हम लोग यहाँ निर्दिष्ट समय से एक दिन पहले ही अर्थात् १ अगस्त को, पहुँच गए थे। इसलिये हम लोगों को और भी दो-एक दिन यहाँ कुलियोंका इंतजार करना पड़ा था।

दूसरे दिन सवेरे ही रंजन यह खबर लाया कि नीर-पानी का पुल टूट गया है। सरकारी डाक के आने-जाने के लिये पहाड़ के ऊपर का रास्ता ठीक किया जा रहा है। समाचार सुनते ही सब लोगों पर मानों वज्र सा टूट पड़ा। यदि हम लोग यहाँ और दो तीन दिन पहले पहुंचे होते तो इसी पुल के द्वारा बहुत अच्छी तरह पार हो सकते थे। लेकिन उस लीलामय भगवान् की लीला समझने की सामर्थ्य मनुष्य में नहीं है। इसलिये सब लोग किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गए और यात्रा की चिंता करने लगे।

आज हम लोगों ने अपने तिब्बती झब्बूवालों को उनका भाड़ा चुकाकर छुट्टी दे दी। अब आगे तंबू की कोई आवश्यकता न रह गई थी, इसलिये किराये पर हम लोगों ने जो तंबू लिया था, वह उसे लौटाकर उसका छः रुपया किराया चुका दिया। अब कैलास-दूत रंजन को विदा करने की बारी आई। हिसाब करने पर मालूम हुआ कि आज दिन तक उसकी बीस दिन की तनखाह बाकी निकलती है।

डेढ़ रुपए रोज के हिसाब से बीस दिनों की कुल तनखाह-तीस रुपए होती थी। तीनों दलों के जिम्मे दस दस रुपए आते थे। तदनुसार प्रत्येक दल ने दस दस रुपए दिये। इसके सिवा गार्वियांग से लौटते समय हममें से प्रत्येक दल ने उसे दो-दो रुपये इनाम के तौर पर दिये थे। वह बहुत ही हँसमुख था, सदा हँसता रहता था और उसका

व्यवहार भी बहुत ही नम्रतापूर्ण तथा मधुर था जिससे कैलास-यात्रा के मार्ग में उसने हम सभी लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर रखा था।

इधर नीरपानी पहाड़ के नीचेवाले पुल के टूटने का समाचार पाकर हम लोगों ने सोचा कि शायद कुलियों को यह भय हुआ होगा कि बोझ ऊपरवाले रास्ते से ढोकर ले जाना होगा; और इसलिये हम लोगों को संदेह हुआ कि शायद कुली लोग धारचूला से न आवें। इसलिये हम लोगों ने यहाँ से लौटने के लिये दूसरे कुलियों को ढूँढ़ना आरंभ किया। बड़ी कठिनता से दूसरे दिन फी कुली आठ रुपए के हिसाब से मजदूरी ठीक करके केवल तीन कुली मुकर्रर किए, क्योंकि इससे अधिक कुली वहाँ मिलते ही न थे। इतने बड़े दल का सामान केवल तीन कुली कैसे ले चलेंगे और वे कै मन माल उठा सकेंगे? सच पूछिए तो केवल हमारे दल के लिये ही अठारह कुलियों की आवश्यकता थी; क्योंकि हमारे साथ दो स्त्रियाँ भी थीं जो एक प्रकार से सामान की ही तरह थीं। लाचार डाक्टरों का दल, जिसमें केवल तीन आदमी थे, इन कुलियों को अपने साथ लेकर आगे जाने के लिये तैयार हुआ। उनके पास इस आशय का पत्र आ चुका था कि घर पर उन लोगों के न रहने के कारण बहुत हर्ज हो रहा है। ऐसी अवस्था में हम लोगों ने भी उनसे कुछ कहना उचित न समझा। केवल अनुभवानंदजी ने

इतना कहा था कि नीरपानी के ऊपरवाला रास्ता बहुत ही विकट है। तिस पर आजकल वर्षा हो रही है। वह रास्ता भी पुराना है और उस पर बहुत ही थोड़े आदमी आते-जाते हैं। ऐसे भीषण मार्ग में पैर फिसलने के कारण पग पग पर प्राण जाने की बहुत बड़ी आशंका है। इसलिये तीनों डाक्टरों के साथ वे भी हो लिए। इच्छा न होने पर भी हम लोगों में से कोई इस निश्चय के विरुद्ध कुछ न बोल सका। यहाँ कुलियों का विशेष अभाव देखकर सब लोगों के परामर्श से अंत में यही निश्चित हुआ कि स्वामीजी आगे धारचूला पहुँचकर हमारे पहले के ठीक किए हुए कुलियों को, जिनमें से प्रत्येक को एक रुपए के हिसाब से पेशगी दिया जा चुका था, डाँट-डपटकर जल्दी ही वहाँ से रवाना कर देंगे। यही सब बातें सोचकर तीनों डाक्टरों के साथ उन लोगों को भी छोड़ दिया गया। जाने से पहले उन्होंने यह भी कहा था कि नीरपानीवाले पहाड़ के ऊपर से जाने के लिये दोनों रास्तों में से कौन सा रास्ता अधिक विकट है और किसमें अधिक विपत्तियों के आने की संभावना है, यह हम डाक के हरकारे की मारफत पत्र के द्वारा आप लोगों को सूचित कर देंगे; और उनका पत्र पाने पर हम लोग यह निश्चय करेंगे कि हम किस रास्ते से जायँगे।

यहाँ हम प्रत्येक पाठक को इस विषय में एक बात और भी अधिक स्पष्ट करके बतला देना आवश्यक समझते हैं।

नीरपानी पहाड़ के नीचेवाला पुल (साधारण अवस्था में जिस पर से होकर प्रायः सब लोग आते जाते हैं) टूट जाने के कारण पहाड़ के ऊपर से जाने के लिये जो दो रास्ते मिलते हैं, उनमें से एक को बीच का रास्ता और दूसरे को ऊपर का रास्ता कहते हैं। नीचेवाले रास्ते की अपेक्षा बीचवाले रास्ते से जाने में छः मील और ऊपरवाले रास्ते से जाने में सात मील रास्ता और भी अधिक चलना पड़ता है। इन दोनों रास्तों में से किस रास्ते से होकर जाना अपेक्षाकृत निरापद है, यही बात स्वामी जी आगे पहुँचकर वहाँ से डाक के हरकारे की मारफत पत्र के द्वारा बतलाने के लिये कह रहे थे।

गार्बियांग से तीनों डाक्टरों को बिदा करते समय हम सभी लोगों को बहुत दुःख हुआ था। जो यात्री इतने दिनों तक ऐसे दुर्गम मार्ग में हम लोगों के साथ रहे थे, जो सुख और दुःख में सदा हम लोगों के साथ रहते थे, वे जब आधे रास्ते से ही हम लोगों का साथ छोड़ने लगे, तब भला उस समय किसका मन शांत रह सकता था! हम लोग समझते थे कि स्वामीजी को तो हम लोग धारचूला पहुँचते ही शीघ्र देख सकेंगे। किंतु डाक्टरों का दल तब तक कलकत्ते जा पहुँचेगा। चलने के समय डाक्टर लोग अपने साथ अपने उस रसोइए को भी लेते गए जिसे वे अपने साथ अलमोड़ेसे लाए थे।

दूसरे रोज की रात किसी प्रकार काटे न कटती थी। तीसरे दिन बहुत जोरों का पानी बरसा। अब वह तिब्बत नहीं

रह गया था जहाँ थोड़ा सा ही पानी बरसकर निकल जाता था। यहाँ दिन भर पानी बरसता था, जिससे कोई घरसे बाहर ही न निकल सकता था। इस अपरिचित पहाड़ी प्रदेश में इस प्रकार दिन भर चुपचाप एक ही स्थान पर बैठे रहना बहुत ही कष्टकर जान पड़ता था। हम लोगों के यहाँ आगे बढ़ने में सबसे बड़ी कठिनता यही थी कि हम लोगों के साथ बहुत अधिक असबाब था; और उस असबाब का इन्तजाम करने के लिये बार बार वही कुली याद आते थे। इन पहाड़ी कुलियों की शक्ति भी धन्य है। उस शक्ति ने समतल देश के रहनेवाले बंगालियों को बिलकुल चकित कर दिया था। जिन चढ़ाइयों और उतराइयों पर साधारण रूप से चढ़ने और उतरने में भी नियमित हम लोगों का हाथ पकड़ती थी, वैसे वैसे पाँच-सात मील लंबे दुर्गम रास्तों में ये सब पहाड़ी पीठ पर भारी बोझ लादकर, नाम मात्र मजदूरी लेकर यात्रियों को अनायास ही पार पहुँचा देते हैं। तीर्थ-यात्रा का पुण्य तो यही लोग ले लेते हैं। यदि इन पहाड़ी कुलियों की सहायता न मिलती तो बंगालियों के लिये इस तीर्थ की यात्रा करना असंभव हो जाता।

४ अगस्त को तीसरे पहर तक आसरा देखने पर भी जब हम लोगों के पहले से ठीक किए हुए कुलियों का कोई समाचार न मिला, तब कुली ठीक करने के लिये सभी लोग स्थानीय पोस्ट मास्टर की शरण में गए। वे नए ढंग के

और बहुत ही सदाशय सज्जन थे। कैलास जाने के समय भी हम लोगों को उनके सौजन्य का यथेष्ट परिचय मिल चुका था। हम लोगों के लिये कुली का अभाव देखकर वे पहले से ही कुली तलाश कर रहे थे। उनके प्रयत्न से उस दिन एक सरदार ने हम लोगों के लिये कुली ठीक करना मंजूर कर लिया। पोस्ट मास्टर के कहने के अनुसार हम लोगों ने इस काम के लिये प्रत्येक कुली को एक रुपया पेशगी देने के लिये सोलह रुपए दे दिए। रुपए लेकर सरदार ने संध्या होते होते आठ-दस कुली ठीक कर लिए। नीरपानी का पुल टूट गया था, इसलिये सबको ऊपरवाले विकट मार्ग से जाना था; इसलिये प्रत्येक कुली नौ रुपये मजदूरी माँगता था।

हम लोग घर पहुँचने के लिये अधीर हो रहे थे। धार-चूला में कुलियों के साथ फी कुली छः रुपया तै हुआ था। पर आज यहाँ कुछ और ही अवस्था उत्पन्न हो गई थी, इसलिये सरदार के कहने के अनुसार फी कुली नौ रुपए देने पड़े थे। इसके बाद जब सरदार यह कहकर चला गया कि बाकी कुली कल तक ठीक हो जायँगे, तब हम सब लोग मानों निश्चिंत हुए।

दूसरे दिन दोपहर को आकर सरदार कह गया कि सब कुली ठीक हो गए हैं। वे लोग कल सबेरे आकर बोझ आदि ठीक कर लेंगे। इधर ठीक उसी दिन संध्या समय धारचूला से कुलियों के सरदार ने अपने दल-बल सहित

आकर हम लोगों को सलाम किया। इससे सब लोग बहुत ही मुश्किल में पड़ गए। दोनों ही दलों के कुलियों को पेशगी रुपये दिए जा चुके थे। ऐसी अवस्था में यह बात-चीत होने लगी कि इनमें से किस दल को अपने साथ ले जाने में आर्थिक दृष्टि से हम लोगों की हानि न होगी। कदाचित् यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि पोस्ट मास्टर साहब को मध्यस्थ मानकर हम लोगों ने इस संबंध में निर्णय करने का भार उन्हीं पर डाला। उन्होंने स्थानीय कुलियों के सरदार को बुलाकर उसके साथ बहुत कुछ कहा-सुनी करके अंत में निश्चित किया कि धारचूला से आए हुए पुराने कुली ही बोझ ढोकर ले जायँगे। पर हाँ, इस झगड़े में वे सोलह रुपए दंड-स्वरूप चले गए जो यहाँ के कुलियों को पेशगी के तौर पर दिए गए थे। इस प्रकार निर्णय हो जाने पर हम लोगों का किसी तरह छुटकारा हो गया। कुलियों का जो सरदार धारचूला से आया था, उसी के हाथ हम लोगों को अनुभवानंदजी का एक पत्र भी मिला था। उन्होंने वह पत्र गाला से भेजा था। उसमें लिखा था कि नीरपानी पहाड़ के ऊपर के दोनों ही रास्ते बहुत भीषण हैं। उनमें से बीचवाला रास्ता तो और भी अधिक भीषण है। उन्होंने यह भी लिखा था कि हम लोगों ने बीच के रास्ते से आकर बहुत बड़ी भूल की है; क्योंकि वह रास्ता ऐसा है जिससे होकर मनुष्य नहीं जा सकते।

उनकी आँखों के सामने ही एक साधु पहाड़ पर से लुढ़कता हुआ नीचे जा पड़ा था। पर एक पेड़ में अटक जाने के कारण बड़ी कठिनता से वह बच सका था। डाक्टरों में से नलिन बाबू की भी प्रायः वही दशा हुई थी। उनके रसोइए ने किसी तरह उनकी जान बचाई थी। उनके लिये तो यही एक आश्चर्य की बात थी कि वे किसी तरह जीते-जागते वहाँ से निकल गये थे। उन्होंने यह भी लिखा था कि आप लोग बहुत ही सावधान होकर ऊपर के ही रास्ते से आइएगा। इत्यादि।

वह पत्र पढ़ते ही मानों हम लोग आकाश से नीचे गिरे थे। उस समय हमारे साथ की दोनों स्त्रियों के मन की जो अवस्था हुई थी, उसका वर्णन स्वयं वही कर सकती हैं। जो हो, सब लोग दूसरे दिन ६ अगस्त, २० श्रावण को भोजन आदि करने के उपरांत प्रायः दस बजे कैलासपति का नाम लेकर गार्बियांग से चल पड़े।

यह गाँव पार करने के समय पहले ही उतराई मिली। वह रास्ता बहुत सँकरा भी था और उस पर कुछ दूर तक बहुत कीचड़ भी था। साथ ही जगह जगह उसमें बहुत फिसलन भी थी। सभी यात्रियों को आगे बढ़ने में बहुत अधिक कष्ट होता था। यहाँ एक कुली को बोझ समेत ठोकर लगी। ऐसी अवस्था में जब कि हम लोग भरी बरसात में घर लौट रहे थे, सूखा रास्ता पाने की आशा तो

दुराशा मात्र थी। फिर हम लोगों ने हरियाली से भरा हुआ वही लंबा मैदान पार किया। उसके बाद बारह बजे से कुछ पहले ही गार्वियांग की बड़ी उतराईवाला रास्ता पार करके हम लोग बूधी गाँव में पहुँचे। वहाँ सब लोगों ने थोड़ी देर तक विश्राम किया और तब फिर आगे बढ़े। जाने के समय हम लोगों को जो चढ़ाइयाँ मिली थीं; वही लौटने के समय उतराई हो गई थीं। आँखों के सामने पहाड़ों के पार का फिर वही हरे हरे जंगलों का दृश्य उपस्थित हुआ। अब वे तिब्बतवाले छोटे छोटे पहाड़ नहीं दिखाई पड़ते थे जिन पर वृक्ष या लताएँ नहीं होती थीं। वह नग्नतावाला दृश्य हम लोग पागल भोलानाथ दिगंबर के शैलावास के पास ही छोड़ आए थे। गार्वियांग पहुँचने से कुछ पहले अर्थात् काला पानी के पास से ही अब फिर यह नया दृश्य आरंभ हुआ था। हम लोग जितना ही आगे बढ़ते थे, रास्ता मानों उतने ही लंबे लंबे वृक्षों से ढकता जाता था। वे वृक्ष भी कोई साधारण वृक्ष नहीं थे, बिच्छू के वृक्ष थे। उन वृक्षों से प्रत्येक यात्री को प्रत्येक पग पर बहुत अधिक कष्ट होता था। हम लोगों के मन में घर लौटने का जो उत्साह था, उसमें वे वृक्ष कुछ भी सहायता नहीं पहुंचाते थे। काली नदी के किनारे किनारे उसका प्रचंड गर्जन सुनते सुनते वह लंबा रास्ता धीरे धीरे पार करते हुए हम लोग प्रायः तीन बजे एक बहुत ही भयानक दृश्य के सामने जा पहुँचे।

वहाँ कुछ दूर तक बहुत ही पतला और फिसलनवाला रास्ता था। उसके पास ही खूब ऊँचे ऊँचे पहाड़ खड़े थे जिन पर से वर्षा के जल के समान जल गिर रहा था। पाठकों को स्मरण होगा कि आते समय हम लोगों ने बहुत ही साव-धानता से वह रास्ता पार किया था। उस समय तक इस रास्ते पर इतनी अधिक वर्षा नहीं हुई थी। घोर वर्षा के कारण अब इस मार्ग ने और भी अधिक भीषण रूप धारण कर लिया था। यदि यहाँ पैर फिसलता तो अवश्य ही मृत्यु हो जाती। बात यह थी कि उस रास्ते की चौड़ाई दो हाथ से अधिक न थी। यदि कोई यहाँ गिर पड़ता तो वह मानों पाँच खंड ऊँचे मकान से नीचे गिरता और काली नदी में जाकर डूब जाता। इसके सिवा उसके लिये और कोई मार्ग ही न था।

स्वामीजी के साथ के दो-तीन आदमी पहले ही वह भयानक स्थान बहुत ही सावधानी से पार कर गए। इसके बाद बाँस के झोले पर बैठकर कुलियों के कंधे पर (प्रत्येक झोले में आगे और पीछे दो आदमी थे) दोनों स्त्रियाँ (अर्थात् जीवित लगेज) पार हुईं। उनके पीछे पीछे प्रायः आठ-दस हाथ की दूरी पर पीठ पर बोझ लादे हुए एक कुली चला जा रहा था। अचानक उस भयानक रास्ते के दोनों ओर से जोर की चिल्लाहट सुनाई पड़ी—"कुली गिर गया।" सभी लोग हतबुद्धि होकर अपनी अपनी जगह खड़े हो गए।

एक झोला उठानेवाले दोनों कुली उस समय दीदी के साथ की स्त्री को लेकर उस पार पहुँच गए थे और दूसरे झोलेवाले दोनों कुली उस फिसलनवाले रास्ते के अंतिम सिरे पर थे। अचानक यह सुनकर कि कुली गिर गया, उन दोनों कुलियों ने पलक गिरते ही उस फिसलनेवाले रास्ते पर, जिस पर ऊपर से जल की धारा बरस रही थी, स्त्री यात्री अर्थात् हम लोगों की दीदी को उतारकर रख दिया और वे दोनों ही उस विपद्पूर्ण रास्ते के उस पार चले गए। मारे भय के दीदी हम लोगों का नाम ले लेकर जोर से चिल्लाने लगीं। उस समय हम सब लोग उस भयानक रास्ते के इसी पार खड़े हुए थे। उधर से तुरंत शंकरनाथजी स्वामी लौटकर दीदी के पास आ पहुँचे और उनका हाथ पकड़कर उन्हें बाकी रास्ते के उस पार ले गए।

इधर प्रायः पाँच मंजिल की ऊँचाई से जो कुली नीचे काली नदी के प्रचंड प्रवाह में पीठ पर बोझ लिए हुए गिर पड़ा था, उसके पास तक किसी के पहुँचने के लिये किसी ओर से कोई मार्ग ही नहीं था। विवश होकर ऊपर से ही सब लोग हाय हाय करने लगे। नीचे जल पर स्थिर दृष्टि से दिखाई पड़ा कि पीठ पर बँधे हुए बोझ समेत (उस समय बोझ खोलने का कोई उपाय ही न था) वह बेचारा कुली अपनी सारी शक्ति लगाकर एक बार जल के ऊपर आया। पत्थरों की कड़ी चोट से उस समय उसके सिर और माथे

से लहू निकलकर नदी के जल को रक्त-रंजित कर रहा था। पर यह दृश्य केवल एक ही सेकेंड के लिया था। पलक गिरते न गिरते ही पीछे से एक बहुत बड़ी लहर ने आकर उसे उसी तुषार के समान शीतल जल में न जाने कहाँ डुबा दिया! आज तक जब कभी उसके लहू से भरे हुए चेहरे का ध्यान आता है तो सारा शरीर सिहिर उठता है।

जो कुली नीचे गिर पड़ा था, इसके पीछे पीछे सत्य स्वामी जी महाराज धीरे धीरे चल रहे थे। अचानक उस कुली को गिरते हुए देखकर वे भी जलधारा से पूरित उस फिसलनवाले रास्ते पर ही मारे भय के बैठ गए। सौभाग्यकी बात यही थी कि उनके शरीर का भार पहाड़ के पत्थरों पर ही पड़ा था; नहीं तो शायद उन्हें भी हम लोग खो ही बैठते।

इसके बाद हम सब लोग कैलासपति का नाम लेकर लाठी के सहारे धीरे धीरे उस रास्ते पर आगे बढ़ने लगे। सब लोग अपने पैरों पर ध्यान रखते हुए एक एक करके उस रास्ते से पार हुए। सिर के ऊपर से झरने की जो अजस्र धारा बह रही थी, उससे सब लोगों का सारा शरीर भीग गया। लंबा-चौड़ा वाटर प्रूफवाला लबादा उस समय हम लोगों के अंदर पहने हुए कपड़ों को जरा भी सूखा न रख सका।

उस पार पहुँचकर देखा कि सत्य स्वामी जी महाराज उस समय भी खड़े खड़े विलक्षण रूप से काँप रहे हैं। सभी

लोग वहाँ कुछ देर तक चुपचाप मुर्दों के समान बैठे रहे। क्रमशः सब कुली भी पीठ पर बोझ लिये हुए उस जगह आकर जड़ के समान बैठ गए। उस समय आगे बढ़ने की बात पर मानों कोई ध्यान ही नहीं देना चाहता था। वे सब कहने लगे कि यहां बोझ लेकर कोई अपने प्राण देने नहीं आए हैं। हम लोग अपनी जान लेकर यहां से खाली हाथ ही घर लौट जायेंगे।

विपत्ति पर एक और विपत्ति आई। अवसर समझकर आकाश भी उस समय अपना भीषण रूप दिखाने लगा। जल से भरे हुए काले काले मेघों से अजस्र धाराओं की वृष्टि होने लगी। उस वृष्टि ने हम सब लोगों को व्याकुल कर दिया। सभी लोग बहुत दुखी थे। कैलास तक पहुँचने और वहां से लौटने में आज तक हम लोगों में से कोई ऐसी विपत्ति में नहीं पड़ा था। और फिर भी अभी नीरपानी का पहाड़ पार करने को बाकी ही था। कौन जानता था कि आगे वहां और कौन सी नई दुर्दशा भोगनी पड़ेगी। सब लोगों के मन में अनेक प्रकार की दुश्चिताएँ उठ रही थीं। अंत में स्वामी शंकरनाथजी के कहने के अनुसार दीदी और उनके साथ की स्त्री को हम लोग हाथ पकड़कर पैदल ही कुछ दूर तक आगे ले गए। सब कुली और हम लोगों का सारा असबाब उसी अवस्था में वहीं पड़ा रहा।

स्वामीजी ने कहा कि हम जाते हैं और कुलियों को समझा बुझाकर ले आते हैं।

मालपा पहुँचने में अभी प्राय: एक मील का रास्ता बाकी था। डर था कि विलम्ब होने से सध्या हो जायगी, इस-लिये और सब लोग विवश होकर आगे बढ़े। प्राय: आध मील आगे बढ़ने पर जब देखा कि पीछे से कुली आ रहे हैं, तब सब लोग निश्चिंत हुए। उस दिन संध्या के समय हम सब लोग मालपा पहुँचे।

यहाँ ठहरने का केवल एक ही स्थान था जो कुछ लंबा और चारों ओर से खुला था, पर ऊपर से छाया हुआ था। यद्यपि उसके ऊपर घास फूस का छप्पर था, तो भी प्राय: सभी स्थानों से ऊपर का आकाश दिखाई पड़ता था। उस छप्पर के बीच बीच में से अभी तक वर्षा का जल गिर रहा था। पाँच-छ: कुली उस नाम मात्र के छप्पर के नीचे आग जलाकर बैठे थे और बातें कर रहे थे। उन्होंने इस बात पर जरा भी ध्यान न दिया कि असबाब समेत इतने यात्री यहाँ आ पहुँचे हैं। इधर संध्या होती आ रही थी और सब यात्री आश्रय पाने के लिये घबरा रहे थे। लेकिन जगह कहाँ थी! उस छप्पर की यह अवस्था थी। और फिर उस पर भी कुली लोग अपना दखल जमाए हुए बैठे थे। आस-पास कहीं कोई ऐसा साफ स्थान भी नहीं था जहाँ तंबू खड़े करके रात बिताई जा सकती। सब जगह भाँग

और विच्छु के कद्दे-आदम पेड़ों का जंगल खड़ा था। बहुत कुछ सोच-विचार करने के उपरांत अंत में उन कुलियों को ही एक ओर खिसकने के लिये राजी किया गया और सब लोग उस थोड़ी सी जगह में ही बैठकर रात बिताने के लिये वाध्य हुए। सारा असबाव बँधा-बँधाया बाहर ही पड़ा रहा। उसे वर्षा के जल से बचाने के विचार से उस पर सब तंबू आदि बिछा दिए गए।

दिन भर किसी को कुछ भी खाने को न मिला था। कुछ सूखे मेवे, अखरोट, किशमिश और मिस्री आदि का जलपान करके ही बिना सोए वह रात बिताई गई और कोई स्थान न मिलने के कारण उस रोज हमारे साथ के कुली पहाड़ पर एक पत्थर की आड़ में ही, जो कुछ कुछ गुफा के आकार का था, रात भर पड़े रहे।

रात को उस छप्पर के नीचे ठहरे हुए कुलियों से आगे जाने के रास्ते के संबंध में पूछने पर पता चला कि यदि इतना अधिक असबाव और स्त्रियों को साथ लेकर हम लोग यहाँ से तड़के ही यात्रा आरंभ न कर देंगे तो किसी तरह संध्या के पहले अगले गाँव गाला तक न पहुँच सकेंगे। उन्होंने हम लोगों को यह भी परामर्श दिया कि हम लोग बीच के रास्ते से न जाकर ऊपरवाले रास्ते से ही जायँ। यह भी सुना कि उस रास्ते में भी बहुत कड़ा और भीषण जंगल पड़ता है। कदाचित यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न

होगी कि ये सब कुली सरकार की ओर से उस ऊपरवाले पुराने और परित्यक्त मार्ग का जंगल साफ करने के लिये ही नियुक्त हुए थे। इसलिये किसी को इस विषय में कोई संदेह न रह गया कि रास्ते के संबंध की सब बातें ये सब कुली बहुत अच्छी तरह जानते हैं।

रास्ते में जो कुली अचानक गिरकर डूब गया था, उसकी मृत्यु का समाचार उस प्रांत के नियमों के अनुसार तुरंत ही वहाँ के पटवारी को पहुँचाना आवश्यक था। नहीं तो सबको उसके लिये दोषी होना पड़ता। यही सब बातें सोचकर कुलियों के सरदार प्रधान ने दूसरे दिन तड़के कुलियों को लेकर हम लोगों के साथ आगे जाने में आपत्ति की। उसने कहा कि कुली की मृत्यु का समाचार पहले पटवारी तक पहुँचाना चाहिए; और जब उसकी मृत्यु के संबंध की जाँच पूरी हो जाय, तब यहाँ से आगे बढ़ना ठीक होगा। और इसके लिये अभी एक सप्ताह का समय चाहिए था। बात यह थी कि पटवारी का गाँव वहाँ से बहुत दूर था। उसे खबर देकर बुलाने और उसकी जाँच समाप्त कराने के लिये यदि हम लोग वहाँ ठहरते तो उस भीषण वर्षा में बिच्छू के जंगल में बिना आश्रय के सब लोगों को बहुत दुर्दशा भोगनी पड़ती। बहुत कुछ सोचने-विचारने के उपरांत अंत में यह निश्चय हुआ कि दो पत्र लिखे जायँ जिनमें कुली के गिरकर मरने का पूरा पूरा समाचार हो। तुरंत ही ये दोनों पत्र

लिखे गए और उनमें से एक पत्र पटवारी के पास और दूसरा गार्वियांग के पोस्ट मास्टर साहब के पास डाक के हरकारे की मारफत भेज दिया गया। साथ ही उन पत्रों में यह भी लिख दिया गया था कि ठहरने का कोई स्थान न मिलने के कारण और साथ में स्त्रियों के होने के कारण हम लोग यहाँ बहुत ही कष्ट पा रहे हैं; इसलिये हम लोग कुलियों को साथ लेकर आगे बढ़ने के लिये बाध्य हुए हैं। यदि बाद में कोई आवश्यकता होगी तो हम लोग धारचूला में रहेंगे; इत्यादि। उन पत्रों पर शंकरनाथजी ने अपने हस्ताक्षर कर दिए। यह सब व्यवस्था करके और प्रधान को अनेक प्रकार से आश्वासन देकर हम लोग सबेरे आठ बजने से कुछ पहले ही वहाँ से चल पड़े।

साधारणतः मालपा से गाला प्रायः आठ मील दूर होगा। लेकिन पुल टूट जाने के कारण हम लोगों को ऊपर के रास्ते से जाना था जिसमें प्रायः सात मील पहाड़ की चढ़ाई पड़ती थी। अतः गाला पहुँचने के लिये हम लोगों को और भी बहुत सा रास्ता चलना था। तिस पर हम लोगों ने यह भी सुन रखा था कि यह चढ़ाई का रास्ता बहुत ही बीहड़ है। इसलिये आज भी हम लोगों को इतना अवसर न मिला कि भोजन आदि बनाकर कुछ खा पी लेते। हम लोग सोचते थे कि कहीं ऐसा न हो कि संध्या से पहले हम लोग गाला गाँव में न पहुँच सकें और हम लोगों को नीरपानी अर्थात्

जल-हीन पर्वत पर के जंगल में ही रात बितानी पड़े। उस दशा में हम लोगों के लिए बहुत अधिक कठिनता उपस्थित होगी। इन्हीं सब चिंताओं के कारण उस दिन भी हम सब लोगों ने अपने साथ कुछ सूखे मेवे आदि रख लिए थे।

अब नीरपानी पहाड़ का अंत होने को था। काली नदी के किनारे किनारे कुछ दूर आगे बढ़ने पर हम लोग अपना पुराना रास्ता छोड़ने के लिये विवश हुए। अब हम लोगों को जो रास्ता मिला, वह दाहिनी ओर से पहाड़ पर से क्रमशः ऊपर की ओर गया था। यह चढ़ाई (नं० १) प्रायः दो मील होगी। यद्यपि आरंभ में इस रास्ते में साधारण सी ही चढ़ाई थी, पर इसका अंतिम भाग बहुत ही टेढ़ा-मेढ़ा था। उसमें कई मोड़ थे और वह कभी ऊपर जाता था और कभी नीचे। इस स्थान की विशेषता यही थी कि नीचे उतरते समय पहाड़ पर जगह जगह ऊँची-नीची फिसलनवाली मिट्टी पर पगडंडी या पतला जंगली रास्ता बड़ी बड़ी घासों से छिपा हुआ दिखाई देता था। इन सब स्थानों को पार करते समय हम लोगों के हाथ की लंबी लकड़ियाँ तो बराबर हम लोगों की सहायता कर ही रही थीं, पर साथ ही उस फिसलनवाले रास्ते से नीचे उतरते समय हम लोग बीच बीच में उन घासों को भी पकड़ लिया करते थे। उस नीची भूमि पर कहीं कहीं पत्थरों के बहुत से बड़े बड़े टुकड़े भी कुछ दूर तक फैले रहते थे, इसलिये वहाँ प्रायः रास्ते का

कोई निशान ही नहीं दिखाई देता था। इन स्थानों में सब लोगों को लाचार होकर कुलियों के पीछे पीछे ही चलना पड़ता था। वहाँ एक स्थान पर बाँस के झोलों और दोनों स्त्री-यात्रियों को उतारकर बलवान कुली हम लोगों को बालकों की तरह अपनी पीठ पर बैठाकर भी कुछ दूर तक ले गए थे।

कुछ दूर तक इसी प्रकार की दुर्दशा भोगते हुए हम लोग फिर उसी पहाड़ पर के तंग रास्ते से होकर आगे बढ़े। फिर सामने एक बहुत बड़ा पहाड़ खड़ा हुआ दिखाई दिया। यहाँ हम लोगों का वह सँकरा रास्ता भी समाप्त हो गया था। कोने में एक झरने की क्षीण धारा झर झर शब्द करती हुई बह रही थी। उसे देखकर सब लोग वहीं बैठ गए और थोड़ा थोड़ा जलपान करके सब लोगों ने अपनी प्यास बुझाई। कुलियों ने सब लोगों को पहले ही बतला दिया था कि इसके बाद आगे फिर और कहीं जल न मिलेगा।

इस सामनेवाले खड़े पहाड़ की बगल से होकर घासों से छिपी हुई जो लंबी पगडंडी गई थी, उसी को लोग बीचवाला रास्ता कहते हैं। यह रास्ता बहुत ही भीषण था। उसका कारण यह था कि वर्षा से यहाँ बहुत अधिक फिसलन हो गई थी और पग पग पर नीचे गिर पड़ने की वहाँ विलक्षण आशंका थी। हम लोगों से पहले जो यात्री अर्थात् डाक्टर लोग इस रास्ते से गए थे, उन्हें इस रास्ते में बहुत विपत्ति

झेलनी पड़ी थी। इसके सिवा एक और रास्ता था जो उस पहाड़ के बीच से होता हुआ ऊपर की ओर गया था। वही था ऊपरवाला रास्ता। और हम लोगों के आगे बढ़ने का यही निर्दिष्ट मार्ग था।

हमने इसे रास्ता तो कह दिया, पर इस रास्ते से आगे बढ़ने से पहले पाठकों को एक बार इसकी अवस्था बतला देना आवश्यक है। बंगाल में गाँवों के पास के रास्तों के इधर-उधर कभी कभी वृक्षों का कुछ घना जंगल दिखाई पड़ता है। इस बड़े पहाड़ पर सब जगह वैसा ही घना जंगल था। लेकिन इस जंगल में अरुई के पौधों की जगह चारों ओर फुटकर जंगली पेड़-पौधे ही दिखाई पड़ते थे। दृष्टि गड़ाकर देखने पर (साधारण देखने से कुछ भी दिखाई न पड़ता था) जंगल के बीच में कुछ दूर तक यही देखने में आता था कि कुछ वृक्ष काटकर गिराये हुए हैं। कदाचित् यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि यही कटे हुए वृक्ष हमारे रास्ते के चिह्न-स्वरूप थे और यही चिह्न हम लोगों को बराबर ऊपर की ओर ले चले। इन कटे हुए वृक्षों के बीच में से जब हम लोग उस खड़े हुए पहाड़ के ऊपर चलने लगे, तब हम लोगों को एक नई विपत्ति का सामना करना पड़ा। पग पग पर जोंकों के उपद्रव से सभी लोगों के पैर जख्मी हो गए। यह चढ़ाई (नं० २) कुछ साधारण नहीं थी। वह प्रायः तीन मील की चढ़ाई थी।

झाड़-झंखाड़ से ढकी हुई उस चढ़ाई में कई वार ऐसा हुआ कि बहुत से लोगों का पैर ठीक जगह पर नहीं पड़ा और वे मुँह के बल गिरे। कदाचित् यहाँ यह वतलाने की आवश्यकता न होगी कि वहाँ लोगों को ठंडी साँस तक लेने का अवकाश न मिलता था। सभी लोग वहुत विकल हो गए थे। और संध्या के पहले सब लोगों को गाँव तक पहुँचना भी आवश्यक था। बड़े कष्ट से वह चढ़ाई समाप्त करके प्राय: तीन बजे के समय पहाड़ के किनारे पर एक सँकरा रास्ता मिला। वह रास्ता डेढ़ हाथ से अधिक चौड़ा नहीं था। पहाड़ पर और दो-तीन जगह ऐसा सँकरा रास्ता नहीं बनाया जा सका था और इसलिये बीच के खाली स्थान पर चीड़ के कई लंबे लंबे पेड़ काटकर विछा दिये गए थे और उन्हीं पेड़ों पर पत्थर विछा कर वह रास्ता आगे के रास्ते के साथ मिला दिया गया था। यदि ऐसे स्थान पर पैर रखने में जरा भी असावधानी होती तो वहाँ का पत्थर खिसक कर नीचे जा सकता था। और कहना न होगा कि उस पत्थर के साथ ही साथ पथिक का जीवन भी रसातल जा पहुँचता। खैर सब लोगों ने बहुत ही सावधानी के साथ कुछ दूर आगे बढ़कर यह समझा कि अब शायद उतराई का रास्ता आरंभ होगा। लेकिन यहाँ कौन हम लोगों को यह बतलाकर सांत्वना दे सकता था कि उतराई अभी यहाँ से कितनी दूर है। इन दो चढ़ाइयों को समाप्त

करके हम लोगों ने प्रायः पाँच मील रास्ता पार किया था। इतने में ही शरीर थककर चूर हो गया था। सब लोग पसीने पसीने हो गए थे। किसी के मुँह से कोई स्फूर्त्तिदायक शब्द नहीं निकलता था। तीसरा पहर हो गया था और चार बजने का समय था। जब उतराई के बदले सामने भीषण जंगल से ढका हुआ एक ऊँचा पहाड़ दिखाई पड़ा, तब सब लोगों की आँखों के सामने मानों अँधेरा छा गया। संध्या से पहले इस पहाड़ को पार करना कुछ सहज काम नहीं था। कुली लोग स्त्रियाँ और असबाब लिए हुए पहले ही आगे बढ़कर अदृश्य हो गए थे। स्वामीजी का दल भी यह भयंकर चढ़ाई (नं० ३) जल्दी जल्दी समाप्त करने का परामर्श देकर उस जंगल में आँखों से ओझल हो गया। उत्तरपाड़ावाले और हम लोग पीछे रह गए। केवल कालिकानंदजी ही हम लोगों के साथ रह गए थे और हम लोगों को बराबर उत्साहित करते हुए आगे बढ़ाए चलते थे। हम लोग जितना ही ऊपर चढ़ते थे, रास्ता उतना ही अधिक अस्पष्ट होता जाता था। इस जंगल में हम लोगों के सिवा और किसी आदमी का कहीं नाम-निशान भी नहीं था। यदि इस रास्ते से कोई कुछ आगे बढ़ जाता तो उस जंगल में उसे ढूँढ़ना कठिन हो जाता।

उत्तरपाड़ावाले दल की गति बहुत ही मंद देखकर अब मैं अकेला ही ऊपर की ओर बढ़ने लगा। लेकिन बीच

रास्ते में पहुँचने पर आगे रास्ता ही दिखाई नहीं देता था, इससे मैं मुश्किल में पड़ गया। कालिकानंदजी के हाथ में एक वंशी थी। मैंने आगे बढ़ने के समय पहले ही उनसे यह तै कर लिया था कि जब मैं उन्हें पुकारूँगा, तब वे वंशी बजावेंगे जिससे मुझे पता चल जायगा कि वे कितनी दूर हैं। ठीक रास्ता न मिलने के कारण उस जंगल में मैंने लाचार होकर दो-तीन बार जोर से उनको आवाज दी। दूर से (बहुत नीचे) उसके उत्तर में वंशी का शब्द सुनकर मैंने सोचा कि अभी उनके यहाँ तक पहुँचने में बहुत विलंब होगा; इसलिए लाचार होकर मैं अनुमान से ही उस जंगल के अस्पष्ट रास्ते पर बढ़ता हुआ संध्या से पहले ही उस पहाड़ की चोटी पर जा पहुँचा।

यह चढ़ाई (नं० ३) प्राय: डेढ़ मील की होगी। इस पर नं० २ वाली चढ़ाई के जंगल की अपेक्षा और भी अधिक ऊँचा तथा घना जंगल दिखाई दिया। तिस पर यहाँ जल का बिलकुल ही अभाव था। मैं समझता हूँ कि जल के अभाव के कारण इस जंगल में जीव-जंतु का अस्तित्व नहीं हो सकता। यही सब सोच-समझकर मैं अपने मन में साहस उत्पन्न कर रहा था। लेकिन फिर भी सच तो यह है कि कलेजा अंदर से धक धक कर रहा था। आगे बढ़ते समय मैं बड़े ध्यान से यह भी देखता जाता था कि कहीं कोई पेड़ इधर-उधर हिल तो नहीं रहा है। यदि उस स्थान के विचार

से देखता तो उस समय मैं उस जंगल में बिलकुल अकेला ही था। किसी ओर से कहीं कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता था। उस समय मैं भी मानों एक जंतु के ही समान था। उस सँकरे जंगली रास्ते पर और भी कुछ दूर आगे बढ़ा। उस समय पैरों की भी बहुत अधिक दुर्दशा हो रही थी। दोनों पैर जोंकों के उपद्रव के कारण जख्मी हो रहे थे। घुटनों में जरा भी बल नहीं था। मेरी समझ में ही नहीं आता था कि इस अवस्था में और कितनी दूर आगे बढ़ने पर मैं अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच सकूँगा, इसलिये अंत में एक स्थान पर मैं असहायों की भाँति बैठ गया।

अब तक मैं इतनी बड़ी बड़ी चढ़ाइयाँ पार करके कैलास तक घूम आया था। लेकिन आज तक कभी ऐसी भीषण दुर्दशा नहीं भोगनी पड़ी थी। फिर भी आज मेरे इतने अधिक कातर होने का क्या कारण था? पहली बात तो यह है कि आज तक कभी ऐसे खड़े पहाड़ पर नहीं चढ़ना पड़ा था। इसके सिवा यह भी कहा जा सकता है कि और और पहाड़ों पर चलने के लिये जैसे रास्ते मिले थे, वैसा रास्ता इस पहाड़ पर नहीं बना था। इस पहाड़ पर कहीं तो कम ऊँचाई पर और कहीं बहुत अधिक ऊँचाई पर पैर रखकर चढ़ना पड़ता था, जिससे पैरों पर बहुत जोर पड़ता था। एक और बात थी जो यहाँ के लिये बिलकुल प्राकृतिक या स्वाभाविक थी। अतः वह बात कह देने में

भी मैं लज्जा का कोई कारण नहीं देखता। समतल देश-वासी बंगाली के प्राण थे चावल। भला अपने असल भोजन का अभाव वे कितने दिन तक सहन कर सकते थे! तेल और जल के स्नान तथा थोड़े से खिले हुए भात का अभाव मैं नित्य ही अनुभव करता था। आज से पहले की रात भी बिना सोए और केवल बैठे बैठे बिताई थी। तिस पर दो दिन केवल सूखे मेवे और फल खाकर ही आज दिन भर इस पहाड़ की यह भीषण चढ़ाई चढ़नी पड़ी थी। अतः ऐसी दशा में यह किसी प्रकार नहीं माना जा सकता कि फिर भी शरीर सदा पहाड़ के समान एक सा बना रहेगा। लेकिन उस विशेष अवस्था में प्राणों तक का मोह परित्याग करना पड़ा था। थोड़ी देर तक वहाँ बैठने के बाद फिर उठकर चलने के लिये विवश हुआ। धीरे धीरे उसी सँकरे रास्ते पर चलकर उस पहाड़ के कुछ कोने तक पहुँचकर जब मुझे एक मोड़ मिला, तब वहाँ अचानक शंकरनाथ, सत्यनाथ और स्वामीजी के दर्शन हुए।

उस समय बिना जल के जीभ की कौन कहे, मेरा कलेजा तक सूख गया था। सौभाग्यवश उन लोगों के हाथ में एनामेल के बरुए में मानस सरोवर का जल भरा हुआ था। मैंने विवश होकर उनसे अपने प्यासे होने की बात कही। मेरी अवस्था देखकर वे लोग जरा भी आपत्ति न कर सके। मैंने मानस सरोवर के उस स्वच्छ तथा शीतल जल से अपनो

प्यास बुझाई। साथ ही थोड़ा सा जल आँखों और मस्तक पर छिड़ककर उन लोगों के साथ फिर धीरे धीरे आगे बढ़ा।

अब इतनी देर बाद उतराई आई। यह समझकर तीनों आदमी जल्दी जल्दी चलने लगे कि चढ़ाई की अपेक्षा इस रास्ते पर हम लोग शीघ्र उतर सकेंगे। पर दुःख की बात है कि थोड़ी ही दूर आगे बढ़ने पर सारा रास्ता बड़ी बड़ी घासों और झाड़-झंखाड़ से ढका हुआ मिला। रास्ता ढूँढ़ने में हम लोगों को बहुत अधिक कष्ट हुआ। रास्ते में अधिकांश स्थानों में केवल पत्थरों के ढेर मिले। पैर रखने में जरा भी असावधानी होने के कारण मैं कई बार गिर गिर पड़ा। पर वहाँ घास बहुत अधिक थी, इसलिये मुझे अधिक चोट न आने पाई। इस प्रकार प्रायः तीन मील चलकर नीचे कुछ दूर पर हम लोगों का एक कुली खड़ा हुआ दिखाई पड़ा। उसे देखकर हम लोगों के जी में जो आया। उसके हाथ में बड़ी टार्च लाइट थी। हम लोगों ने समझ लिया कि आगे के लोगों ने यही सोचकर उस कुली को यहाँ रोशनी देकर भेज दिया है कि कहीं रात हो जाने के कारण हम लोगों को रास्ते में किसी भारी विपत्ति का सामना न करना पड़े।

इधर उत्तरपाड़ावाले दल का अभी तक कहीं पता नहीं था। यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि अभी वे लोग हमसे बहुत पीछे थे। हाथ में टार्च लाइट लेकर शंकरनाथजी ने हम लोगों से कहा कि आप कुली के साथ

आगे जायँ। हम जरा ऊपर जाकर उत्तरपाड़ावालों का पता लगावें।

उस समय मेरे शरीर की जो दशा हो रही थी, उसका वर्णन भाषा के द्वारा नहीं हो सकता। केवल इतना कहना यथेष्ट होगा कि उस दिन मैंने नया जीवन पाया था। कुली के साथ कुछ दूर नीचे उतरने पर मैंने गाला में प्रवेश किया।

मैं सवेरे आठ बजने से कुछ पहले ही चला था और रात को आठ बजे गाला पहुँचा था। दीदी और उनके साथ दूसरे कई यात्री प्रायः दो घंटे पहले ही यहाँ पहुँच गये थे। इन लोगों के पहले ही यहाँ पहुँच जाने से मेरे लिये इतना सुभीता हो गया था कि ज्योंही मैं हाथ-मुँह धोकर संध्या-वंदन आदि से निवृत्त हुआ, त्योंही मुझे भोजन तैयार मिला। तिस पर आज के भोजन में कुछ नवीनता थी। जो आलू इतने दिनों तक अप्राप्य था, आज उसी की तरकारी दिखाई पड़ी। भोजन के समय सब लोगों की जबान पर केवल एक ही बात थी। सब लोग आज के रास्ते की दुर्दशा का ही वर्णन कर रहे थे। उत्तरपाड़ावाले दल का अभी तक कोई पता नहीं था, इसलिये सभी लोग बहुत चिंतित हो रहे थे। तो भी यह संतोष की बात थी कि उन लोगों के साथ कालिकानंदजी थे और शंकरनाथ तथा सत्यानंदजी भी प्रकाश लेकर उनकी ओर गए थे।

रात को दस बजे के करीब स्वामी शंकरनाथजी उन सब लोगों को लेकर आ पहुँचे। उनकी जबानी मालूम हुआ कि चट्टोपाध्याय महाशय की अवस्था बहुत ही शोचनीय हो गई है। ३ नं० वाली चढ़ाई के ऊपर पहुँचकर वे लेट गए थे। उनके साथ के लोग उन्हें बराबर आश्वासन देते थे। फिर भी बहुत देर के बाद उनके मुँह से केवल इतना ही निकला था—"आप लोग मिलकर मुझे नीचे फेंक दें और तब आगे चले जायँ।" धीरगामी गंगाधर घोष की अवस्था भी अच्छी नहीं थी। आज की चढ़ाई-उतराई में वे गिनकर पूरे पचीस बार गिरे थे!

पाठकगण, इस नीरपानी पहाड़ की दुर्दशा का स्मरण होते ही उसके साथ साथ उस दिन के साथी इन स्वामीजी की अलौकिक कष्टसहिष्णुता की बात भी बराबर याद आती है। यदि उस दिन की विपत्ति में इनकी सहायता न मिलती तो शायद यह कहानी आज किसी और ही रूप में लोगों के सामने प्रकाशित होती।

दूसरे दिन अर्थात् ८ अगस्त बृहस्पतिवार को सवेरे आठ बजे के लगभग हम लोग गाला से रवाना हुए। नीरपानी पहाड़ पार हो जाने के बाद से मन का बोझ या चिंता एक प्रकार से कुछ कम हो गई थी। अब तो मन में केवल यह चिंता हो रही थी कि धारचूला कितनी देर में पहुँचेंगे। सामखेला पार करके चढ़ाइयों और उतराइयों पर से होते हुए

उस दिन हम लोग प्रायः चार बजे के समय सिरदांग में पहुँचे। सब लोग वहाँ के स्कूल में ही ठहरे। उस रात को खिचड़ी बनी थी जिसमें खूब घी पड़ा था। उसके साथ आलू और कुम्हड़े की तरकारी थी। उस रात को सब लोगों ने बड़े आनंद से भोजन किया था।

दूसरे दिन छः बजे से कुछ पहले ही सब लोग सिरदांग से चल पड़े और दोपहर से पहले ही पंगु की भयंकर उतराई (जो आने के समय चढ़ाई थी) पार कर ली। हिमालय का भीषण जाड़ा यहाँ आने पर कम हो गया। मैंने समझ लिया कि पंगु के बहुत अधिक ऊँचे पहाड़ के उस पार ही जाड़े का देश है और यही पहाड़ ठंढी हवा को इस ओर नहीं आने देता। दिन के समय स्वेटर पहनना यहाँ से बिलकुल बंद हो गया। उतराई के बाद एक स्थान पर बहुत ऊँचाई से एक झरना गिर रहा था। उसे देखकर आज हम लोगों ने वहाँ बहुत अच्छी तरह स्नान किया और तब कुछ जलपान किया। इसके बाद प्रायः एक मील की खेला की चढ़ाई समाप्त करके काली नदी के किनारे किनारे समतल भूमि चलकर (उस दिन चढ़ाई नहीं थी) संध्या से कुछ आगे धारचूला पहुँचे। बीच में जुम्मा के पास (जहाँ कुलियों का अड्डा है) एक स्थान पर कुछ भोजन बनाकर सब लोगों ने खाया था। वहाँ मैंने देखा कि धारचूला तक के समतल रास्ते में वर्षा की अधिकता के कारण अनेक स्थानों

पर बहुत से नए झरने निकल आए हैं। कई स्थानों पर कुछ जमीन धस भी गई थी। विशेष परिवर्त्तनों में एक परिवर्त्तन यह भी था कि रास्ते के दोनों ओर आदमी के समान ऊँचे भाँग और बिच्छू के जंगल उग आए थे जिससे अनेक स्थानों पर रास्ता चलने में बहुत कठिनता होती थी।

यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि तपोवन के स्वामी अनुभवानंदजी हम लोगों के आगमन से बहुत ही आनंदित हुए। सब लोगों का कुशल-समाचार पूछने के उपरांत फिर वही नीरपानीवाले रास्ते की दुर्दशा का हाल भी उन्होंने कहा। उसके बदले में हम लोगों ने भी ऊपर-वाले रास्ते का सब हाल उन्हें सुनाया। उन्होंने कहा कि तो भी आप लोगों के सौभाग्य से रास्ते में वर्षा नहीं हुई। उन लोगों को वृष्टि और उससे होनेवाली फिसलन के कारण बहुत अधिक विपत्तियाँ भोगनी पड़ी थीं और उन सब विपत्तियों का हाल मालपावाले पत्र में ही लिखा था। वृष्टि का हाल सुनकर उस समय हम लोगों ने सोचा कि नीरपानी के ऊपर की खड़ी चढ़ाई में यदि फिर वृष्टि का उपद्रव होता तो हम लोग उस दिन किसी प्रकार गाला न पहुँच सकते। इसके लिये हम लोगों ने मन ही मन कैलासपति को उस समय बहुत अधिक धन्यवाद दिया। जो हो, उस दिन एक शोचनीय घटना हो जाने का हाल सुनकर स्वामीजी बहुत दुःखी हुए। वह घटना उसी कुली के गिरकर मर जाने की थी।

यद्यपि उस कुली के साथ हम लोगों के कई सहयात्रियों की कई थालियाँ, लोटे और गिलास आदि भी काली नदी के कराल गर्भ में डूब गए थे, तो भी मनुष्य के जीवन के मूल्य के साथ उनकी कोई तुलना ही नहीं की जा सकती।

एक एक करके सभी कुली बोझ लिए हुए तपोवन में आ पहुँचे। इसके बाद वे उस मरे हुए कुली के लिये रोने और दुःख प्रगट करने लगे। जब यह पता चला कि वह कुली अपने अंधे पिता-माता का एक मात्र अवलंब था और उसके न रह जाने पर अब उन अंधों को न जाने क्या क्या दुर्दशाएँ भोगनी पड़ेंगी, तो हम लोगों में से कोई उस समय शांत न रह सका। उस पुत्र-विहीन माता-पिता की सहायता के लिये सब लोगों ने मिलकर कुछ चंदा इकट्ठा किया और उस मृत कुली के उद्देश्य से दस रुपए और खर्च किए। सब कुलियों को उनकी बाकी मजदूरी और कुछ इनाम देकर बिदा किया। जिस पानसिंह को हम लोगों ने गार्बियांग में नियुक्त किया था, वह भी अब कैलास से लौटकर धारचूला आ गया था। उस दिन तक उसकी एक महीने की तनख्वाह होती थी। तनख्वाह के बीस रुपए उसे भी चुका दिए गए। इसके बाद सुख-दुःख की बातों में वह रात बहुत अच्छी तरह से कटी।

दूसरे दिन आगे बढ़ने के लिये कुली ठीक करने के वास्ते धारचूला में ठहरना पड़ा। उस समय रुमादेवी अल-

मोड़े में थीं। उनके न रहने पर भी आश्रम के स्वामीजी तथा डाक्टर पालधि महाशय हम लोगों का आदर-सत्कार करने में सदा ही लगे रहते थे। पक्का आम (हम लोगों के देश में इस समय आम बिलकुल नहीं मिलता) और अरुचि दूर करके रुचि उत्पन्न करनेवाले अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ तथा तरकारियाँ आदि लाकर हम लोगों को खूब तृप्त करने लगे। इधर उत्तरपाड़ावाला दल और स्वामीजी का दल यहाँ धारचूला में कुछ दिनों तक विश्राम करके तब आगे जाना चाहता था। विशेषतः चट्टोपाध्याय महाशय का शरीर बहुत ही शिथिल हो गया था, इसलिये वे भी इस समय विश्राम के ही पक्षपाती हुए। पर हम लोग वहाँ एक दिन भी नहीं ठहरना चाहते थे। हम लोगों की देखा-देखी उत्तरपाड़ावाले दल के केवल घोष महाशय और पबना के राय महाशय हम लोगों के साथ ही जाने को तैयार हुए। इन सब लोगों के लिये कुल सोलह कुलियों की आवश्यकता थी।

पाठकों को स्मरण होगा कि अलमोड़े से आते समय दीदी की डाँडी रास्ते में ही टूट गई थी और वह कुलियों के हाथ अलमोड़े की दूकान में वापस कर दी गई थी। इस समय केवल उनके साथ की स्त्री की डाँडी ही यहाँ उपस्थित थी। उस पर दोनों स्त्रियां किसी प्रकार नहीं जा सकती थीं। लाचार होकर दोनों स्त्रियों को पहले की तरह बाँस के झोले पर ही भेजना निश्चित हुआ। प्रत्येक झोले के लिये पाँच कुलियों

की आवश्यकता थी। इस प्रकार दोनों झोलों के लिये दस कुली आवश्यक थे और बाकी छः कुली हम लोगों का असबाब ढोकर हम लोगों के साथ जाने को थे। यही निश्चय करके सब मिलाकर हम लोग सात आदमी दूसरे दिन, अर्थात ११ अगस्त रविवार को,भोजन करने के उपरांत धारचूला से चल पड़े।

चलने से पहले कैलास-यात्रियों की यात्रा के मार्ग के विश्राम-स्थल इस मिशन के तपोवन की उन्नति के लिये और साधुओं की सेवा के लिये शक्ति के अनुसार सभी लोगों ने थोड़ी थोड़ी सहायता करके स्वामीजी से चलने की आज्ञा ली थी। प्रत्येक कुली की प्रति दिन की मजदूरी एक रुपए के हिसाब से ठीक हुई थी। पुरानी डाँडी आश्रम के किसी काम आ सकती थी, इसलिये वह वहीं छोड़ दी गई थी।

साढ़े तीन बजे तीसरे पहर हम लोग वहाँ से चलकर प्रायः दस मील दूर सरसम नामक स्थान में पहुँचे। एक भुट्टे के खेत में एक भोटिया के घर से मिले हुए छोटे बरामदे में सब लोगों ने उस दिन आश्रय लिया। वहीं संध्या हो गई थी। रात भर बहुत जोरों का पानी बरसता रहा। अतः सब लोगों को वह रात उस खुले हुए बरामदे में बैठकर ही बितानी पड़ी। घर का मालिक अपने मकान में ताला बंद करके अपने व्यवसाय के लिये ऊपर चला गया था। भूपसिंह उस खेत में से भुट्टे लेने के लिये बहुत चेष्टा करता था; पर उसकी आशा पूरी नहीं हुई। आने के

समय रास्ते में कालिका नामक स्थान में हम लोगों के पुराने कैलास-सहयात्री अलमोड़े के पेशकार साहब भी मिले थे। यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि वे कैलास की यात्रा निर्विघ्न समाप्त करके अपने घर लौट रहे थे।

दूसरे दिन सबेरे खूब जोरों की वर्षा होने लगी। पर उसका बिना कुछ ध्यान किए सब लोग यहाँ से नौ मील दूर काली तथा गौरी नदी के संगम पर जलजूबी नामक स्थान में प्राय: दोपहर के समय जा पहुँचे। वहाँ के ब्रह्मचारी के आश्रम में ही सब लोगों ने भोजन आदि किया। यह आश्रम बहुत ही रमणीक स्थान में और बहुत ही दर्शनीय है। इसके चारों ओर आम के वृक्षों की घनी छाया है और बीच में पत्थर का बना हुआ एक सुंदर शिव-मंदिर है। मंदिर के चारों ओर बरामदा है जिस पर धर्मशास्त्र के बहुत से श्लोक लिखे हुए हैं। इन ब्रह्मचारीजी का नाम खड्गदेव है। इनके यत्न और परिश्रम से सारा आश्रम बहुत साफ-सुथरा और सुंदर बना रहता है। नीचे काली और गौरी नदियाँ आश्रम को घेरे हुए कलकल करती हुई बहती हैं। यहाँ आने पर ब्रह्मचारीजी ने हम सब लोगों को फी आदमी चार-पाँच के हिसाब से मीठे आम देकर तृप्त किया था। अंत में हम लोगों ने मंदिर में थोड़ी थोड़ी दक्षिणा चढ़ाई और भोजन करने के उपरांत गौरी नदी के किनारे किनारे कुछ दूर आगे बढ़े। इसके बाद उस नदी का पुल पार करके

आसकोट की कठिन चढ़ाई (आने के समय यह उतराई थी (पार करके संध्या के समय उसी गाँव में नई बनी हुई धर्मशाला में पहुँचकर ठहरे।

यहाँ घोड़े मिल गए थे, इसलिये सब कुली बिदा कर दिए गए। कुली लोग जब बोझ लेकर हम लोगों के साथ आ रहे थे, तब रास्ते में बहुत गड़बड़ी मचाते आते थे। प्रत्येक को दो दिन की मजदूरी दो रुपए देकर घोड़ेवालों के साथ भाड़े की बात-चीत पक्की की गई। अलमोड़े तक पहुँ-चाने के लिये सवारी के फी घोड़े का सोलह रुपया और बोझ ढोनेवाले फी खच्चर का चौदह रुपया तै हुआ था।

यहाँ पहुँचने पर फिर राजा साहब के यहाँ से भेंट-स्वरूप खाने-पीने का सामान आया। इस बार वे केवल भेंट भेजकर ही संतुष्ट नहीं हुए थे, बल्कि उन्होंने अपने राज-कुमार को भी धर्मशाला में भेजकर उनसे यह अनुरोध कराया था कि अभी हम लोग यहाँ और दो दिन ठहरें, क्योंकि आजकल पानी बरस रहा है। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उस समय आकाश की अवस्था और वृष्टि की ओर हम लोगों का ध्यान नहीं था और हम लोगों को जल्दी घर पहुँचने की बहुत ही उत्कट अभिलाषा थी। इसलिये दूसरे ही दिन उन्हें धन्यवाद देकर सवेरे दस बजे से कुछ पहले ही भोजन आदि से निवृत्त होकर हम लोग वहाँ से रवाना हुए।

इतनी दूर तक आ चुकने के उपरांत अब स्त्रियाँ फिर सवार हुईं। दो-तीन बार सवारी कर चुकने के कारण अब उन लोगों के मन में अवश्य ही कुछ साहस उत्पन्न हुआ होगा। पहले वहाँ से सात मील की दूरी प्रायः एक बजे से पहले ही पार करके हम लोग डाँडी हाट पहुँचे और तब उसके बाद जल्दी जल्दी चलकर और भी दस मील आगे निकल गए। पर इस मार्ग के अंत में प्रायः चार मील की खड़ी उतराई पड़ी थी। उस उतराई को पार करके मैदान तक पहुँचने में सभी लोगों को विशेष कष्ट हुआ था। विशेषतः वर्षा के उपद्रव के कारण सवार यात्रियों का कष्ट तो असीम सा हो गया था। उतराई की जगह घोड़े से उतर-कर पैदल ही टार्च लाइट की सहायता से मैदान तक पहुँचने में रात के दस बज गए थे। सिर्फ हम्हीं थोड़े से आदमी संध्या से पहले ही वहाँ पहुँच गए थे।

यहाँ एक दूकान के ऊपर दूसरी मंजिल में रात बिताई गई। दूसरे दिन फिर भोजन आदि करके सवेरे प्रायः नौ बजे वहाँ से रवाना हुए। पहले रामगंगा नदी का पुल पार करके नदी के किनारे किनारे कोई तीन मील तक आगे बढ़े। उसके बाद दोपहर को ग्यारह बजे से दो बजे तक प्रायः सात मील की चढ़ाई पार करके बेरीनाग पहुँचे। फिर वहाँ से चार मील और उतर कर उस दिन हम लोग गादीगढ़ में आकर ठहरे।

दूसरे दिन सवेरे नौ बजे से पहले भोजन आदि से छुट्टी पाकर यात्रा आरंभ की। एक बजे से पहले ही आठ मील रास्ता पार करके गोनाई जा पहुँचे। यहाँ एक स्थान पर संकरा रास्ता बिलकुल धँस गया था, इसलिये हम लोगों को लाचार होकर पहाड़के ऊपर ऊपर कुछ दूर तक घूमकर कुछ रास्ता बहुत ही सावधानी से पार करना पड़ा था। इसके बाद उस दिन तीसरे पहर चार बजे नागाई से चलकर और भी पाँच मील आगे बढ़ गए और सरयू घाट (या शेरा घाट) पर विश्राम करने के लिये बाध्य हुए। यहाँ आते समय उतराई के रास्ते में जगह जगह इतनी अधिक फिसलन थी कि सवारी के घोड़ों या बोझ ढोनेवाले खच्चरों के लिये पग पग पर फिसलकर गिर पड़ने की बहुत अधिक आशंका थी।

यहाँ से अलमोड़ा केवल चौबीस मील दूर रह गया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ज्यों ज्यों हम लोग पास पहुँचते जाते थे, त्यों त्यों अलमोड़े पहुँचने के लिये मन और भी अधिक व्याकुल होता जाता था। वर्षा के कारण सरयू नदी का जल दूना हो गया था। उसका स्रोत दोनों तटों को तोड़ता हुआ खूब जोरों के साथ आगे बढ़ रहा था। पर हम लोगों के मन की गति भी उससे कुछ कम नहीं थी। यहाँ पहुँचने पर हम लोगों के पुराने कैलास सहयात्री श्रीयुक्त वी० कौशिक महाशय के फिर दर्शन हुए। इतने दिनों के बाद अचानक हम लोगों को देखकर वे अत्यधिक आनंद के कारण

वीरों की तरह उछल पड़े। आपस में एक दूसरे का कुशल-समाचार पूछने के उपरांत कैलास-दर्शन के बाद से नीरपानी पहाड़ तक की दुर्दशा का सारा हाल उन्होंने आदि से अंत तक कह सुनाया। नीरपानी से वे बीचवाले रास्ते से ही लौटे थे। पाठकों को स्मरण होगा कि कौशिक महाशय लिपू पार करने के समय जब बरफीले रास्ते से उतरकर बीस हाथ नीचे गिर पड़े थे, उस समय इन वीर-चूड़ामणि के मुख पर वीरता की हँसी आ गई थी। आज वही अक्लांत वीर कौशिक महाशय बीचवाले रास्ते की दुर्दशा का वर्णन करते समय इतने विचलित हुए थे कि उन्होंने वहाँ कैलासपति के उद्देश्य से तीन बार जमीनपर लेटकर उन्हें साष्टांग नमस्कार किया था।

उस दिन सरयू के किनारे ही रात बिताकर दूसरे दिन भोजन के उपरांत फिर यात्रा आरंभ हुई। वर्षा रुकती ही नहीं थी, इसलिये सवार यात्री अथवा भार ढोनेवाले पशुओं को लेकर यहाँ से चलने में बहुत अधिक विलंब हो गया था। उस दिन तीसरे पहर तीन बजे के लगभग ग्यारह मील चल-कर धलचिना में पहुँचकर एक घंटे तक विश्राम किया गया। इसके बाद उतराई उतरकर संध्या से पहले बारछिना पहुँच-कर आश्रय लिया था। उस रोज रात को ग्यारह बजे तक गाना-बजाना सुनने में ही समय बीता था। सभी रसों के सुरसिक कौशिकजी के साथी वायोलिन नामक वाद्य-यंत्र की परीक्षा इतने दिनों के बाद यहाँ आकर ही समाप्त हुई

थी। कहीं ना न होगा कि उस दिन उस यंत्र की नई नई रागिनियों के मधुर आलाप से मुग्ध होकर उस पहाड़ी प्रदेश में भी वहाँ दो-तीन गवैए आ पहुंचे थे।

दूसरे दिन सवेरे ही आकाश में बहुत अधिक बादल घिर आए थे और साथ ही साथ जोरों की वर्षा भी होने लगी थी। चारों ओर से जंगलों से घिरे हुए उस पहाड़ पर हम लोग सँकरे रास्ते से होते हुए धीरे धीरे जब अलमोड़े की ओर आगे बढ़े, तब दूर पर चारों ओर फैली हुई श्रेणीबद्ध पर्वत-माला मानों हम लोगों में से प्रत्येक को अभिवादन करके क्षण क्षण पर अपूर्व माया-जाल का विस्तार कर रही थी। आकाश को छूनेवाले ऊँचे ऊँचे और घने चीड के वृक्षों की प्रत्येक शाखा से धीर और मधुर स्पंदन हो रहा था जो बिदाई का करुणापूर्ण वाद्य बजाता हुआ मानों प्रत्येक मुहूर्त्त में कह रहा था—"हे सुदूर के यात्री, इतने दिनों तक हम लोगों को प्राकृतिक अव्यक्त माया के पाश में आबद्ध होकर तुमने अपने आपको मानों हम लोगों में ही मिला दिया था; जो आज इतने दिनों के बाद वह माया, सुख और दुःख में प्रत्येक दिन का निरंतर प्रमानुराग, बिलकुल छिन्न भिन्न करके अपने घर की ओर बढ़ने के लिये घबरा रहे हो।। जाने के समय एक बार थोड़ी देर के लिये क्या तुम्हारी आँखों में जरा सा स्नेहबिंदु या अश्रुजल भी न निकलेगा?" उस दिन सचमुच सभी लोगों ने पागलों की भाँति उस चैतन्यपूर्ण, अव्यक्त,

अचिंत्य जड़ प्रकृति के चरणों में थोड़ी देर झुककर सदा के लिये उससे बिदा ली थी।

उस दिन शनिवार और प्रथम भाद्रपद था। अँगरेजी की तारीख १७ अगस्त थी। हम लोगों के जीवन का वह एक स्मरणीय दिन था। उस दिन हम लोगों के परम दुर्गम कैलास-यात्रा के मार्ग के सब क्लेशों का अंत हुआ था। दोपहर को एक बजे के लगभग हम लोग अलमोड़े में अपने पुराने एंपायर होटल के सामने जा पहुँचे।

यहाँ पहुँचते ही फिर वही नगर-निवासियों का कोलाहल, मोटर-बसों की दौड़ और चटुल-चरित्र अनेक जातियों के मनुष्यों के समागम में नए नए फैशनों का अद्भुत समावेश देखकर रास्ते का थका हुआ मन थोड़ी देर के लिये फिर अन्य-मनस्क हो गया। घोड़ेवालों को उनकी बाकी मजदूरी चुकाकर और बिदा करके हम लोग घर पहुँचने की चिंता करने लगे।

तीसरे पहर रुमादेवी की खोज में एक बार मिशन की चिलकापीटा रामकृष्ण कुटीर में पहुँचे। वहाँ स्वामीजी से मालूम हुआ कि देवीजी इस समय श्रीमान् शारदानंद स्वामी की शिष्या मिसेस कुक के मकान पर रहती हैं। वहाँ पहुँचकर हम लोगों ने उनके दर्शन किए। यह सुनकर कि हम सब लोग निर्विघ्न कैलास से लौट आए हैं, उन्होंने बहुत अधिक आनंद प्रकट किया। इन अमायिक देवी-प्रकृतिवाली मानवी के साथ कुछ देर तक बात-चीत करने में

संध्या हो गई। श्रीमान् नित्यनारायण इस बीच में टूटी हुई डाँडी बेचनेवाले एल० आर० शाह कंपनी की दूकान पर जाकर उसके मालिक से डाँडी टूट जाने के दंड-स्वरूप पाँच रुपए वसूल कर लाए थे। अपने निवास-स्थान पर लौटकर निश्चिंत भाव से वह रात बिताई गई।

सवेरे भोजन के उपरांत सब लोग मोटर पर सवार हुए। अलमोड़े से काठगोदाम लौटते समय हम लोगों ने देखा कि बहुत से मोटरवाले यात्रियों को इधर-उधर ढूँढ़ते फिरते थे। बहुत सस्ते में (तीन रुपए फी आदमी की जगह) इस समय वे लोग फी आदमी लगेज समेत केवल एक रुपया भाड़ा लेकर ही ८१ मील पहाड़ी रास्ता पार करके तीसरे पहर चार बजे के लगभग काठगोदाम स्टेशन पर पहुँचे। स्टेशन पर पहुंचते ही पहले हम लोगों ने अपने आपको तौला। पाठक सुनकर आश्चर्य न करें, यात्रा आरंभ करने के समय हम लोगों का शरीर तौल में जितना था, उसकी अपेक्षा मेरा शरीर केवल नौ सेर (अधिक नहीं) और भूपसिंह का शरीर केवल बारह सेर कम हुआ था।

इसके बाद संध्या को ५ बजकर ४५ मिनटवाली गाड़ी में सवार होकर रात को साढ़े आठ बजे हम लोग बरेली पहुँचे। तड़के चार बजे दूसरी गाड़ी पर सवार होकर दूसरे दिन अर्थात् ३ भाद्रपद सोमवार को संध्या समय काशी अर्थात् अपने मकान में आ पहुँचे।

परम दुर्गम कैलास-यात्रा के यथार्थ वर्णन के साथ इस तीर्थ-भ्रमण में आजकल कितना खर्च पड़ता है, यह पाठकों को इस स्थान पर बतला देना विशेष आवश्यक जान पड़ता है। सर्व-साधारण की जानकारी के लिये यहाँ उसका पूरा पूरा हिसाब दे दिया जाता है।

अलमोड़े से कैलास तक जाने और आने के खर्च का ब्योरेवार हिसाब

पैदल जाने में

(दो आदमियों का व्यय)

अलमोड़े से धारचूला तक दो मन माल ढोने के लिये एक बोझ ढोनेवाले घोड़े का भाड़ा.............. १४)

धारचूला से गार्बियांग तक दो मन माल ढोने के लिये तीन कुलियों की मजदूरी ६) के हिसाब से... १८)

गार्बियांग से तकला कोट तक एक बोझ ढोनेवाले घोड़े या झब्बू का भाड़ा.................................. ५)

तकलाकोट से कैलास होकर फिर तकलाकोट तक वापस आने के लिये बोझ ढोनेवाले एक घोड़े या झब्बू का भाड़ा.. १२)

तकलाकोट से गार्बियांग तक बोझ ढोनेवाले एक घोड़े या झब्बू का भाड़ा.................................. ५)

गार्बियांग से कैलास होकर फिर गार्बियांग लौटने के लिये गाइड का १।।) रोज के हिसाब से बीस दिन का वेतन.. ३०)

गाइड का भोजन-व्यय.. १०)

तंबू का किराया (एक का) .... ६)

गार्बियांग से धारचूला तक माल ढोनेवाले चार कुलियों की मजदूरी ७) के हिसाब से.................. २८)

धारचूला से आसकोट तक माल ढोनेवाले तीन कुलियों की मजदूरी फी कुली २) के हिसाब से........ ६)

आसकोट से अलमोड़े तक बोझ ढोनेवाले एक घोड़े का किराया.. १४)

दो मास के लिये स्वयं दो आदमियों का भोजन-व्यय (प्रति मनुष्य मासिक २०) के हिसाब से प्रति मास ४०) रखा गया है ।).. ८०)

दो आदमियों का सब मिलाकर खर्च कुल........ २२८)

इस हिसाब से प्रत्येक व्यक्ति का व्यय उसका आधा अर्थात् ११४) के लगभग होगा।

घोड़े या झब्बू पर और पैदल

(दो आदमियों का व्यय)

अलमोड़े से धारचूला तक बोझ ढोनेवाले एक घोड़े का किराया.. १४)

दो आदमियों के लिये सवारी के दो घोड़ों का किराया २६) फी घोड़े के हिसाब से.................... ५२)

धारचूला से गार्वियांग तक पैदल—माल ढोने के लिये तीन कुलियों की मजदूरी फी कुली ६)के हिसाब से... १८)

गार्वियांग से तकला कोट तक बोझ ढोनेवाले एक घोड़े या झब्बू का किराया........................... ५)

सवारी के दो घोड़ों या झब्बुओं का किराया ...... १०)

तकला कोट से कैलास होकर फिर तकला कोट तक वापस आने के लिये बोझ ढोनेवाले एक घोड़े या झब्बू का किराया .... १२)

सवारो के दो घोड़ों या झब्बुओं का किराया १२) के हिसाब से.. २४)

तकला कोट से गार्वियांग तक बोझ ढोनेवाले एक घोड़े या झब्बू का किराया .... ५)

सवारी के दो घोड़ों या झब्बुओं का किराया ५) के हिसाब से.. १०)

गाइड का २० दिन का वेतन प्रतिदिन १।।) के हिसाब से.. ३०)

गाइड का भोजन-व्यय.............................. १०)

तंबू का किराया.................................. ६)

गार्वियांग से धारचूला तक असबाब ढोनेवाले ४ कुलियों की मजदूरी फी कुली ७ के हिसाब से (पैदल)... २८)

धारचूला से आसकोट तक बोझ ढोनेवाले ३ कुलियों की मजदूरी फी कुली २) के हिसाब से (पैदल)...... ६)

आसकोट से अलमोड़े तक बोझ ढोनेवाले १ घोड़े का किराया.. १४)

सवारी के दो घोड़ों का किराया फी घोड़ा २०) के हिसाब से.. ४०)

दो महीने का स्वयं दो आदमियों का भोजन-व्यय (प्रत्येक व्यक्ति के लिये २०) मासिक के हिसाब से प्रति मास ४०) रखा है।)............................ ८०)

दो आदमियों का सब मिलाकर खर्च........... ३६४)

प्रत्येक व्यक्ति का व्यय इसका आधा अर्थात् १८२) के लगभग होगा।

स्त्रियों अथवा पैदल चलने में असमर्थ लोगों के लिये

(दो आदमियों का)

अलमोड़े से धारचूला तक बोझ ढोनेवाले एक घोड़े का किराया.. १४)

दो नई डाँडियाँ खरीदनेमें............................ ३०)

दो डाँडियाँ ढोनेवालों का किराया ५४।) के हिसाब से ....१०८।।)

धारचूला से गार्वियांग तक बाँस के दो झोले या डोलियाँ तैयार करने का खर्च.............................४)

तीन कुलियों की मजदूरी ६) के हिसाब से..........१८)

झोला या डोली ढोनेवाले दस आदमियों की मज-दूरी (फी डोली के लिये ५ आदमी) फी आदमी ६) के हिसाब से.. ६०)

गार्बियांग से तकला कोट तक बोझ ढोनेवाले एक घोड़े या झब्बू का किराया.. ५)

सवारी के दो घोड़ों या झब्बुओं का किराया ...१०)

तकला कोट से कैलास होकर फिर तकला कोट तक वापस आने में बोझ ढोनेवाले एक घोड़े या झब्बू का किराया.. १२)

सवारी के दो घोड़ों या झब्बुओं का किराया...... २४)

तकला कोट से गार्बियांग तक बोझ ढोनेवाले एक घोड़े या झब्बू का किराया ५) सवारी के दो घोड़ों या झब्बुओं का किराया.................................. १०)

गाइड का २० दिन का वेतन प्रति दिन १।) के हिसाब से... .... ३०)

गाइड का भोजन-व्यय .. १०)

तंबू का किराया... ६)

गार्बियांग से धारचूला तक ४ कुलियों की मजदूरी ७) के हिसाब से... २८)

बाँस की दो डोलियाँ ढोनेवाले १० आदमियों की मजदूरी फी आदमी ७) के हिसाब से...... ७०)

जाने-आने का खर्च

स्त्रियों के लिये धारचूला से कैलास होकर फिर धारचूला तक लौटने में एक नौकर का वेतन (एक मास का).. २०)

नौकर के लिये भोजन और कुछ कपड़ों आदि का व्यय एक मास के लिये.. १५)

धारचूला से आसकोट तक बाँस की दो डोलियाँ ढोनेवाले १० आदमियों की मजदूरी फी आदमी २) के हिसाब से.. २०)

तीन कुलियों की मजदूरी फी कुली २) के हिसाब से ६)

आसकोट से अलमोड़े तक बोझ ढोनेवाले एक घोड़े का किराया.. १४)

सवारी के दो घोड़े का किराया फी घोड़ा २०) के हिसाब से.. ४०)

दो मास का निज का दो आदमियों का भोजन-व्यय ४०) के हिसाब से.. ८०)

दो आदमियों का सब मिलाकर व्यय........६३९॥)

प्रत्येक व्यक्ति का व्यय इसका आधा अर्थात् ३१९।।।) के लगभग होगा।

ऊपर का हिसाब देखने से पता चलेगा कि अलमोड़े से कैलास तक सारा रास्ता पैदल जाने और आने में फी

आदमी केवल ११४) व्यय होगा और घोड़े पर जाने में या कुछ दूर तक पैदल जाने में फी आदमी केवल १८२) और स्त्रियों या पैदल चलने में असमर्थ आदमियों के लिये फी आदमी २१९॥) के लगभग व्यय होगा। मैंने दो आदमियों का एक साथ ही खर्च दिखलाया है। कारण यह है कि एक साथ दो आदमी यदि जायँगे तो बहुत सी बातों में खर्च कम हो सकता है। जैसे एक ही बरतनों में दोनों का भोजन बनेगा, एक ही तंबू में दोनों आदमी साथ ही सो सकेंगे। इस प्रकार असबाब भी कुछ कम ही ढोना पड़ेगा। इसलिये कुली का खर्च भी कम पड़ेगा। विशेष सुभीता यह होगा कि गाइड और नौकर या तंबू के किराए आदि का खर्च दो हिस्सों में बराबर बराबर बँट भी सकेगा। यात्रियों की संख्या जितनी ही अधिक होगी, ये सब सामान इकट्ठे करने में भी खर्च उतना ही कम पड़ेगा।

साधारणतः यात्री लोग यात्रा के समय ऊपर लिखे हुए हिसाब की अपेक्षा अपने पास कुछ अधिक ही रखें। अधिक नहीं तो कम से कम २५) तो अवश्य ही और भी अपने पास रखें। विशेषतः स्त्री-यात्रियों या पैदल चलने में असमर्थ लोगों को तो इससे भी कुछ अधिक ही, कम से कम ५०) अपने पास अतिरिक्त व्यय के लिये रखने चाहिएँ। इससे उन लोगों को विशेष सुभीता होगा। बात यह है कि वे लोग बिलकुल ही परवश होंगे। दूसरे के कंधों पर चलने में यदि

फी कुली ६) की जगह ८) माँगे, तब वहाँ की अवस्था देखते हुए बिना उतना दिए काम ही न चल सकेगा। ऐसी अवस्था में कुछ अधिक व्यय हो जायगा।

हिसाब के इस लेखे में यात्रियों का मार्ग का भोजन-व्यय प्रति मनुष्य प्रति मास २०) रखा गया है। केवल भोजन व्यय में चाहे इतने रुपए न भी लगें, तो भी आनुषंगिक खाद्य पदार्थ और आवश्यक वस्तुएँ, जैसे मिट्टी का तेल, सरसों का तेल, कुछ सूखे मेवे (अखरोट, पिस्ता किशमिश, मिसरी आदि) यदि अपने साथ ले जाए जायँ तो मासिक २०) से कम में किसी प्रकार निर्वाह नहीं हो सकता।

फी दो आदमियों का माल-असबाब तौल में लगभग दो मन माना गया है। इसमें ओढ़ना, बिछौना, हलके वर्तन (एनामेल के बरतनों से विशेष सुभीता होगा), सूखे मेवे, मसाला, तेल, घी आदि पदार्थ आ जाते हैं।

यही है वर्त्तमान समय में कैलास तक जाने और आने का आनुमानिक व्यय-विवरण। अवश्य ही रेल के किराए या दान आदि में होनेवाला व्यय इससे अलग होगा।

अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार आर्थिक दृष्टि से इस हिसाब में कुछ भूल-चूक होना अस्वाभाविक नहीं है। तो भी पाठकों से बिदा होने से पहले मैं क्षमा माँगता हूँ।

कैलास-यात्रा समाप्त हो गई। मुक्ति के राज्य के सम्राट् विश्वनाथ के चिर-दुर्गम उज्ज्वल मुक्ति-प्रासाद के दर्शन करके मैं लौट आया हूँ। आज उन्हीं विश्वनाथ की मुक्ति-नगरी काशी राजधानी में मैं नहीं कह सकता कि मेरे महाप्रयाण का संधि-क्षण कहाँ लिखा है।